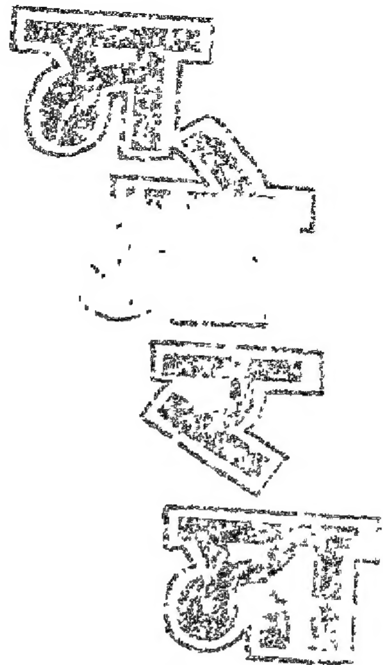






[उपन्यास]

मुन्शी प्रेमचन्द









प्रकाशक साहित्यागार
एस एम.एस. हाईवे
जयपुर–302 003
संस्करण : 1988
मूल्य : पैंतालीस रुपये मात्र
मुद्रक : मनोज प्रिन्टर्स, जयपुर

MANORAMA By MUNSHI PREMCHAN

प्रेमचंद : जीवन गाथा

भारत के अमर कथाकार प्रेमचंद का जन्म ३१ जुलाई सन् १८८० में बनारस के पास लमही गाव में हुआ था। उनके पिता मुंशी अजायब लाल निम्न-मध्यवर्ग के कुलीन कायस्थ थे, मुंशीगीरी की परम्पराओं में पगे हुए। घर पर थोडी-बहुत खेती और जमींदारी भी थी, पर अपनी कायस्थ-गीरी की आन रखने के लिए मुंशी अजायब लाल डाकखाने में मुंशी थे। प्रेमचद का नाम उन्होंने नयी आशा में धनपतराय रखा था, प्यार का नाम था 'नवाब'।

कुलागत परम्परा के अनुसार प्रेमचद की शिक्षा उर्दू-फारसी से शुरू हुई। अध्ययन की ओर उनकी आसक्ति बचपन से ही थी और कथा-साहित्य के लिए उनका प्रेम व्यसन बन गया था। जब उनके बाप का तबादला गोरखपुर हुआ और वे शहरी मिडिल स्कूल में दाखिल हुए, तो उन्होंने एक तम्बाकू-फरोश के लडके से दोस्ती इसलिए की कि 'तिलिस्मे-होशरूबा' पढ़ने को मिले। तेरहवें वर्ष में पहुँचते-पहुँचते रतननाथ 'सरशार', 'शरर' और रेनाल्ड के उपन्यास वे समाप्त कर चुके थे। उपन्यास पढ़ने का चाव यहाँ तक बढ़ा कि रेती चौक के एक दूकानदार के यहां इस शर्त पर दलाली स्वीकार की कि ये जाकर उसकी कोर्स की किताबे लड़कों को बेच आयेंगे और एवज में वह इन्हें नये-नये उपन्यास उधार पढने को दिया करेगा।

पन्द्रहवे वर्ष मे पदार्पण करते-करते उनके जीवन में नया अध्याय शुरू हो जाता है, यद्यपि अध्ययन की दृष्टि से वे अभी नवीं कक्षा में ही थे, तथापि एक ही साल के भीतर विवाह और पिता की मृत्यु, ये दो घटनाएँ ऐसी घटी कि उनकी उमगती हुई आकाक्षाओ और उनके ऊँचे सकल्पो को एकदम धराशायी कर दिया। ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की ललक उनके हृदय में घर कर गयी थी। कर्म-शक्ति में अटूट विश्वास रखने वाले प्रेमचन्द निराश तो हुए पर हताश न हुए। गोरखपुर से वे बनारस चले गये और पाँच रुपए की ट्यूशन करके जैसे-तैसे क्वीस कॉलिज से द्वितीय

श्रेणी में पास किया साथ-साथ गहरे में [illegible] रहा, रात-रात गम्भीर अध्ययन और परिवार का पोषण भी। मैट्रिक्यूलेशन के बाद बहुत दौड़-धूप के बाद इण्टरमीडिएट में जो दाखिला भी हुए तो जमकर भी गणित के कारण लगातार दो बार फेल हुए और एकदम हताश-से हो गये।

इस निराशा में डूबते-उतराते उन्हें एक दिन सन् १८९९ में एक दयालु हेड-मास्टर मिले जिन्होंने उन्हें १८ रुपए मासिक वेतन पर सहायक अध्यापक रख लिया। सन् १९०२ में इलाहाबाद ट्रेनिंग कॉलिज में भरती हुए और वहाँ से उन्होंने सन् १९०४ में अपनी लगन और प्रतिभा के बल पर प्रथम श्रेणी में जे० टी० सी० की परीक्षा पास की। प्रिन्सिपल ने प्रसन्न होकर वहीं माडल स्कूल में उन्हें हेडमास्टरी दी। इस अवधि में उनकी साहित्यिक प्रतिभा का प्रस्फुटन भी प्रारम्भ हो गया था। सन् १९०२ में 'प्रेमा' और सन् १९०४ में 'हम खुरमा हम सवाब' नामक उपन्यास उनकी कलम से उर्दू में आये। इन प्रारम्भिक रचनाओं में कृत्रिम शैली और अद्भुत घटना-जाल मिलते हैं। ट्रेनिंग कॉलेज की अवधि में उनका अध्ययन भी बहुत बहुमुखीन था और विवेचन बहुत जागरूक होने लगा था। दर्शन, उपन्यास, राजनीति और समाजशास्त्र में उनकी अभिरुचि विशेष थी, एक ओर शैली के क्षेत्र में सरशार के पीछे वे फिदा हो गये थे, तो दूसरी ओर आचार-शास्त्र के गहन अध्ययन से उनका दृष्टिकोण भी बदलने लगा था। मनुष्य की सुजनता और सद्भावना में उनका विश्वास दृढ़ हो चला। जब सन् १९०५ में वे तबदील होकर कानपुर आये तो उर्दू की प्रसिद्ध पत्रिका 'जमाना' के संपादक मुंशी दयानारायण निगम के निकट संपर्क में रहने का उन्हें सुअवसर मिला। तीन वर्ष तक वे कानपुर रहे और ये तीन वर्ष उनकी जिन्दगी के सबसे स्पृहणीय वर्ष थे, साहित्य-साधना की पहली तैयारी उन्होंने यहीं की और साथ ही जीवन का रस भी सबसे अधिक उन्हें यहीं मिला। उनके सरल विनोदी स्वभाव को पूर्ण परितृप्ति मिली। मुंशी दयानारायण निगम उनसे वय में छोटे होते हुए भी उनके सच्चे हितैषी और पथदर्शक बने।

तीन वर्ष बाद सन् १९०८ में जब उनकी पदोन्नति मदरसों के सब-डिप्टी इन्स्पेक्टर के पद पर हुई और साथ ही उनका तबादला हमीरपुर के लिए हुआ, तब उन्हें उल्लास से भरे जीवन से विलगाव तो जरूर मिला, पर साथ ही भारतीय देहात की आत्मा को पहचानने और उसके कण्ठ में

रु था हुइ वाणी को सुनने का सुलाभ भी प्राप्त हुआ बुन्देलखण्डी देहातों के दौरे में उन्हें देश की सोई मानवता की नई अगडाई मिली छ साल तक लगातार महोबा के अञ्चल प्रदेश में रहकर उन्होंने स्वाभिमान को जगाने और साहस का उभाडने का कार्य भी किया। 'रानी सारन्धा', 'राजा हरदौल', 'विक्रमादित्य का तेगा' सरीखी कहानियाँ यहीं लिखी गयी। इसी अवधि में 'सोजेवतन' नाम से देश प्रेम से भरी पाँच कहानियों का उनका संग्रह भी प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के कारण अंग्रेजी सरकार के वे कोपभाजन बने। साम्राज्यवाद वाणी का मूक विद्रोह सह न सका, बड़ी मुश्किल से अपने डिप्टी इन्स्पेक्टर की बदौलत उनकी नौकरी पर आँच न आने पायी, केवल 'सोजेवतन' की ५०० प्रतियों के अग्नि समर्पण और भविष्य के लिए चेतावनी तक दण्ड सीमित रह गया। अपनी इस परवशता की ग्लानि उन्हें अत्यधिक हुई, पर उन्होंने इस दुःख को दबाकर रखा। इसी के साथ उन्हें अपने दुलार का नाम 'नवाबराय' भी छोडना पडा और लिखने के लिए उन्हें दूसरा छद्मनाम 'प्रेमचंद' अपनाना पडा। यह दूसरा नाम अपनाना ही उनके जीवन में तीसरे अध्याय का सूत्रपात है। 'नवाब-राय' नाम के साथ भावुक स्वप्न-शीलता भी विदा हो गयी और प्रेमचन्द आदर्शवादी होते हुए भी यथार्थ मे हार्दिक तादात्म्य पाने लगे, मानो गोधूलि की ललछही धुंध के बीच में से नये 'प्रेमचन्द' का उदय हुआ। हाँ, हमीरपुर जिले का लंबा प्रवास साहित्य के लिए उर्वर तो सिद्ध हुआ, पर उनके शरीर के लिए उतना ही ऊसर और संतापकारी निकला। यहीं से उनके पेट की खराबी शुरू हुई, जो अन्त में उनके प्राण लेकर ही रही।

अस्तु, 'लागही अति पहार कर पानी' वाली बुन्देलखण्डी जलवायु से पिण्ड छुडाने के लिए उन्होंने तबादले के लिए प्रार्थना की, और नौकरशाही अवकृपा ने उन्हें हिमालय की तलहटी बस्ती में ला पटका। सन् १९१४ में वे बस्ती आये और उन्हें स्व० मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' का सरस परिपार्श्व मिला, जिसके कारण हिन्दी की ओर उनका रुझान हुआ और इसी समय उनका 'सेवासदन' उपन्यास पूरा हुआ। 'सेवासदन' के पहले 'सप्तसरोज' नाम से हिन्दी में उनकी कहानियों का संग्रह छप चुका था और पाठकों में अत्यन्त समादृत भी हो चुका था। बस्ती आकर उनको पेचिश और पेचीदा दोनों हो गयी, फलत छः महीने की छुट्टी लेकर लखनऊ मे मेडिकल कॉलेज में उन्होंने दवा करायी। साथ ही दौरे की दौड धूप से मुक्ति पाने के लिए शिक्षण-कार्य के लिए अपनी नियुक्ति करायी सन १९१५ में गवनमेंट

स्कूल बस्ती में शिक्षक होकर व आ गये और तीन वर्ष तक इस स्थान में इस पद पर रहे बीच में व गोरखपुर गवर्नमेंट नार्मल स्कूल में हेडमास्टर होकर चले गये थे शिक्षक हो जाने पर उन्हें साहित्य साधना के लिए यथेष्ठ समय मिलने लगा और उनकी बहुत-सी उत्कृष्ट गल्प रचनाएं इसी काल में रची गयी।

नौकरी से छूटकर खुले अखाड़े में खुल-खेलने के लिए उनके मन में बहुत तीव्र उत्कण्ठा बढ चली थी।

इस बीच देश मे नया ज्वार आया और प्रेमचंद से जीवन-साधक जो उसके बहाव में आने की पहले से ही प्रतीक्षा में बैठे थे, जनजागृति के इस नये युग में समस्त कुल-बंधनो को तोड़कर विलग हो गये। उन्होंने सरकारी नौकरी से अन्ततोगत्वा सन् १९२१ में इस्तीफा दे ही दिया। पराधीनता की बेडी बरदाश्त के बाहर हो गयी और वे एकान्ततः अपनी साधना के क्षेत्र मे उतर पडे। १९२३ में कुछ साझीदारों के साथ सरस्वती प्रेस की बनारस में स्थापना की और अपने अनुज महताबराय को उसकी व्यवस्था मे लगाया।

प्रेस के काम में उन्हे बहुत खटना पडा। प्रकाशकों के शोषण से निस्तार पाने के लिए उन्होने वह दुस्साहसपूर्ण कदम उठाया जो उनकी शक्ति के बाहर था। 'काया-कल्प' से उन्होने निजी प्रकाशन आरंभ किया। पर इस कार्य में उन्हे बहुत टोटा उठाना पडा, इसी कारण सन् १९२८ में उन्होंने नवलकिशोर प्रेस के अधिष्ठाता बिशुननारायण भार्गव के आग्रह पर 'माधुरी' का संपादन स्वीकार कर लिया, जिससे गृहस्थी का निर्वाह हो सके। 'माधुरी' के संपादन काल में ही अपनी मान्यताओं और अपने स्वप्नों को साकार बनाने के लिए १९३० में 'हंस' का सूत्रपात्र किया, जिसका उद्देश्य नये लेखकों को प्रोत्साहन और सत्परामर्श देकर आगे बढ़ाना और इसके द्वारा साहित्यिक आन्दोलन को सशक्त बनाना था। 'हंस' के साथ जुटकर उनका त्याग नशे में परिवर्तित हो गया। उसी के साथ-साथ उन्होंने 'जागरण' साप्ताहिक भी शुरू किया। इस अवधि में आते-आते उनकी कर्म-शक्ति बिलकुल चमक उठी थी। वे अब अपने को विशुद्ध साहित्य मजूर समझते थे और वैसा ही बरतते भी थे। सन् १९३१ में 'समर-यात्रा' कहानी के कारण 'हंस' को जमानत देनी पड़ी।

सन १९३१ से १९३४ तक अविच्छिन्न रूप से वे बोझ सहकर घाटे में हंस' और जागरण' चलाते रहे इस बीच उन्होंने रंगभूमि' १९२६

गबन और कर्मभूमि तीन उपन्यास और कहानी कला की दृष्टि से कफन तथ्य ईदगाह 'अलग्योझा' सरीखी सूक्ष्म शिल्पभरी उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी। उनकी कला अध्ययन और संघर्ष में निखार और परिष्कार पाकर सम्पूर्णता पा गयी। साथ ही उनके द्रष्टा मानस ने बहुत से अयथार्थ आवरणों को चीर फेंका। इस अवधि के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उनके बहुत से दुर्बल विश्वास ढीले हो गये और वे स्पष्ट आलोक देने में सफल हो गये। इस बीच प्रेमचंद कर्ज के बोझ से बहुत दब गये थे और इसीसे सन् १९३४ में उन्हें जब बम्बई के अजन्ता मूवीटोन से ८०००) साल पर आमन्त्रण मिला तो वे इन्कार न कर सके।

करीब साल-भर वे फिल्म-संसार की कड़वी दुनिया में रहे। यहाँ आकर लेखक की स्वतंत्र चेतना को जो कुत्सित रुचि का बन्धन मिलता है, उसका उन्हें असीम परिताप हुआ। उनकी 'मिल-मजदूर' कहानी का भीषण विद्रूप रूपान्तर 'मजदूर' नामक फिल्म में हुआ। फिर 'डामुल का कैदी' तथा दो-एक कहानियाँ और उन्होंने लिखी, पर उन्होंने यह अनुभव कर लिया कि फिल्म-संसार के विधाता गरम मसालेदार मनोरंजन के नाम पर कुरुचि, अयथार्थ और चमत्कार को ही अभीष्ट मानते हैं। अतः खिन्न और अनुतप्त होकर साल भर में ही उस काम को छोड़-छाड़कर वे बनारस लौट आये।

इस बीच अपने जीवन की सबसे बड़ी कृति 'गोदान' लिखी जिसको उन्होंने अपनी समस्त साधना, आस्था और निष्ठा का सत्व देकर भारतीय खेतिहर के जीवन का महाकाव्य बना डाला है। सन् १९३६ में 'गोदान' छपा और इसके छपते-छपते जीवन का सूरमा चूर-चूर हो गया। अन्त में उन्हें खाट पकड़नी पड़ी। रोग शय्या पर भी उनको लिखने की पीड़ सताती रही और उनका अधूरा उपन्यास 'मंगलसूत्र' लिखा जाता रहा। बीमारी में तिल-तिल घुलते हुए भी कर्मपथ पर अडिग बने रहे, इस कर्मवाद के लिए उन्होंने अंतिम समय तक भगवान का सहारा लेना मंजूर न किया और ८ अक्टूबर १९३६ को मानवता में अटूट विश्वास और 'हंस' तथा उसकी परम्परा की चिन्ता लेकर वे असमय विदा हो गये। जब वे तमाम चढ़ाइयों और अंधियारियों के बाद ऐसे सुविस्तृत पठार पर पहुँचे, जहाँ से भारतीय जीवन की मार्मिक परख अधिक असंलग्न होकर कर सकते थे और अपनी पूर्णता प्राप्त कला को नये जीवन दर्शन के लिए और नियोजित कर सकते थे तब वे बिछुड़ गये यह हिन्दी का दुरन्त दुर्भाग्य था कि एक स्वस्थ

परम्परा को जन्म देकर उसे पनपता वे न देख सके साथ ही उस परम्परा म भारतीय गरिमा पूरी तरह न भर सके।

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रेमचद का व्यक्तित्व उनकी देहाती भारतीय अन्त प्रकृति की झाकी था, सीधा-साधा बेतरतीब मूँछोवाला, साज-सवार से दूर, अनाकर्षक, तडक-भडक से शून्य, सरल और विनम्र, ग्रंथियो, विकृतियों और कुण्ठाओ की रेख से मुक्त, उन्मुक्त विनोदी और अलमस्त, जो भीतर सो बाहर, नागर विदग्धताओं और चातुरियों से अछूता पर सामान्य बोध से दीप्त, संकल्प की दृढता से अकित पर मानसिक दबाव से शून्य एव सजग कर्मवादी—यही सक्षेप मे उसका अकन है।

वेश-भूषा, खान-पान, बोली-बानी, रहन-सहन, बातचीत और आव-भगत मे वे भारतीयता के प्रतिमान थे। उन्हे अपने इस देहातीपन के गौरव का आत्मज्ञान था। यद्यपि ईश्वर और परलोक मे विश्वास करने मे वे अपने को असमर्थ पाते थे, पर इस लोक की मगल-भूमि के सदैव आकांक्षी थे। लोक मंगल के लिए उनकी इस निश्चल प्रीति ने ही उनको हँसते-हँसते दुःख सहने तथा कड़वी से कडवी आलोचना हँसकर टाल देने की अपूर्व क्षमता प्रदान की थी और यही कारण है कि उनके साहित्य मे करुण से करुण चित्र होते हुए भी अवसाद की गध तक नही है। उनका मानवता मे विश्वास सदैव अटूट और सजग है। उनकी महानता और निश्छल सत्यनिष्ठ सच्ची मानवता मे है, उन्होंने मानव-श्रम का गौरव पहचाना और उसे अपनाया, वह उस युग के साहित्यकार के लिए बहुत बड़ी चीज थी।

प्रेमचंद के कृतित्व का पर्यालोचन करे, इसके पूर्व उनके युग और उनके दाय का परिचय कराना आवश्यक होगा, क्योंकि आखिर इन्ही के आलोक में ईमानदारी के साथ किसी साहित्यकार के कृतित्व को देखा जा सकता है। प्रेमचद उर्दू से हिन्दी मे जब आये तो हिन्दी भाषा और साहित्य के ऊपर बगला छा रही थी, हिन्दी को विस्तृत चिन्तन-भूमि तो मिल गयी थी, पर उसका स्वत्व खो रहा था। उन्होंने आते ही हिन्दी की सहज गम्भीरता और विशालता को उद्दाम भाव-वकुलता और व्यक्ति-विलक्षणता से उबारने के लिये दृढ संकल्प किया। जहाँ तक रीति काल की मासल शृंगारिकता के प्रति विद्रोह करने की बात थी वहा तक प्रेमचद अपने युग

[illegible]
और ग्राम्य के नाम पर, उस दीवाल को ढहाने में ही उन्होंने हिन्दी का कल्याण समझा। भाषा रंगीन होने के साथ-साथ दुरूह, कृत्रिम और पराई होने लगी थी चिंतन भी कोमल होने के नाम पर जन-आकांक्षाओं से विलग हो चला था। हिन्दी की ओजस्विनी वाणी को आगे बढ़ाना उन्होंने अपना प्रथम कर्तव्य समझा, इसलिए उन्होंने नयी बौद्धिक जन-परम्परा को जन्म दिया। प्रेमचन्द से हिन्दी साहित्य को निश्चित ही नया मोड़ मिला है। यदि देवकीनंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने तिलस्मी और रोमांचकारी उपन्यासों द्वारा हिन्दी के पाठक बुलाये, तो प्रेमचंद ने हिन्दी के कथा-साहित्य को एकदम उत्कर्ष बिन्दु पर पहुँचा दिया। प्रेमचंद ने यह सिद्ध कर दिया कि वर्तमान युग में कथा के माध्यम की सबसे अधिक उपयोगिता है।

अब जब हम प्रेमचन्द के दाय की बात लेते है, तो यह स्वीकार करना पड़ता है कि भारतीय वातावरण की सच्ची परख उनके पास होते हुए भी देश की चिंतन परम्परा का गहन अध्ययन न था। कारण स्पष्ट है, वे जीवन की पाठशाला से साहित्य में आये, पारिवारिक प्रभाव भी उनका अधिकतर ह्रासोन्मुख सामन्तयुग का था। उनका अपनापन जितना अधिक नवाबी नफासत से था, उतना मननशील भारतीय पद्धति से नही था, यद्यपि उनका हृदय विशाल था और त्याग, प्रेम, सदाचार सेवा, परोपकार और दया जैसे धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों पर ही उनका समस्त-जीवन दर्शन आधारित था। जहाँ धरती की मौलिक संस्कृति का प्रश्न है, प्रेमचंद ने उस दाय मे अवश्य अभिवृद्धि की है। हाँ, स्थूल रूप से इतना निर्विवाद है कि भारत के मध्ययुग को जितना उन्होंने समझा था, उतना आदि युग को नही, आदि युग के दाय से वंचित रह गये। परन्तु वंचित होकर भी उन्होंने उस अतीत के बारे मे अपनी ओर से कोई पूर्व द्वेष नही दिखलाया और न उसको विद्रूप करने का उन्होंने यत्न किया जैसा कि बहुतेरे अतीत जीवियों ने किया और अभी कुछ लोग करते ही जा रहे है। उस अतीत के बारे में वे केवल चुप रह गये। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सरस मधुरता वे इसीलिए आप्लावित न कर सके। उनका स्वर चक्की का स्वर तो जरूर बना, पर चिड़ियों का कलरव न बन सका। वे इतने अधिक पौरुषवादी हो गये कि जीवन की कोमलताओं के साथ सुपरिचित न्याय न कर सके।

कहानीकार प्रेमचंद

उपन्यास के क्षेत्र में अभी तक उनका स्थान मूर्धन्य बना हुआ है; कहानी के क्षेत्र में भले ही उनके साथ दूसरों के नाम भी गिनाये जा सकते हैं। उनकी कहानी कला का उत्कर्ष जब सचमुच पूर्णता को प्राप्त हुआ और वे सूक्ष्म अन्तर्मन में पैठकर मानव मन को छूने लगे, यकायक वे चल बसे। इसलिये जितना वे दे सकते थे उतना कहानी साहित्य को दे नहीं सके। उनकी कहानियाँ कुल लगभग ३०० हैं और उनमें से प्रारंभिक युग की कहानियों में सीख या पाठ पर अधिक जोर होने के कारण कला पक्ष शिथिल हो गया है, पर बाद की कहानियों में उपदेशात्मकता बहुत सूक्ष्मतर होती गयी है और अन्तिम कहानियों में बिलकुल लुप्त-सा हो गयी है। उनकी कहानियों के कुछ संग्रहों के अलावा उनकी सभी कहानियाँ 'मानसरोवर' (आठ भाग) में एक साथ संकलित हो गयी हैं। उनकी उत्कृष्ट कहानियों में से कुछ के नाम ये हैं, 'ईदगाह', 'कफन', 'अलग्योझा', 'शतरंज के खिलाडी', 'आत्माराम', 'मुक्ति का मार्ग', 'बेटी का धन', 'बड़े घर की बेटी,' 'डिग्री के रुपये', पंचपरमेश्वर', शंखनाद', 'दुर्गा का मन्दिर', 'रानी सारन्धा', राजा हरदौल', 'मन्दिर और मसजिद' 'नमक का दरोगा', 'मंत्र', 'कामनातरु', 'सुजान भगत' और 'ईश्वरीय न्याय'। हास्यरस की कहानियों में सत्याग्रह', 'विनोद', 'मोटेराम की डायरी' और 'बूढ़ी काकी' शुद्ध और परिष्कृत हास्य के सुन्दर नमूने हैं। उनकी कहानियों का वातावरण बुंदेलखण्डी वीरतापूर्ण कहानियों और मुस्लिम ऐतिहासिक कहानियों को छोड़कर वर्तमान देहात और नगर का निम्न मध्यवर्ग है। ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण बहुत अयथार्थ हो गया है क्योंकि उनमें वे चरित्र पर ही अधिक झुक गये हैं। परन्तु प्राय उनकी कहानियों में वातावरण का बहुत ही सजीव और यथार्थ अंकन मिलता है। जितना आत्मविभोर होकर प्रेमचंद ने देहात के पार्श्वचित्र लिये हैं, उतना शायद दूसरा कोई कभी भी न ले सका होगा। शहर के प्रति उनकी दृष्टि कुछ एकांगी अवश्य थी, तो भी निम्न-मध्यवर्ग की बाहर से सफेदी की हुई दरिद्रता की सफलतम झाँकी भी वही दे सकते हैं। कोई भी मानवीय-मानस-व्यापार उनसे अछूता नहीं बचा है, जीवन के सभी पक्षों को उन्होंने अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। मानव हृदय के वे बहुत बड़े पारखी हैं। यही नहीं, बल्कि उनके चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता होते हुए भी जो बहुत बडा उन्नायक तत्व मिलता है उससे उनका द्रष्टा रूप भी सामने आ जाता है मानव हृदय में सू क् के

अतर्द्वन्द्व को बहुत सफलता के साथ उन्होने चित्रित किया है और उनका कहानियो का अन्त प्राय आत्मविश्वास आत्मसतोष और मानवता की विजय मे होता है उनकी कहानी इसलिए अन्याय शोषण स्वार्थ ढोंग, आलस्य और अज्ञान के विरुद्ध अभियान का सफल वाहन बनकर आती है।

प्रेमचंद की अन्य कृतियाँ

कहानीकार के अलावा प्रेमचंद आलोचक, नाटककार, निबन्धकार, सपादक और अनुवादक भी थे। आलोचनाएँ 'हंस' के विभिन्न अको में तथा कुछ भाषणो मे विखरी मिलती हैं, उनका एक संग्रह भी 'कुछ विचार' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। आलोचना के द्वारा उन्होंने बिना लाग-लपेट के अपनी मान्यताओ को सामने रखा है, उसमें शक्ति और सच्चाई इतनी है कि सुगठन का अभाव बिलकुल खटकता नही। आलोचक वे अपने समर्थन मे अधिक थे। तटस्थ होकर निरपेक्ष भाव से आलोचना उन्होंने कम की है। उनके दो नाटक 'संग्राम' और 'कर्बला' है; और एक छोटा नाटक 'प्रेम की वेदी' है। ये उपन्यास की तरह फैले हुए है। इसके अतिरिक्त अनेकानेक पुस्तकों का अनुवाद और संपादन करके उन्होंने साहित्य का भंडार भरा ह। इनमें से मुख्य है—

जीवनियां—महात्मा शेखसादी, दुर्गादास, कलम, तलवार और त्याग।

अनुवाद—सृष्टि का आरम्भ (बर्नार्ड शा), टालस्टाय की कहानियाँ, सुखदास (जार्ज इलियट का साइलस मार्नर), अहकार (अनातोले फ्रांसकृत थाया), चादी की डिबिया, न्याय, हड़ताल (तीनों गाल्सवर्दी के नाटको के अनुवाद) और अजाद-कथा (रतननाथ सरशार)।

इसके अतिरिक्त शिशु-साहित्य भी उन्होने दिया। इन विभिन्न कृतियो मे उनकी असल कला के दर्शन नही मिलते, परन्तु उनके विचारों को समझने मे इनसे बहुत बड़ी सहायता मिलती है, विशेषत: अनूदित पुस्तको से उनको प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वो के विश्लेषण मे बडी मदद मिलती है

सत्य का दर्शन उसने कराया है उस कला के पास रूपवाद म भटकन क लिए समय नही है वह तो केवल नयी मान्यताओ के लिए आधार-भूमि तैयार करन में अपने को समर्पित कर देती है जिन वर्गों के बीच घुलने मिलने का उन्हे अवकाश मिला और जिनके जीवन के सुख-दुःख से द्रवित होने का उन्हे अवसर मिला, उनकी मौलिक समस्याओ के समाधान पाने की अनवरत साधना ही उनके उपन्यासों का इतिहास है। उन्होंने इस समाधान के लिए यथासम्भव समस्त सुलभ चिन्तन-पद्धतियों की छानबीन की, आत्मसुधारवादी गांधी-विचारधारा से लेकर समष्टि विचारवादी मार्क्सीय विचारधारा तक उन्होने आलोड़न-विलोडन किया और मानवता के उत्थान तथा कल्याण के सोपान उन्होंने कल्पित किये, पर किसी एक विशेष वाद से वे कहीं स्वय अभिभूत नहीं है। उनकी अडिग आस्था यदि किसी एक चीज में है, तो वह मनुष्य की सृजनता और सतत् विकासशीलता में है। इसी आस्था को उन्होने भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में और विभिन्न ढगों से फैलाया है। चाहे मनुष्य खेतिहर किसान हो, चाहे मिल-मजदूर हो, चाहे क्लर्क हो या उससे भी ऊँचे उठकर चाहे वह मध्यवर्ग के विभिन्न स्तरो मे चढता-उतरता निरुपाय शिक्षित वर्ग का हो, उन्होंने सब में इस आस्था को जगाने की कोशिश की है। कुछ जग पाते है और कुछ जगते ही नयी रोशनी बर्दाश्त न कर सकने के कारण ज्योति खो भी देते हैं, पर प्रेमचद का उद्देश्य है रूढि-जर्जर और शोषण-पीड़ित समाज में नया विश्वास और नया बल भरते रहना, भले ही कोई पात्र उनका भार वहन करने में ही टूट जाय, इसकी उन्हे रत्ती भर परवाह नही है। जिस वर्ग को (अर्थात् अभिजात वर्ग को) प्रेमचद ने दूर से देखा है, उसके बारे में उनकी धारणाएँ बहुत ही स्पष्ट और पूर्वाग्रह से रजित हैं, पर निम्न से मध्यवर्ग तक उनकी दृष्टि बहुत ही स्पष्ट और विस्तृत है। उनके उपन्यासों में उनकी बौद्धिकता का क्रमशः उत्तरोत्तर विकास होता गया है और उनकी भावुक आदर्शवादिता की ढिलाई कसी जाती रही है। सुधारवादी प्रेमचद धीरे-धीरे अधिक सशक्त विद्रोही होते गये है, यद्यपि उनके विद्रोह की चरम सीमा होरी या देवकुमार ('मंगल सूत्र' के नायक) भी आत्मसाधना का पथ नहीं छोड़ते। कारण यह है कि प्रेमचंद का हृदय विशुद्ध भारतीय था, वे भारतीय आदर्शों से विच्छिन्न होकर पल भर भी नही रह सकते थे, उन्होंने भारतीय समाज की गलत परम्पराओ पर आघात किया है, इस-लिए नहीं कि विध्वस पर नया समाज खडा हो बल्कि इसलिए कि समाज में स्वत चेतना जगे वह अपने के आवेश में उठ खडा हो और

आदर्श को में जीवन बिता दें शोषण का अन्त उनके लिए साधन है साध्य नहीं क्योंकि इस शोषण-व्यवस्था में साहित्य और संस्कृति फल-फूल नहीं सकती। (मंगलसूत्र)

यह तो हुई उपन्यास के मूल अन्तस्तत्त्व की बात, अब जब हम उसके बाह्य शिल्प-विधान की दृष्टि से उनके उपन्यासों को देखते हैं, तो इतना स्पष्ट लगता है कि प्रेमचंद को शरतचन्द्र की भाव विदग्धता, रवीन्द्र की आध्यात्मिक काव्य-शीलता और जैनेन्द्र की अंतर्भग्नता और रूसी उपन्यासकारों का विशद एवं सूक्ष्मतम वस्तुविन्यास नहीं मिला है, परन्तु सामान्य जन के मनोविज्ञान का सहज ज्ञान, जनसाधारण की क्षमताओं-अक्षमताओं की अद्भुत परख, पराकाष्ठा (क्लाईमेक्स) की प्रभावशीलता की अनुभूति और पात्रों की एकान्विति में कुशलता जितनी उन्हें एक साथ मिली है, उतनी शायद किसी अन्य को नहीं।

'कायाकल्प' प्रेमचंद का बहुत बड़ा सफल प्रयोग है। 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' के बीच प्रेमचंद बहुत ही टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में भटके हैं। 'काया-कल्प' में भारतीय हिन्दू-परिवार की मुख्य समस्या विवाह के विभिन्न रूपों की वास्तविक मीमांसा की गई है। साथ ही साम्प्रदायिक समस्या, किसान आन्दोलन, ग्राम सेवा आदि सामयिक प्रश्नों को भी लिया गया है। जहाँ तक कथाशिल्प विधान का प्रश्न है, यह उपन्यास बहुत ही पूर्ण है। फिर भी यदि केवल चक्रधर की कहानी इस उपन्यास में चलती और बीच में देवप्रिया का झंझट न आता, तो उपन्यास और भी सुन्दर बन पड़ता। 'मनोरमा' प्रस्तुत उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण है।



मनोरमा

१

मुँशी वज्रधर सिह का मकान बनारस में है। आप है तो राजपूत, पर अपने को 'मुँशी' लिखते और कहते है। 'ठाकुर' के साथ आपको गंवारपन का बोध होता है। बहुत छोटे पद से तरक्की करते-करते आपने अन्त में तहसीलदारी का उच्च पद प्राप्त कर लिया था। यद्यपि आप उस महान पद पर तीन मास से अधिक न रहे और उतने दिन भी केवल एवज पर रहे; पर आप अपने को 'साबिक तहसीलदार' लिखते थे और मुहल्ले वाले भी उन्हें खुश करने को 'तहसीलदार साहब' ही कहते थे। यह नाम सुनकर आप खुशी से अकड़ जाते थे, पर पेंशन केवल २५) मिलती थी; इसलिए तहसीलदार साहब को बाजार-हाट खुद ही करना पड़ता था। घर में चार प्राणियों का खर्च था। एक लड़की थी, एक लड़का और स्त्री। लडके का नाम चक्रधर था। वह इतना जहीन था कि पिता के पेंशन के जमाने में घर से किसी प्रकार की सहायता न मिल सकती थी, केवल अपने बुद्धि बल से उसने एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली थी। मुँशीजी ने पहले ही से सिफारिश पहुँचानी शुरू की थी। दरबारदारी की कला में वह निपुण थे। कोई नया हाकिम आये, उससे जरूर रब्त-जब्त कर लेते थे। हुक्काम ने चक्रधर का ख्याल करने के वादे भी किये थे; लेकिन जब परीक्षा का नतीजा निकला और मुँशीजी ने चक्रधर से कमिश्नर के यहा चलने को कहा, तो उन्होंने जाने से साफ इनकार किया।

मुँशीजी ने त्योरी चढ़ाकर पूछा—क्यो ? क्या घर बैठे तुम्हे नौकरी मिल जायगी ?

चक्र—मेरी नौकरी करने की इच्छा नहीं है आजाद रहना चाहता है।

उस दिन से पिता और पुत्र में आये दिन बमचख मचता रहता था। मुँशीजी बार-बार झुँझलाते और उसे काम चोर घमण्डी, मूर्ख कहकर अपना गुस्सा उतारते रहते थे।

चक्रधर पिता का अदब करते थे, उनको जवाब तो न देते, पर अपना जीवन सार्थक बनाने के लिए जो मार्ग तय कर लिया था, उससे वह न हटते थे। उन्हे यह हास्यास्पद मालूम होता था कि आदमी केवल पेट पालने के लिए आधी उम्र पढने में लगा दे। विद्या को जीविका का साधन बनाते उन्हें लज्जा आती थी। वह भूखों मर जाते, लेकिन नौकरी के लिए आवेदन-पत्र लेकर कहीं न जाते। विद्याभ्यास के दिनों में भी वह सेवा-कार्य में अग्रसर रहा करते थे और अब तो इसके सिवा उन्हे कुछ सूझता ही न था। दीनों की सेवा और सहायता में जो आनन्द और आत्मगौरव था, वह दफ्तर में बैठकर कलम घिसने में कहाँ?

मुँशी वज्रधर ने समझा था, जब यह भूत इसके सिर से उतर जायगा, शादी-ब्याह की फिक्र होगी तो आप-ही-आप नौकरी की तलाश में दौडेगा। लेकिन जब दो साल गुजर जाने पर भी भूत के उतरने का कोई लक्षण न दिखायी दिया, तो एक दिन उन्होंने चक्रधर को खूब फटकारा।

चक्रधर अब पिता की इच्छा से मुँह न मोड सके। उन्हें अपने कालेज में ही कोई जगह मिल सकती थी। लेकिन वह कोई ऐसा धन्धा चाहते थे, जिससे थोडी देर रोज काम करके अपने पिता की मदद कर सकें। संयोग से जगदीशपुर के दीवान ठाकुर हरिसेवक सिंह को अपनी लड़की को पढाने के लिए एक सुयोग्य और सच्चरित्र अध्यापक की जरूरत पडी। उन्होने कालेज के प्रधानाध्यापक को इस विषय में एक पत्र लिखा। उन्होने चक्रधर को उस काम पर लगा दिया। काम बड़ी जिम्मेदारी का था, किन्तु चक्रधर इतने सुशील, इतने गंभीर और इतने संयमी थे कि उन पर सबको पूरा विश्वास था।

मनोरमा की उम्र अभी १३ वर्ष से अधिक न थी, लेकिन चक्रधर को उसे पढ़ाते हुए बडी झेंप होती थी। एक दिन मनोरमा बाल्मीकीय रामायण पढ रही थी। उसके मन में सीता के वनवास पर एक शङ्का हुई। वह इसका समाधान करना चाहती थी। उसने पूछा—मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ, आज्ञा हो तो पूछूँ?

चक्रधर ने कातर भाव से कहा—क्या बात है?

मनोरमा रामचद्र ने सीताजी को घर से निकाला तो वह चली क्यों गयी ? और जब रामचद्र ने सीता की परीक्षा ले ली थी और अन्त करण से उन्हे पवित्र समझते थे तो केवल झूठी निन्दा से बचने के लिए उन्हे घर से निकाल देना कहाँ का न्याय था ?

चक्रधर—यदि सीता जी पति की आज्ञा न मानती, वह तो भारतीय सती के आदर्श से गिर जाती और रामचद्र को राज-धर्म का आदर्श भी तो पालन करना था !

मनोरमा—यह ऐसा आदर्श है, जो सत्य की हत्या करके पाला गया है। यह आदर्श नही है, चरित्र की दुर्बलता है। मै आपसे पूछती हूँ, आप रामचंद्र की जगह होते, तो क्या आप भी सीता को घर से निकाल देते ?

चक्रधर—नही, मै तो शायद न निकालता।

मनोरमा—आप निन्दा की जरा भी परवा न करते।

चक्रधर—नही, मैं झूठी निन्दा की परवा न करता।

मनोरमा की आँखे खुशी से चमक उठी, प्रफुल्लित होकर बोली—यही बात मेरे मन में थी।

उस दिन से मनोरमा को चक्रधर से कुछ स्नेह हो गया। जब उनके आने का समय होता तो वह पहले ही से आकर बैठ जाती और उनका इन्तजार करती। अब उसे अपने मन के भाव प्रकट करते हुए सकोच न होता।

ठाकुर हरसेवकसिह की आदत थी कि पहले दो-चार महीनों तक नौकरों का वेतन ठीक समय पर देते; पर ज्यों-ज्यों नौकर पुराना होता जाता था, उन्हे उसके वेतन की याद भूलती जाती थी। चक्रधर को भी इधर चार महीनो से कुछ न मिला था। न वह आप-ही-आप देते थे, न चक्रधर सकोचवश माँगते थे। उधर घर में रोज तकरार होती थी। आखिर एक दिन चक्रधर ने विवश हो ठाकुर साहब को एक पुरजा लिखकर अपना वेतन माँगा। ठाकुर साहब ने पुरजा लौटा दिया—व्यर्थ की लिखा-पढी की उन्हें फुरसत न थी और—उनको जो कुछ कहना हो खुद आकर कहे। चक्रधर शरमाते हुए गये और बहुत-कुछ शिष्टाचार के बाद रुपये माँगे। ठाकुर साहब हँसकर बोले—वाह बाबूजी वाह ! आप भी अच्छे मौजी जीव हैं चार महीने से वेतन नही मिला और आपने एक बार भी

सोचिए, मुझे एक मुश्त देने में कितनी असुविधा होगी। खैर जाइए, दस पाँच दिन में रुपये मिल जायेंगे

चक्रधर कुछ न कह सके। लौटे तो मुख पर घोर निराशा छाई हुई थी। मनोरमा ने उनका पुरजा अपने पिता के पास ले जाते हुए राह में पढ़ लिया था। उन्हें उदास देखकर पूछा–दादाजी ने आपको रुपये नही दिये ?

चक्रधर उसके सामने रुपये-पैसे का जिक्र न करना चाहते थे। मुँह लाल हो गया, बोले—मिल जायेंगे।

मनोरमा—आपको १२०) चाहिए न ?

चक्रधर—इस वक्त कोई जरूरत नहीं है।

मनोरमा—जरूरत न होती तो आप माँगते ही न। देखिए, मैं जाकर....

चक्रधर ने रोक कर कहा—नही-नही, कोई जरूरत नही।

मनोरमा ने न माना। तुरन्त घर में गयी और एक क्षण में पूरे रुपये लाकर मेज पर रख दिये।

वह तो पढ़ने बैठ गयी; लेकिन चक्रधर के सामने यह समस्या आ पडी कि रुपये लूँ, या न लूँ। उन्होंने निश्चय किया कि न लेना चाहिए। पाठ हो चुकने पर वह उठ खडे हुए और बिना रुपये लिए बाहर निकल आये। मनोरमा रुपये लिए हुए पीछे-पीछे बरामदे तक आयी। बार-बार कहती रही—इसे आप लेते जाइये, पर चक्रधर ने एक न सुनी और जल्दी से बाहर निकल गये।

२

चक्रधर डरते हुए घर पहुचे तो क्या देखते है कि द्वार पर चारपाई पड़ी हुई है, उस पर कालीन बिछी हुई है और एक अधेड़ उम्र के महाशय उस पर बैठे हुए है। उनके सामने ही एक कुर्सी पर मुंशी वज्रधर बैठे फर्शी पी रहे थे और नाई खड़ा पंखा झल रहा था। चक्रधर के प्राण सूख गये। अनुमान से ताड गये वह कि महाशय वर की खोज में आये है। निश्चय करने के लिए घर में जाकर माता से पूछा तो अनुमान सच्चा निकला। बोले—दादा जी ने इनसे क्या कहा ?

निर्मला ने मुस्कराकर कहा—नानी क्यो मरी जाती है, क्या जन्म भर क्वाँरे ही रहोगे ! जाओ बाहर बैठो, तुम्हारी तो बड़ी देर से जोहाई हो रही है।

चक्रधर—यह है कौन ?

निर्मला—आगरे के कोई वकील है; मुंशी यशोदानन्दन !

चक्रधर—मैं तो घूमने जाता हूँ। जब यह यमदूत चला जाएगा, तो आऊँगा।

निर्मला—वाह रे शर्मीले ! तेरा-सा लडका तो देखा ही नहीं। आ, जरा सिर में तेल डाल दूँ, बाल न जाने कैसे बिखरे हुए हैं। साफ कपड़े पहनकर जरा देर के लिए बाहर जाकर बैठ।

इतने में मुंशीजी ने पुकारा—नन्हें, क्या कर रहे हो ? जरा यहाँ तो आओ।

चक्रधर के रहे-सहे होश भी उड़ गये। बोले—जाता तो हूँ, लेकिन कहे देता हूँ, मै यह जुआ गले में न डालूँगा। जीवन मे मनुष्य का यही काम नही है कि विवाह कर ले, बच्चो का बाप बन जाय और कोल्हू के बैल की तरह आँखों पर पट्टी बाँधकर गृहस्थी मे जुत जाए।

चक्रधर बाहर आये तो मुंशी यशोदानन्दन ने खड़े होकर उन्हें छाती से लगा लिया और कुर्सी पर बैठाते हुए बोले अब की सरस्वती में आपका लेख देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। इस वैमनस्य को मिटाने के लिए आपने जो उपाय बताये हैं, वे बहुत ही विचारपूर्ण हैं।

इस स्नेह-मृदुल आलिंगन और सहृदयता-पूर्ण आलोचना ने चक्रधर को मोहित कर लिया! वह कुछ जवाब देना ही चाहते थे कि मुंशी वज्रधर बोल उठे—आज बहुत देर लगा दी। राजा साहब से कुछ बातचीत होने लगी क्या।

यह कहकर मुंशीजी घर में चले गए तो यशोदानंदन बोले—अब आपका क्या काम करने का इरादा है?

चक्रधर—अभी तो निश्चय किया है कि कुछ दिनों आजाद रहकर सेवा-कार्य करूँ।

यशोदा—आप जैसे उत्साही युवकों का ऊँचे आदर्शों के साथ सेवा-क्षेत्र में आना जाति के लिए सौभाग्य की बात है। आपके इन्हीं गुणों ने मुझे आपकी ओर खींचा है।

चक्रधर ने आँखें नीची करके कहा—लेकिन मैं तो अभी गृहस्थी के बंधन में नहीं पड़ना चाहता। मेरा विचार है कि गृहस्थी में फँसकर कोई तन-मन से सेवा-कार्य नहीं कर सकता।

यशोदा—मैं समझता हूँ कि यदि स्त्री और पुरुष के विचार और आदर्श एक-से हों, तो स्त्री पुरुष के कामों में बाधक होने के बदले सहायक हो सकती है। मेरी पुत्री का स्वभाव, विचार, सिद्धान्त सभी आपसे मिलते हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि आप दोनों एक साथ रहकर सुखी होंगे। सेवा-कार्य में वह हमेशा आपसे एक कदम आगे रहेगी। अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत पढ़ी हुई है, घर के कामों में कुशल है। रही शक्ल-सूरत वह भी आपको इस तस्वीर से मालूम हो जाएगी।

यशोदानंदन तस्वीर चक्रधर के सामने रखते हुए बोले—स्त्री में कितने ही गुण हों, लेकिन यदि उसकी सूरत पुरुष को पसन्द न आयी, तो वह उसकी नजरों से गिर जाती है; और उनका दाम्पत्य-जीवन दुःखमय हो जाता है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि वर और कन्या में दो चार बार मुलाकात भी हो जानी चाहिए कन्या के लिए तो यह अनिवार्य है पुरुष

०। स्त्री पसन्द न आयी तो वह और शादियां कर सकता है। स्त्री को पुरुष पसन्द न आया, तो उसकी सारी उम्र रोते ही गुजरेगी।

चक्रधर के पेट में चूहे दौड़ने लगे कि तस्वीर क्योंकर ध्यान से देखूं। वहां देखते शरम आती थी, मेहमान को अकेला छोडकर घर में न जाते बनता था। कई मिनट तक तो सब्र किये बैठे रहे; लेकिन न रहा गया। पान की तश्तरी और तस्वीर लिए हुए घर में चले आये। अपने कमरे में आकर उन्होंने उत्सुकता से चित्र पर आंखे जमा दी। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो चित्र ने लज्जा से आँखें नीची कर ली है, मानो वह उनसे कुछ कह रही है। उन्होंने तस्वीर उलटकर रख दिया और चाहा कि बाहर चला जाऊँ लेकिन दिल न माना, फिर तस्वीर उठा ली और देखने लगे। आँखो को तृप्ति ही न होती थी। चित्र हाथ में लिए हुए वह भावी जीवन के मधुर स्वप्न देखने लगे। यह ध्यान ही न रहा कि मुंशी यशोदानदन बाहर अकेले बैठे हुए हैं। अपना व्रत भूल गए, सेवा-सिद्धान्त भूल गए, आदर्श भूल गये, भूत और भविष्य वर्तमान में लीन हो गए, केवल एक ही सत्य था, और वह चित्र की मधुर कल्पना थी।

सहसा तबले की थाप ने उनकी समाधि भग की। बाहर संगीत-समाज जमा था। मुंशी वज्रधर को गाने-बजाने का शौक था। गला तो रसीला न था, पर ताल स्वर के ज्ञाता थे। बाहर आये तो मुंशी जी ने धुरपद की एक तान छेड दी थी। पचम स्वर था, आवाज फटी हुई, सास उखड़ जाती थी, बार-बार खॉसकर गला साफ करते थे, लोच का नाम न था, कभी-कभी बेसुरे भी हो जाते थे, पर साजिन्दे वाह-वाह की धूम मचाये हुए थे।

आधी रात के करीब गाना बन्द हुआ। लोगो ने भोजन किया। जब मुंशी यशोदानन्दन बाहर आकर बैठे तो वज्रधर ने पूछा—आपसे कुछ बात-चीत हुई ?

यशोदा०—जी हॉ हुई, लेकिन नहीं खुले।

वज्रधर—विवाह के नाम से चिढ़ता है।

यशोदा० अब शायद राजी हो जायँ

चक्रधर—मुझे तो आप इस जंजाल में न फँसायें तो बहुत अच्छा हो।

यशोदा०—तुम्हें जंजाल में नहीं फँसाता बेटा, तुम्हें ऐसा सच्चा सहायक और मित्र दे रहा हूँ, जो तुम्हारे उद्देश्यों को पूरा करना अपने जीवन का मुख्य कर्त्तव्य समझेगी ! यों तो मैं मन से आपको अपना दामाद बना चुका; पर अहल्या की अनुमति लेनी आवश्यक समझता हूँ। आप भी शायद यह पसन्द न करेंगे कि मैं इस विषय में स्वेच्छा से काम लूँ।

चक्रधर बड़े संकट में पड़े। सिद्धान्त-रूप से वह विवाह के विषय में स्त्रियों को पूरी स्वाधीनता देने के पक्ष में थे, पर इस समय आगरे जाते उन्हें बड़ा संकोच हो रहा था।

यशोदानन्दन ने कहा—मैं आपके मनोभावों को समझ रहा हूँ। पर अहल्या उन चंचल लड़कियों में नहीं है, जिसके सामने जाते हुए आपको शरमाना पड़े। आप उसकी सरलता देखकर प्रसन्न होंगे। मैं तो उसी को लाकर दो-चार दिन के लिए यहां ठहरा सकता हूँ, पर शायद आपके घर के लोग यह पसन्द न करेंगे।

चक्रधर ने सोचा—अगर मैंने और ज्यादा टालमटोल की, तो कहीं यह महाशय सचमुच ही अहल्या को यहाँ न पहुंचा दें। बोले—जी नहीं, मुनासिब नहीं मालूम होता। मैं ही चला चलूँगा।

घर में निर्मलता तो खुशी से राजी हो गयी। हाँ, मुंशी वज्रधर को कुछ संकोच हुआ, लेकिन यह समझकर कि यह महाशय लड़के पर लट्टू हो रहे हैं, कोई अच्छी रकम दे मरेंगे, उन्होंने भी कोई आपत्ति न की। अब केवल ठाकुर हरसेवक सिंह को सूचना देनी थी।

जब चक्रधर पहुँचे तो ठाकुर साहब अपनी प्राणेश्वरी लौंगी से कुछ बातें कर रहे थे। मनोरमा की माता का देहान्त हो चुका था। लौंगी उस वक्त लौंडी थी। उसने इतनी कुशलता से घर सँभाला कि ठाकुर साहब उस पर रीझ गये और उसे गृहिणी के रिक्त स्थान पर अभिषिक्त कर दिया। लौंगी सरल हृदय, सदय, हँसमुख, सहनशील स्त्री थी, जिसने सारे घर को वशीभूत कर लिया था। यह उसी की सज्जनता थी, जो नौकरों को वेतन न मिलने पर भी जाने न देती थी। मनोरमा पर तो वह प्राण देती थी। ईर्ष्या क्रोध, मत्सर उसे छू भी न गया था। वह उदार न हो पर कृपण न थी ठाकुर साहब कभी-कभी उस पर भी बिगड़ जाते थे मारने दौड़ते थे

था ठाकुर साहब का सिर भी दुखे तो उसकी जान निकल जाती थी वह उसकी स्नेहमयी सेवा ही थी जिसने ऐसे हिंसक जीव को जकड रखा था।

इस वक्त दोनों प्राणियो में कोई बहस छिडी हुई थी। ठाकुर साहब झल्ला-झल्ला कर बोल रहे थे, और लौंगी अपराधियों की भाँति सिर झुकाये खड़ी थी कि मनोरमा ने आकर कहा—बाबूजी आये हुए है, आप से कुछ कहना चाहते हैं।

ठाकुर साहब की भौहे तन गयी। बोले कहना क्या चाहते होंगे, रुपया मांगने आये होगे। अच्छा, जाकर कह दो कि आते है, बैठिए।

लौंगी—इनके रुपये दे क्यों नही देते ? बेचारे गरीब आदमी है, सकोच के मारे नही मागते, कई महीने तो चढ गये।

यह कहकर लौंगी गयी और रुपये लाकर ठाकुर साहब से बोली—लो, दे आओ। सुन लेना, शायद कुछ कहना भी चाहते हों।

ठाकुर साहब ने झुंझलाकर रुपये उठा लिए और बाहर चले। लेकिन रास्ते में क्रोध शान्त हो गया। चक्रधर के पास पहुँचे, तो विनय के देवता बने हुए थे।

चक्रधर—आप को कष्ट देने आया हू।

ठाकुर—नहीं-नहीं, मुझे कोई कष्ट नही हुआ। यह लीजिए आप के रुपये।

चक्रधर—मै इस वक्त एक दूसरे ही काम से आया हूं। मुझे एक काम से आगरा जाना है। शायद दो-तीन दिन लगेगे। इसके लिए क्षमा चाहता हूं।

ठाकुर—हाँ, हाँ शौक से जाइए, मुझसे पूछने की जरूरत न थी।

ठाकुर साहब अन्दर चले गए, तो मनोरमा ने पूछा—आप आगरे क्या करने जा रहे हैं।

चक्रधर—एक जरूरत से जाता हूं।

मनोरमा—कोई बीमार है क्या ?

चक्रधर—नही, बीमार कोई नही है।

मनोरमा—फिर क्या काम है, बताते क्यों नही ? जब तक न बतलाइयेगा मैं जाने न दूंगी

मनोरमा जी नही मै यह नही मानती अभी बतलाइए। आप अगर मुझसे बिना बताये चले जायग तो मै कुछ न पढूगी

चक्रधर यह तो बडी टढी शत है बतला ही दूँ अच्छा हसना मत। तुम जरा भी मुस्कराई और मैं चला।

मनोरमा—मैं दोनों हाथों से मुँह बंद किये लेती हूं।

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—मेरे विवाह की कुछ बातचीत है। मेरी तो इच्छा नही हैं, पर एक महाशय जबरदस्ती खीचे लिए जाते है।

यह कहकर चक्रधर उठ खड़े हुए। मनोरमा भी उनके साथ-साथ आयी। जब वह बरामदे से नीचे उतरे, तो प्रणाम किया और तुरन्त अपने कमरे में लौट आयी। उसकी आखें डबडबायी हुई थी और बार-बार रुलाई आती थी, मानो चक्रधर किसी दूर देश जा रहे हो!

३

संध्या समय जब रेलगाड़ी बनारस से चली, तो यशोदानन्दन ने चक्रधर से कहा—मैंने अहल्या के विषय में आप से झूठी बाते कही है। वह वास्तव में मेरी लडकी नही है। उसके माता-पिता का हमें कुछ पता नही।

चक्रधर ने बड़ी-बडी आँखें करके कहा—तो फिर आप के यहाँ कैसे आयी ?

यशोदा०—विचित्र कथा है। १५ वर्ष हुए, एक बार सूर्यग्रहण लगा था। हमारी एक सेवा समिति थी। हम लोग उसी स्नान के अवसर पर यात्रियो की सेवा करने प्रयाग आये थे। वही हमें यह लड़की नाली में पडी रोती मिली। बहुत खोज की; पर उसके मां-बाप का पता न लगा। विवश होकर उसे साथ लेते गये। ४-५ वर्ष तक तो उसे अनाथालय में रखा; लेकिन जब कार्यकर्त्ताओ की फूट के कारण अनाथालय बंद हो गया तो, अपने ही घर में उसका पालन-पोषण करने लगा। जन्म से न हो, पर सस्कारों से वह हमारी लड़की है। उसके कुलीन होने में भी संदेह नही। मैने आप से सारा वृत्तान्त कह दिया। अब आप को अख्तियार है, उसे अपनाये या त्यागे। हाँ, इतना कह सकता हू कि ऐसा रत्न आप फिर न पायेंगे। मै यह जानता हूं कि आप के पिता जी को यह बात असह्य होगी; पर यह भी जानता हूं कि वीरात्माएं सत्कार्य में विरोध की परवाह नही करती और अन्त में उस पर विजय ही पाती हैं।

चक्रधर गहरे विचार में पड़ गये। एक तरफ अहल्या का अनुपम सौन्दर्य और उज्ज्वल चरित्र था, दूसरी ओर माता-पिता का विरोध और लोकनिन्दा का भय, मन में तर्क-सग्रह होने लगा। यशोदानन्दन ने उन्हे असमजस में पड़े देखकर कहा—आप चिन्तित देख पड़ते हैं और चिन्ता की बात भी है, लेकिन जब आप जैसे सुशिक्षित और उदार पुरुष विरोध और भय के कारण कर्त्तव्य और न्याय से मुँह मोड़े, तो फिर हमारा उद्धार हो चुका आपके सामाजिक विचारों की [illegible] का परिचय पाकर ही मैंने आप के ऊपर इस बालिका के [illegible] का भार रखा है और यदि आप

न भी अपने कर्त्तव्य को न समझा, तो मैं नहीं कह सकता उस अबला क क्या दशा होगी

चक्रधर रूप लावण्य की ओर से तो आंख बन्द कर सकते थे लेकि उद्धार के भाव को दबाना उनके लिए असम्भव था। वह स्वतंत्रता के उपासक थे और निर्भीकता स्वतन्त्रता की पहली सीढ़ी है। दृढ भाव से बोले—मेरी ओर से आप जरा शंका न करें। मैं इतना भीरु नहीं हूं कि ऐसे कामों में समाज-निन्दा से डरूं। माता-पिता को प्रसन्न रखना मेरा धर्म है; लेकिन कर्त्तव्य और न्याय की हत्या करके नहीं। कर्त्तव्य के सामने माता-पिता की इच्छा का मूल्य नहीं है।

यशोदानन्दन ने चक्रधर को गले लगाते हुए कहा—भैया, तुमसे ऐसी ही आशा थी।

गाडी आगरे पहुँची, तो दिन निकल आया था। मुंशी यशोदानन्दन अभी कुलियों को पुकार ही रहे थे कि उनकी निगाह पुलिस के सिपाहियों पर पड़ी। चारों तरफ पहरा था। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—क्यों साहब आज यह सख्ती क्यों है ?

थानेदार—आप लोगों ने जो कांटे बोये हैं, उन्हीं का फल है। शहर में फिसाद हो गया है।

इतने में समिति का एक सेवक दौड़ता हुआ आ पहुंचा। यशोदानन्दन ने आगे बढ़कर पूछा—क्यों राधामोहन, यह क्या मामला हो गया।

राधा—जिस दिन आप गये उसी दिन पंजाब से मौलवी दीन मुहम्मद साहब का आगमन हुआ। तभी से मुसलमानों को कुरबानी की धुन सवार है। इधर हिन्दुओं को भी यह जिद है कि चाहे खून की नदी बह जाय, पर कुरबानी न होने पायेगी। दोनों तरफ से तैयारियां हो रही है, हम लोग तो समझाकर हार गए।

यशोदानन्दन ने पूछा—ख्वाजा महमूद कुछ न बोले।

राधा—उन्हीं के द्वार पर तो कुरबानी होने जा रही है।

यशोदा०—ख्वाजा महमूद के द्वार पर कुरबानी होगी ! इसके पहले या तो मेरी कुरबानी हो जायेगी या ख्वाजा महमूद की तांगे वाले को [illegible]।

हो मैं यहां रह जाऊं जो औरों पर बीतेगी वही मुझ पर भी बीतेगी इससे क्या भागना तुम लोगों ने बड़ी भूल की कि मुझे पहले से सूचना न दी। तीनों आदमी तांगे पर बैठ कर चले सड़कों पर जवान चक्कर लगा रहे थे। मुसाफिरों की घड़ियां छीन ली जाती थीं। दो-चार आदमी भी साथ न खड़े होने पाते थे। दूकानें सब बन्द थीं, कुँजड़े भी साग बेचते नजर न आते थे। हाँ, गलियों में लोग जमा हो-होकर बातें कर रहे थे।

कुछ दूर तक तीनों आदमी मौन धारण किये बैठे रहे। चक्रधर शंकित होकर इधर उधर ताक रहे थे। लेकिन यशोदानंदन के मुख पर ग्लानि का गहरा चिह्न दिखायी दे रहा था।

जब ताँगा ख्वाजा महमूद के मकान के सामने पहुंचा तो हजारों आदमियों का जमाव था। यद्यपि किसी के हाथ में लाठी या डण्डे न थे, पर उनके मुख जिहाद के जोश से तमतमाये हुए थे। यशोदानंदन को देखते ही कई आदमी उनकी तरफ लपके; लेकिन जब उन्होंने जोर से कहा—मैं तुमसे लड़ने नहीं आया हूं। कहाँ है ख्वाजा महमूद? मुमकिन हो तो जरा उन्हें बुला लो तो लोग हट गए।

जरा देर में एक लम्बा-सा आदमी, गाढ़े की अचकन पहने, आकर खड़ा हो गया। यही ख्वाजा महमूद थे।

यशोदानन्दन ने त्योरियाँ बदलकर कहा—क्यों ख्वाजा साहब, आपको याद है, इस मुहल्ले में कभी कुरबानी हुई है?

महमूद—जी नहीं, जहाँ तक मेरा ख्याल है, यहाँ कभी कुरबानी नहीं हुई।

यशोदा०—तो फिर आज आप यहाँ कुरबानी करने की नयी रस्म क्यों निकाल रहे हैं?

महमूद—इसलिए कि कुरबानी करना हमारा हक है। अब तक हम आपके जजबात का लिहाज करते थे, अपने माने हुए हक को भूल गये थे; लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जजबात की परवा नहीं करते, तो कोई वजह नहीं कि हम अपने हकों के सामने आपके जजबात की परवा करें।

यशोदा०—इसके यह मानी है कि कल आप हमारे द्वारों पर हमारे मन्दिरों के सामने कुरबानी करें और हम चुपचाप देखा करें? आप यहाँ हरगिज कुरबानी नहीं कर सकते और करेंगे तो इसकी जिम्मेदारी आपके

यह कहकर यशोदानन्दन फिर तांगे पर बैठे दस पांच आदमियों ने तांगे को रोकना चाहा पर कोचवान ने घोड़ा तेज कर दिया जब तांगा यशोदानन्दन के द्वार पर पहुंचा तो वहां हजारों आदमी खड़े थे इन्हें देखते ही चारों तरफ हलचल मच गयी। लोगों ने चारों तरफ से आकर उन्हें घेर लिया।

यशोदानन्दन ताँगे से उतर पड़े और ललकार कर बोले—भाइयो, आप जानते है, इस मुहल्ले में आज तक कभी कुरबानी नहीं हुई। अगर आज हम यहाँ कुरबानी करने देंगे, तो कौन कह सकता है कि कल को हमारे मन्दिर के सामने गौ-हत्या न होगी !

कई आवाजें एक साथ आयीं—हम मर मिटेंगे, पर यहाँ कुरबानी न होने देंगे।

आदमियों को यों उत्तेजित करके यशोदानंदन आगे बढ़े और जनता 'महावीर' और 'श्री रामचंद्र' की जय-ध्वनि से वायुमण्डल को कम्पायमान करती हुई उनके पीछे चली। उधर मुसलमानों ने भी डण्डे सँभाले। करीब था कि दोनों में मुठभेड़ हो जाय कि एकाएक चक्रधर आगे बढ़कर यशोदानन्दन के सामने खड़े हो गए और विनीत, किन्तु दृढ भाव से बोले—आप अगर उधर जाते है, तो मेरी छाती पर पाँव रखकर जाइए। मेरे देखते यह अनर्थ न होने पायेगा।

यशोदानन्दन ने चिढकर कहा—हट जाओ। अगर एक क्षण की भी देर हुई तो फिर पछताने के सिवा और कुछ हाथ न आयेगा।

चक्रधर—मित्रो, जरा विचार से काम लो।

कई आवाजें—विचार से काम लेना कायरों का काम है।

चक्रधर—तो फिर जाइए, लेकिन उस गौ को बचाने के लिए आपको अपने एक भाई का खून करना पड़ेगा।

सहसा एक पत्थर किसी तरफ से आकर चक्रधर के सिर में लगा। खून की धारा बह निकली, लेकिन चक्रधर अपनी जगह से हिले नहीं। सिर थामकर बोले—अगर मेरे रक्त से आपकी क्रोधाग्नि शान्त होती हो, तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

यशोदानन्दन गरजकर बोले—यह कौन पत्थर फेंक रहा है। अगर वह बड़ा वीर है तो क्यों नहीं आगे आकर अपनी वीरता दिखाता ? पीछे खड़ा पत्थर क्यों फेंकता है ?

एक आवाज धर्म-द्रोहियों को मारना अधर्म नहीं है

यशोदानन्दन जिसे तुम धम का द्रोही समझते हो वह तुमसे कहो सच्चा हिन्दू है

एक आवाज–सच्चे हिन्दू वही तो होते हैं, जो मौके पर बगलें झाँकने लगें और शहर छोडकर दो-चार दिन के लिए खिसक जायँ।

यशोदानन्दन—आप लोग सुन रहे हैं, मै सच्चा हिन्दू नहीं हूँ, म मौका पड़ने पर बगले झाँकता हूं और जान बचाने के लिए शहर से भाग जाता हूं। ऐसा आदमी आपका मन्त्री बनने के योग्य नही हूं। आप उस आदमी को अपना मन्त्री बनाये, जिसे आप सच्चा हिन्दू समझते हो।

यह कहते हुए मुँशी यशोदानन्दन घर की तरफ चले। कई आदमियो ने उन्हे रोकना चाहा, लेकिन उन्होंने एक न मानी। उनके जाते ही यहाँ आपस में 'तू-तू' 'मैं-मैं' होने लगी।

चक्रधर ने जब देखा कि इधर से अब कोई शका नहीं है, तो वह लपक कर मुसलमानों के सामने आ पहुचे और उच्च स्वर से बोले—हज-रत, मैं कुछ अर्ज करने की इजाजत चाहता हू।

एक आदमी—सुनो, सुनो, यह तो अभी हिन्दुओ के सामने खडा था।

चक्रधर—अगर इस गाय की कुरबानी करना आप अपना मजहबी फर्ज समझते हो, तो शौक से कीजिए। लेकिन क्या यह लाजमी है कि इसी जगह कुरबानी की जाय ? इसलाम ने हमेशा दूसरों के जजबात का एहत-राम किया है। अगर आप हिन्दू जजबात का लिहाज करके किसी दूसरी जगह कुरबानी करे, तो यकीनन इसलाम के वकार में फर्क न आएगा।

एक मौलवी ने जोर देकर कहा—ऐसी मीठी-मीठी बाते हमने बहुत सुनी हैं। कुरबानी यही होगी।

ख्वाजा महमूद बड़े गौर से चक्रधर की बाते सुन रहे थे। मौलवी साहब की उद्दण्डता पर चिढ़कर बोले—क्या शरीयत का हुक्म है कि कुर-बानी यहीं हो ? किसी दूसरी जगह नही की जा सकती ?

मौलवी साहब ने ख्वाजा महमूद की तरफ अविश्वास की दृष्टि से देखकर कहा मजहब के मामले में उलमा के सिवा और किसी को दखल देने का मजाज नही है

ख्वाजा बुरा न मानिएगा मौलवी साहब ! अगर दस सिपाही आकर यहां खड़े हो जायं तो बगल झांकने लगिएगा।

मौलवी भाइयो आप लोग ख्वाजा साहब की ज्यादती देख रहे हैं। आप ही फैसला कीजिए कि दीनी मामलात में उलमा का फैसला वाजिब है, या उमरा का !

एक मोटे-ताजे दढ़ियल आदमी ने कहा—आप बिस्मिलाह कीजिए। उमरा को दीन से कोई सरोकार नहीं।

यह सुनते ही एक आदमी बड़ा-सा छुरा लेकर निकल पड़ा और कई आदमी गाय की सींगें पकड़ने लगे। गाय अब तक तो चुपचाप खड़ी थी। छुरा देखते ही वह छटपटाने लगी। चक्रधर यह दृश्य देखकर तिलमिला उठे, उन्होंने तेजी से लपककर गाय की गरदन पकड़ ली और बोले—आज आपको इस गौ के साथ एक इन्सान की भी कुरबानी करनी पड़ेगी।

सभी आदमी चकित हो-होकर चक्रधर की ओर ताकने लगे। मौलवी ने क्रोध से उन्मत्त होकर कहा—कलाम-पाक की कसम, हट जाओ, वरना गजब हो जाएगा।

चक्रधर—हो जाने दीजिए। खुदा को यही मरजी है कि आज गाय के साथ मेरी भी कुरबानी हो।

ख्वाजा—कसम खुदा की, तुम-जैसा दिलेर आदमी नही देखा। तुम कलमा क्यो नही पढ़ लेते ?

चक्रधर—मै एक खुदा का कायल हूँ। वही सारे जहान का खालिक और मालिक है। फिर और किस पर ईमान लाऊं ?

ख्वाजा—वल्लाह, तब तो तुम सच्चे मुसलमान हो। हमारे साथ खाने-पीने से परहेज तो नहीं करते ?

चक्रधर—जरूर करता हूं, उसी तरह, जैसे किसी ब्राह्मण के साथ खाने से परहेज करता हूं, अगर वह पाक-साफ न हो।

ख्वाजा—काश, तुम-जैसे समझदार तुम्हारे और भाई भी होते। मगर यहां तो लोग हमें मलिच्छ कहते हैं। यहाँ तक कि हमें कुत्तों से भी नजिस समझते हैं। वल्लाह, आपसे मिलकर दिल खुश हो गया। अब कुछ-कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कौमों में इत्तफाक हो जाय। अब आप जाइए मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि कुरबानी न होगी

ख्वाजा महमूद ने चक्रधर को गले लगाकर रुखसत किया इधर उसी वक्त गाय की पगहिया खोल दी गई। वह जान लेकर भागी। और लोग भी इस 'नौजवान' की 'हिम्मत' और 'जवाँमर्दी' की तारीफ करते हुए चले।

चक्रधर को आते देखकर यशोदानंदन अपने कमरे से निकल आये और उन्हें छाती से लगाते हुए बोले—भैया, आज तुम्हारा धैर्य और साहस देखकर मैं दंग रह गया। तुम्हे देखकर मुझे अपने ऊपर लज्जा आ रही है। तुमने आज हमारी लाज रख ली।

उन्हें कमरे मे बिठाकर यशोदानंदन ने घर में जाकर अपनी स्त्री वागीश्वरी से कहा—आज मेरे एक दोस्त की दावत करनी होगी ? भोजन खूब दिल लगाकर बनाना। अहल्या, आज तुम्हारी पाक-परीक्षा होगी।

अहल्या—वह कौन आदमी था दादा, जिसने मुसलमानों के हाथों गौ-रक्षा की ?

यशोदा०—वही तो मेरे दोस्त हैं, जिनकी दावत करने को कह रहा हूं। यहां सैर करने आये है।

अहल्या—(वागीश्वरी से) अम्मां, जरा उन्हें अन्दर बुला लेना, तो दर्शन करेंगे।

पड़ोस में एक डाक्टर रहते थे। यशोदानंदन ने उन्हे बुलाकर घाव पर पट्टी बँधवा दी। धीरे-धीरे सारा मुहल्ला जमा हो गया। कई श्रद्धालु-जनों ने तो चक्रधर के चरण छुए।

भोजन के बाद ज्योंही लोग चौके से उठे, अहल्या ने कमरे की सफाई की। इन कामो से फुरसत पाकर वह एकान्त में बैठकर फूलो की एक माला गूँथने लगी। मन में सोचती थी, न-जाने कौन है, स्वभाव कितना सरल है ? लजाने में तो औरतों से भी बढ़े हुए है। खाना खा चुके, पर सिर न उठाया। देखने में ब्राह्मण मालूम होते है। चेहरा देखकर तो कोई नहीं कह सकता कि यह इतने साहसी होंगे

अहल्या ऊँह करके रह गई ना उसकी छाती में धड़कन होने लगी एक क्षण में यशोदानन्दनजी चक्रधर को लिये हुए कमरे में आये वागीश्वरी और अहल्या दोनों खड़ी हो गयी। यशोदानन्दन ने चक्रधर को कालीन पर बैठा दिया और खुद बाहर चले गये। वागीश्वरी पखा झलने लगी, लेकिन अहल्या मूर्ति की भाँति खड़ी रही।

चक्रधर ने उड़ती हुई निगाहों से अहल्या को देखा। ऐसा मालूम हुआ, मानो कोमल, स्निग्ध एव सुगन्धमय प्रकाश की लहर-सी आँखों में समा गयी।

वागीश्वरी ने मिठाई की तश्तरी सामने रखते हुए कहा—कुछ जल-पान कर लो भैया, तुमने कुछ खाना भी तो नही खाया। तुम-जैसे वीरो को सवा सेर से कम न खाना चाहिए। धन्य है वह माता, जिसने ऐसे बालक को जन्म दिया! अहल्या, जरा गिलास में पानी तो ला। भैया, जब तुम मुसलमानो के सामने अकेले खड़े थे, तो यह ईश्वर से तुम्हारी कुशल मना रही थी। जाने कितनी मनौतियां कर डाली। कहा है वह माला, जो तूने गूँथी थी? अब पहनाती क्यो नही?

अहल्या ने लजाते हुए काँपते हाथो से माला चक्रधर के गले में डाल दी, और आहिस्ता से बोलीं—क्या सिर में ज्यादा चोट आयी?

चक्रधर—नहीं तो; बाबूजी ने ख्वाहमख्वाह पट्टी बँधवा दी।

चक्रधर मिठाइयाँ खाने लगे। इतने में महरी ने आकर कहा—बड़ी बहूजी, मेरे लाला को रात से खाँसी आ रही है। कोई दवाई दे दो।

वागीश्वरी दवा देने चली गयी। अहल्या अकेली रह गयी, तो चक्र-धर ने उसकी ओर देखकर कहा—आपको मेरे कारण बड़ा कष्ट हुआ। मैं तो इस उपहार के योग्य न था।

अहल्या—यह उपहार नही, भक्त की भेंट है।

वागीश्वरी ने आकर मुस्कराते हुए कहा—भैया, तुमने तो आधी भी मिठाइयाँ नही खायीं। क्या इसे देखकर भूख-प्यास बन्द हो गयी? यह मोहनी है, जरा इससे सचेत रहना।

अहल्या—अम्माँ, तुम छोटे-बड़े किसी का लिहाज नहीं करती!

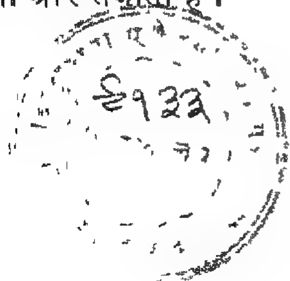
चक्रधर यहाँ कोई घण्टे-भर तक बैठे रहे वागीश्वरी ने उनके घर का सारा वृत्तान्त पूछा—कै भाई हैं कै बहिनें

का विवाह हुआ या नहीं ? चक्रधर को उसके व्यवहार में इतना मातृ-स्नेह भरा मालूम होता था मानो उससे पुराना परिचय है। चार बजते-बजते ख्वाजा महमूद के आने की खबर पाकर चक्रधर बाहर चले आये। और भी कितने ही आदमी मिलने आये थे। शाम तक उन लोगों से बात होती रही। निश्चय हुआ कि एक पंचायत बनायी जाय और आपस के झगड़े उसी के द्वारा तय हुआ करें। चक्रधर को भी लोगों ने उस पंचायत का एक मेम्बर बनाया। रात को जब अहल्या और वागीश्वरी छत पर लेटीं, तो वागीश्वरी ने पूछा—अहल्या, सो गयी क्या ?

अहल्या—नहीं अम्माँ, जाग तो रही हूं।

वागीश्वरी—हाँ, आज तुझे क्यों नींद आयेगी ! इनसे ब्याह करेगी ? तुम्हारे बाबूजी तुमसे मिलाने ही के लिए इन्हें काशी से लाये हैं। इनके पास और कुछ हो या न हो, हृदय अवश्य है। और ऐसा हृदय, जो बहुत कम लोगों के हिस्से में आता है। ऐसा स्वामी पाकर तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।

अहल्या ने डबडबायी हुई आँखों से वागीश्वरी को देखा; पर मुँह से कुछ न बोली। कृतज्ञता शब्दों में आकर शिष्टाचार का रूप धारण कर लेती है ! उसका मौलिक रूप वही है, जो आँखों से बाहर निकलते हुए काँपता और लजाता है।



४

मुँशी वज्रधर उन रेल के मुसाफिरो में थे, जो पहले तो गाड़ी में खड़े होने की जगह माँगते है, फिर बैठने की फिक्र करने लगते हैं और अन्त में सोने की तैयारी कर देते है। चक्रधर एक बड़ी रियासत के दीवान की लड़की को पढ़ाये और वह इस स्वर्ण-सयोग से लाभ न उठाये! यह क्योकर हो सकता था। दीवान साहब को सलाम करने आने-जाने लगे। बाते करने में तो निपुण थे ही, दो-ही-चार मुलाकातों में उनका सिक्का जम गया। इस परिचय ने शीघ्र ही मित्रता का रूप धारण किया। एक दिन दीवान साहब के साथ वह रानी जगदीशपुर के दरबार में जा पहुँचे और ऐसी लच्छेदार बाते कीं, अपनी तहसीलदारी की ऐसी डींट उडायी कि रानीजी मुग्ध हो गयी! सोचा—इस आदमी को रख लूँ, तो इलाके की आमदनी बढ जाय। ठाकुर साहब से सलाह की। यहाँ तो पहले ही से सारी बाते सधी-बंधी थी। ठाकुर साहब ने रग और भी चोखा कर दिया। दूसरी ही सलामी में मुँशीजी को २५) मासिक की तहसीलदारी मिल गयी। मुँह-मांगी मुराद पूरी हुई। सवारी के लिए घोड़ा भी मिल गया। सोने में सुहागा हो गया।

अब मुँशीजी की पाँचों अँगुली घी में थी! जहाँ महीने में एक बार भी महफिल न जमने पाती थी, वहाँ अब तीसों दिन जमघट होने लगा। इतने बडे अहलकार के लिए शराब की क्या कमी। कभी इलाके पर चुपके से दस-बीस बोतलें खिचवा लेते, कभी शहर के किसी कलवार पर धौंस जमाकर दो-चार बोतल ऐंठ लेते। बिना हर्र-फिटकरी रंग चोखा हो जाता था। एक कहार भी नौकर रख लिया और ठाकुर साहब के घर से दो-चार कुर्सियां उठवा लाये। उनके हौसले बहुत ऊँचे न थे, केवल एक भले आदमी की भाँति जीवन व्यतीत करना चाहते थे। इस नौकरी ने उनके हौसले को बहुत कुछ पूरा कर दिया; लेकिन यह जानते थे कि इस नौकरी का कोई ठिकाना नही रईसों का मिजाज एक-सा नही रहता मान लिया रान

स हव के साथ नम है थे। छा के दिन राजा साहब आते ही पुराने नौकरो को निकाल बाहर करगे जब दीवान साहब ही न रहेगे तो मेरी क्या हस्ती ! इसलिए उन्होने पहले ही से नये राजा साहब के यहा आना जाना शुरू कर दिया था. इनका नाम ठाकुर विशालसिंह था. रानी साहबा के चचेरे देवर होते थे। उनके दादा दो भाई थे। बडे भाई रियासत के मालिक थे। उन्ही के वंशजों ने दो पीढियों तक राज्य का आनन्द भोगा था। अब रानी के निस्सन्तान होने के कारण विशालसिंह के भाग्य उदय हुए थे। दो-चार गॉव, जो उनके दादा को गुजारे के लिए मिले थे, उन्ही को रेहन-बय करके इन लोगो ने 50 वर्ष काट दिये थे—यहा तक कि विशालसिंह के पास अब इतनी भी सम्पत्ति न थी कि गुजर-बसर के लिए काफी होती। उस पर कुल मर्यादा का पालन करना आवश्यक था। वह महारानी के पट्टीदार थे और इस हैसियत का निर्वाह करने के लिए उन्हें नौकर-चाकर, घोड़ा गाडी, सभी कुछ रखना पडता था। अभी तक परम्परा की नकल होती चली आती थी। दशहरे के दिन उत्सव जरूर मनाया जाता, जन्माष्टमी के दिन जरूर धूम धाम होती।

प्रात:काल था, माघ की ठंड पड रही थी। मुँशी जी ने गर्म पानी से स्नान किया, कपड़े पहने; बाहर घोड़ा तैयार था, उस पर बैठे और शिवपुर चले।

जब वह ठाकुर साहब के मकान पर पहुँचे, तो ठाकुर साहब धूप में बैठे एक पत्र पढ रहे थे।

मुँशी जी ने मोढे पर बैठते हुए कहा—सब कुशल आनन्द है न ?

ठाकुर—जीहाँ, ईश्वर की दया है। कहिए, दरबार के क्या समाचार है ?

मुँशी जी ने मुस्कराकर कहा—सब वही पुरानी बाते है। डाक्टरों के पौ बारह है। दिन मे तीन-तीन डाक्टर आते हैं। रोज जगदीशपुर से 16 कहार पालकी उठाने के लिए बेगार पकड़कर आते है। वैद्य जी को लाना और ले जाना उनका काम है।

ठाकुर—अन्धेर है और कुछ नही ? यह महा अन्याय है, बेचारी प्रजा तबाह हुई जाती है। आप देखेंगे कि मै इस प्रथा को क्योकर जड़ से उठा देता हूँ।

मुंशी—आप से लोगों को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। चमारों पर भी यही आफत है दस-बारह चमार रोज साईसी करने के लिए पकड बुलाये

जाते हैं सुना है इलाके भर के चमारो ने पचायत की है कि जो स ईसा करे ‿सका हुक्का पानी बन्द कर दिया जाय अब या तो चमारो को इलाका छोडना पडगा या दीवान साहब को साइस नौकर रखने पडगे

ठाकुर—चमारो को इलाके से निकालना दिल्लगी नही है ! ये लोग समझते है कि अभी वही दुनिया है, जो बाबा आदम के जमाने में थी। इस देश से न जाने कब यह प्रथा मिटेगी। मैं रियासत की काया-पलट कर दूगाँ। सुनता हूँ, पुलिस आये-दिन इलाके में तूफान मचाती रहती है। मै पुलिस को वहाँ कदम न रखने दूगाँ।

मु शी—सड़के इतनी खराब हो गयी है कि एक्के-गाडी का गुजर ही नही हो सकता।

ठाकुर—सडकों को दुरुस्त करना मेरा पहला काम होगा। मोटर-सर्विस जारी कर दूगाँ, जिसमें मुसाफिरो को स्टेशन से जगदीशपुर जाने में सुविधा हो। इलाके में लाखो बीघे ऊख बोयी जाती है। मेरा इरादा है कि एक शक्कर की मिल खोल दू ँ। शेखी नही मारता, इलाके में एक बार राम-राज्य स्थापित कर दू ँगा। आपने किसी महाजन को ठीक किया ?

मु ंशी - हाँ कई आदमियो से मिला था और वे बडी खुशी से रुपये देने के लिए तैयार है, केवल यही चाहते है कि जमानत के तौर पर कोई गाव लिख दिया जाय।

ठाकुर—तो जाने दीजिए। अगर कोई मेरे विश्वास पर रुपये दे, तो दे, लेकिन रियासत की इंच-भर भी जमीन रेहन नही कर सकता। मुझे पहले ही मालुम था कि इस शर्त पर कोई महाजन रुपये देने पर राजी न होगा। ये बला के चघड होते है। मुझे तो इनके नाम से चिढ है। मेरा वश चले, तो आज इन सबो को तोप पर उडा दू ँ। इन्ही के हाथों आज मेरी यह दुर्गति है ! इन नर-पिशाचो ने सारा रक्त चूस लिया। पिताजी ने केवल पांच हजार लिये थे, जिनके पचास हजार हो गये। और मेरे तीन गांव, जो इस वक्त दो लाख के सस्ते थे, नीलाम हो गये। पिताजी का मुझे यह अन्तिम उपदेश था कि कर्ज कभी मत लेना। इस शोक में उन्होंने देह त्याग दी।

यहाँ अभी यह बातें हो ही रही थी कि जनानखाने में से कलह-शब्द आने लगे। मालूम होता था, कई स्त्रियों में संग्राम छिड़ा हुआ है। ठाकुर साहब ये कर्कश शब्द सुनते ही विकल हो गये, उनके माथे पर बल पड़ गये, मुख तेजहीन हो गया यही उनके जीवन की सबसे दारुण व्यथा थी यही

काटा था जो नित्य उनके हृदय में खटका करता था उनकी बडी स्त्री का नाम वसुमती था वह अत्यन्त गर्वशीला थी नाक पर मक्खी भी न बैठने देती वह अपनी सहपत्नियो पर उसी भाति शासन करना चाहती थी जैसे कोई सास अपनी बहुओ पर करती है।

दूसरी स्त्री का नाम रामप्रिया था। यह रानी जगदीशपुर की सगी बहन थी। दया और विनय की मूर्ति, बडी विचारशील और वाक्य-मधुर, जितना कोमल अग था, उतना ही कोमल हृदय भी था। घर में इस तरह रहती थी मानो थी ही नही। उन्हे पुस्तकों से विशेष रुचि थी, हरदम कुछ न कुछ पढा लिखा करती थी। सबसे अलग-विलग रहती थी, न किसी के लेने में, न देने में; न किसी से वैर, न प्रेम।

तीसरी महिला का नाम रोहिणी था। ठाकुर साहब का उन पर विशेष प्रेम था, और वह भी प्राणपण से उनकी सेवा करती थी। इनमें प्रेम की मात्रा अधिक थी, या माया की—इसका निर्णय करना कठिन था। उन्हे यह असह्य था कि ठाकुर साहब उनकी सौतो से बातचीत भी करे। वसु-मती कर्कशा होने पर भी मालिन हृदय न थी, जो कुछ मन में होता, वही मुख में। रोहिणी द्वेष को पालती थी, जैसे चिडिया अपने अण्डे को सेती है।

ठाकुर साहब ने अन्दर जाकर वसुमती से कहा—तुम घर मे रहने दोगी या नही ? जरा भी शरम-लिहाज नही, जब देखो सग्राम मचा रहता है। सुनते-सुनते कलेजे में नासूर पड़ गये।

वसुमती—कर्म तो तुमने किये है, भोगेगा कौन ?

ठाकुर—तो जहर दे दो। जला-जलाकर मारने से क्या फायदा !

वसुमती—क्या वह महारानी लड़ने के लिए कम थी कि तुम उनका पक्ष लेकर आ दौड़े ?

रोहिणी—आप चाहती है कि मैं कान पकड कर उठाऊँ या बैठाऊँ तो यहा कुछ आप के गॉव में नही बसी हू।

ठाकुर—आखिर कुछ मालूम भी तो हो, क्या बात हुई ?

रोहिणी—वही हुई, जो रोज होती है। मैंने हिरिया से कहा, जरा मेरे सिर में तेल डाल दे। मालकिन ने उसे तेल डालते हुए देखा, तो आग हो गयीं। तलवार खीचे हुए आ पहुँची और उसका हाथ पकड़कर खीच ले गयी। आज आप निश्चय कर दीजिए की हिरिया उन्ही की लौडी है या मेरी भी।

वसुमती वह क्या निश्चय करेंगे निश्चय मैं करूंगी हिरिया मेरे साथ मेरे नैहर से आयी है और मेरी लौंडी है किसी दूसरे का उस पर कोई दावा नहीं है

रोहिणी—सुना आप ने। हिरिया पर किसी का दावा नहीं है; वह अकेली उन्हीं की लौंडी है।

ठाकुर—हिरिया इस घर में रहेगी, तो उसे सबका काम करना पड़ेगा।

वसुमती यह सुनकर जल उठी। नागिन की भांति फुफकार कर बोली—इस वक्त तो आप ने चहेती रानी की ऐसी डिग्री कर दी, मानो यहाँ उन्हीं का राज्य है। ऐसे ही न्यायशील होते तो सन्तान का मुंह देखने को न तरसते !

ठाकुर साहब को ये शब्द बाण-से लगे। कुछ जवाब न दिया। बाहर आकर कई मिनट तक मर्माहत दशा में बैठे रहे। वसुमती इतनी मुंहफट है, यह उन्हें आज मालुम हुआ। ताना ही देना था, तो और कोई लगती हुई बात कह देती। यह तो कठोर-से-कठोर आघात है, जो वह कर सकती थी। ऐसी स्त्री का मुँह न देखना चाहिए।

सहसा उन्हे एक बात सूझी। मुंशी जी से बोले—यदि आप यहाँ के किसी विद्वान ज्योतिषी से परिचित हों, तो कृपा करके उन्हें मेरे यहां भेज दीजिएगा। मुझे एक विषय में उनसे कुछ पूछना है।

मुंशी—आज ही लीजिए, यहां एक-से-एक बढ़कर ज्योतिषी पड़े हुए है। आप मुझे कोई गैर न समझिए। जब, जिस काम की इच्छा हो, मुझे कहला भेजिए। सिर के बल दौड़ा आऊँगा। मैं तो जैसे महारानी को समझता हूँ, वैसे ही आप को भी समझता हूं।

ठाकुर—मुझे आप से ऐसी ही आशा है। जरा रानी साहबा का कुशल समाचार जल्द-जल्द भेजिएगा। वहाँ आप के सिवा मेरा कोई नहीं हैं। आप ही के ऊपर मेरा भरोसा है। जरा देखिएगा, कोई चीज इधर-उधर न होने पाये, यार लोग नोच-खसोट न शुरु कर दे।

मुंशी—आप इससे निश्चिन्त रहें। मैं देखभाल करता रहूंगा।

ठाकुर—हो सके, तो जरा यह भी पता लगाइएगा कि रानी ने कहां-कहां से कितने रुपये कर्ज लिए हैं।

मुंशी समझ गया यह तो सहज ही में मालुम हो सकता है

ठाकुर जरा इसका भी पता लगाइएगा कि आजकल उनका भोजन कौन बनाता है

वज्रधर ने ठाकुर साहब के मन का भाव ताडकर दृढता से कहा–महाराज, क्षमा कीजिएगा, मै आपका सेवक हू। पर रानी जी का भी सेवक हूँ। उनका शत्रु नही हूँ। आप और वह दोनो सिह और सिहनी की भाति लड सकते है। मै गीदड़ की भाति अपने स्वार्थ के लिए बीच में कूदना अपमानजनक समझता हूँ। मैं वहा तक तो सहर्ष आप की सेवा कर सकता हूँ, जहां तक रानी जी का अहित न हो। मैं तो दोनो ही द्वारों का भिक्षुक हूँ।

ठाकुर साहब दिल में शरमाये, पर इसके साथ मुंशी जी पर उनका विश्वास और भी दृढ हो गया। बात बनाते हुए बोले—नही नही, मेरा मतलब आपने गलत समझा। छी ! छी ? मै इतना नीच नही।

ठाकुर साहब ने बात तो बनायी पर उन्हे स्वयं ज्ञात हो गया कि बात बनी नही। अपनी झेंप मिटाने को वह समाचार-पत्र देखने लगे। इतने मे हिरिया ने आकर मुंशीजी से कहा—बाबा, मालकिन ने कहा है कि आप जाने लगे, तो मुझसे मिल लिजियेगा।

ठाकुर साहब ने गरजकर कहा—ऐसी क्या बात है, जिसको कहने की इतनी जल्दी है। इन बेचारों को देर हो रही है, कुछ निठल्ले थोड़े ही है कि बैठे-बैठे औरतों का रोना सुना करे। जा अन्दर बैठ !

यह कहकर ठाकुर साहब उठ खडे हुए, मानो मुंशी जी को विदा कर रहे हैं। वह वसुमती को उनसे बाते करने का अवसर न देना चाहते थे। मुंशी जी को भी अब विवश होकर विदा मॉगनी पडी।

मुँशी जी यहां से चले, तो उनके मन में यह शंका समायी हुई थी कि ठाकुर साहब कहीं मुझ से नाराज तो नहीं हो गये। हां इतना सतोष था कि मैने कोई बुरा काम नही किया। इस विचार से मुंशी जी और अकडकर घोडे पर बैठ गये। वह इतने खुश थे, मानों हवा में उड़ रहे है। उनकी आत्मा कभी इतनी गौरवोन्मत्त न हुई थी। चिन्ताओ को कभी उन्होंने इतना तुच्छ न समझा था।

५

चक्रधर की कीर्ति उनसे पहले ही बनारस पहुँच चुकी थी। उनके मित्र और और अन्य लोग उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो रहे थे। जब वह पाँचवे दिन घर पहुँचे, तो लोग मिलने और बधाई देने आ पहुँचे। नगर का सभ्य-समाज मुक्तकंठ से उनकी तारीफ कर रहा था। यद्यपि चक्रधर गम्भीर आदमी थे, पर अपनी कीर्ति की प्रशंसा से उन्हे सच्चा आनन्द मिल रहा था। और लोग तो तारीफ कर रहे थे, पर मुँशी वज्रधर लड़के की नादानी पर बिगड रहे थे। निर्मला तो इतना बिगडी कि चक्रधर से बात न करना चाहती थी।

शाम को चक्रधर मनोरमा के घर गये। वह बगीचे में दौड-दौड़कर हजारे से पौधो को सीच रही थी। पानी से कपडे लथपथ हो गये थे। उन्हे देखते ही हजारा फेककर दौडी और पास आकर बोली—आप कब आये, बाबू जी! मै पत्रो में रोज वहाँ का समाचार देखती थी और सोचती थी कि आप यहाँ आयेगे, तो आपकी पूजा करूँगी। आप न होते, तो वहाँ जरूर दगा हो जाता। आप को बिगड़े हुए मुसलमानों के सामने अकेले जाते हुए जरा भी शका न हुई?

चक्रधर ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—जरा भी नही! मुझे तो यही धुन थी कि इस वक्त कुरबानी न होने दूँगा, इसके सिवा दिल में और कोई ख्याल न था। मै तो यही कहूँगा कि मुसलमानो को लोग नाहक बदनाम करते है। फिसाद से वे भी उतना ही डरते है, जितना हिन्दू! शान्ति की इच्छा भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है।

मनोरमा—मैने तो जब पढा कि आप उन बौखलाये हुए आदमियो के सामने निःशक भाव से खड़े थे, तो मेरे रोगटे खड़े हो गये। मैं उस समय वहाँ होती, तो आपको पकडकर खींच लाती। अच्छा, तो बतलाइए कि आपसे वधूजी ने क्या बाते की? (मुस्कराकर) मै तो जानती हूँ, आपने कोई बातचीत न की होगी चुपचाप लजाये बैठे रहे होगे।

चक्रधर शरम से सिर झुकाकर बोले हाँ मनोरमा हुआ तो ऐसा ही मेरी समझ में ही न आता था कि बातें क्या करू उसने दो एक बार कुछ बोलने का साहस भी किया

मनोरमा—आपको देखकर खुश तो बहुत हुई होगी।

चक्रधर—(शरमाकर) किसी के मन का हाल मैं क्या जानू ?

मनोरमा ने अत्यन्त सरल भाव से कहा—सब मालूम हो जाता है। आप मुझसे बता नही रहे है। कम-से-कम इच्छा तो मालूम हो ही गई होगी। मैं तो समझती हूँ जो विवाह लड़की की इच्छा के विरुद्ध किया जाता है वह विवाह ही नही है। आपका क्या विचार हैं ?

चक्रधर बड़े असमजस में पड़े। मनोरमा से ऐसी बाते करते उन्हे सकोच होता था। डरते थे कि कही ठाकुर साहब को खबर मिल जाय—सरला मनोरमा ही कह दे—तो वह समझेंगे, मैं इसके सामाजिक विचारो मे क्रांति पैदा करना चाहता हूँ। अब अक उन्हे ज्ञान न था कि ठाकुर साहब किन विचारो के आदमी है। हाँ, उनके गगा-स्नान से यह आभास होता था कि वह सनातन-धर्म के भक्त है। सिर झुकाकर बोले—मनोरमा, हमारे यहाँ विवाह का आधार प्रेम और इच्छा पर नही, धर्म और कर्तव्य पर रखा गया है इच्छा चचल है, क्षण-क्षण में बदलती रहती है। कर्तव्य स्थायी है, उसमें कभी परिवर्तन नही होता।

सहसा घर के अन्दर से किसी के कर्कश शब्द कान में आये. फिर लौंगी का रोना सुनायी दिया। चक्रधर ने पूछा—यह तो लौंगी रो रही है ?

मनोरमा—जी हाँ ! आपसे तो भाई साहब की भेंट नहीं हुई ? गुरुसेवकसिंह नाम है। कई महीनो से देहात में जमीदारी का काम करते है। है तो मेरे सगे भाई और पढे-लिखे भी खूब है, लेकिन भलमनसी छू भी नही गई। जब आते है, लौंगी अम्मा से झूठ-मूठ तकरार करते है। न जाने उससे इन्हें क्या अदावत है।

इतने में गुरुसेवकसिंह लाल-लाल आँखे किये निकल आये और मनोरमा से बोले—बाबूजी कहाँ गये है ? तुझे मालूम है कब तक आयेंगे। मैं आज ही फैसला कर लेना चाहता हू। चक्रधर को बैठे देखकर वह कुछ झिझके और अन्दर लौटना ही चाहते थे कि लौंगी रोती हुई आकर चक्रधर के पास खड़ी हो गयी और बोली—बाबूजी, इन्हे समझाइए कि मैं अब बुढापे में कहाँ जाऊँ ? इतनी उम्र तो इसमें कटी अब किसके द्वार पर जाऊँ ? मैंने इन्हे अपना दूध पिलाकर पाला है मालकिन के दूध न होता

गुरुसेवकसिंह की इच्छा तो न थी कि चक्रधर से इस कलह के संबंध में कुछ कहें लेकिन जब लौंगी ने उन्हें पंच बनाने में संकोच न किया तो वह खुल पड़े। बोले महाशय इससे यह पूछिये कि अब यह बुढ़िया हुई इसके मरने के दिन आये क्या नहीं किसी तीर्थस्थान में जाकर अपने कलुषित जीवन के बचे हुए दिन काटती ? मरते दम तक घर की स्वामिनी बनी रहना चाहती है। दादाजी भी सठिया गये हैं; उन्हें मानापमान की जरा भी फिक्र नहीं। इसने उन पर न जाने क्या मोहिनी डाल दी है कि इनके पीछे मुझसे लड़ने पर तैयार रहते हैं। आज मैं निश्चय करके आया हूं कि इसे घर के बाहर निकाल कर ही छोड़ूंगा। या तो यह किसी दूसरे मकान में रहे या किसी तीर्थ-स्थान को प्रस्थान करे।

लौंगी—तो बच्चा सुनो, जब तक मालिक जीता है, लौंगी इसी घर में रहेगी और इसी तरह रहेगी। जब वह न रहेंगे, तो जो कुछ सिर पर पड़ेगी, झेल लूंगी। मैं लौंडी नहीं हूं कि घर से बाहर जाकर रहूं। तुम्हें यह कहते लज्जा नहीं आती ? चार भाँवरें फिर जाने से ही ब्याह नहीं हो जाता। मैंने अपने मालिक की जितनी सेवा की है और करने को तैयार हूं, उतनी कौन ब्याहता करेगी ? लाये तो हो बहू, कभी उठकर एक लुटिया पानी भी देती है ? नाम से कोई ब्याहता नहीं होती, सेवा और प्रेम से होती है।

यह कहती हुई लौंगी घर में चली गयी। मनोरमा चुपचाप सिर झुकाये दोनों की बातें सुन रही थी। उसे लौंगी से सच्चा प्रेम था। मातृ-स्नेह का जो कुछ सुख उसे मिला था, लौंगी से ही मिला था, उसकी माता तो उसे गोद में छोड़कर परलोक सिधारी थी। उस एहसान को वह कभी न भूल सकती थी। अब भी लौंगी उस पर प्राण देती थी। इसलिए गुरुसेवकसिंह की यह निर्दयता उसे बहुत बुरी मालूम होती थी।

एकाएक फिटन की आवाज आई और ठाकुर साहब उतरकर अन्दर गये। गुरुसेवकसिंह भी उनके पीछे-पीछे चले। वह डर रहे थे कि लौंगी अवसर पाकर कहीं उनके कान न भर दे।

जब वह चले गये, तो चक्रधर ने कहा—यह तो बताओ कि तुमने इन चार-पाँच दिनों में क्या काम किया ?

मनोरमा—मैंने तो किताब तक नहीं खोली। आप नहीं रहते तो मेरा किसी काम में जी नहीं लगता। आप अब कभी बाहर न जाइएगा।

चक्रधर ने मनोरमा की ओर देखा, तो उसकी आँखें सजल हो गई थीं। सोचने लगे—बालिका का हृदय कितना सरल, कितना उदार, कितना कोमल और कितना

६

मुंशी वज्रधर विशालसिंह के पास से लौटे, तो उनकी तारीफों के पुल बाँध दिये। यह तारीफ सुनकर चक्रधर को विशालसिंह से श्रद्धा-सी हो गई। उनसे मिलने गये और समिति के सरक्षकों में उनका नाम दर्ज कर लिया। तब से कुंवर साहब समिति की सभाओं में नित्य सम्मिलित होते थे। अतएव अब की जब उनके यहाँ कृष्णाष्टमी का उत्सव हुआ तब चक्रधर अपने सहवर्गियों के साथ उसमें शरीक हुए।

कुंवर साहब कृष्ण के परम भक्त थे। उनका जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाते थे, उनकी स्त्रियों में भी इस विषय में मतभेद था। रोहिणी कृष्ण की उपासक थी, तो वसुमति रामनवमी का उत्सव मनाती थी, रही राम प्रिया, वह कोई व्रत न रखती थी।

सन्ध्या हो गयी थी। बाहर कँवल, झाड आदि लगाये जा रहे थे। चक्रधर अपने मित्रों के साथ बनाव-सजाव में मसरूफ थे। संगीत समाज के लोग आ पहुँचे थे। गाना शुरू होने वाला ही था कि वसुमती और रोहिणी में तकरार हो गई। वसुमती को यह तैयारियाँ एक आँख न भाती थी। उसके रामनवमी के उत्सव में सन्नाटा-सा रहता था। विशालसिंह उस उत्सव से उदासीन रहते थे। वसुमती इसे उनका पक्षपात समझती थी। वह दिल में जल-भुन रही थी। रोहिणी सोलहो-शृंगार किये पकवान बना रही थी। उसका वह अनुराग देख-देख कर वसुमती के कलेजे पर साँप-सा लोट रहा था। वह इस रंग में भंग मिलाना चाहती थी। सोचते-सोचते उसे एक बहाना मिल गया। महरी को भेजा, जाकर रोहिणी से कहा—घर के बरतन जल्दी खाली कर दें। दो थालियाँ दो बटलोइयाँ, कटोरे, कटोरियाँ माँग लो। उनका उत्सव रात भर होगा, तो कोई कब तक बैठा भूखो मरे। महरी गयी, तो रोहिणी ने तन्नाकर कहा—आज इतनी भूख लग गयी। रोज तो आधी रात तक बैठी रहती थी, आज 8 बजे ही भूख सताने लगी। अगर ऐसी ही जल्दी है, तो कुम्हार के यहाँ से हाडियाँ मँगवा ल पत्तल मैं दे दूँगी

वसुमती ने यह सुना तो आग हो गई हाँडिया चढाये मेरे दुश्मन जिनकी छाती फटती हो मै क्या हाँडी चढाऊ ? उत्सव मनाने की बडी साध है तो नये बासन क्यो नही मगवा लेती ? अपने कृष्ण से कह द गाडी भर बरतन भेज द । क्या जबरदस्ती दूसरो को भूखो मारगी ।

रोहिणी रसोई से बाहर निकलकर बोली—बहन, जरा मुँह सँभाल कर बाते करो । देवताओं का अपमान करना अच्छा नही ।

वसुमती—अपमान तो तुम करती हो, जो व्रत के दिन यों बन-ठनकर अठिलाती फिरती हो । देवता रग-रूप नहीं देखते, भक्ति देखते है ।

रोहिणी—क्या आज लडने ही पर उतारू होकर आई हो, क्या ? भगवान् सब दु ख दे, पर बुरी सगत न दे । लो, यह गहने कपड़े आँखो में गड रहे है न ! न पहनूँगी । जाकर बाहर कह दे पकवान-प्रसाद किसी हलवाई से बनवा लें । मुझे क्या, मेरे मन का हाल भगवान् आप जानते हे, पडेगी उन पर जिनके कारण यह सब हो रहा है।

यह कहकर रोहिणी अपने कमरे में चली गयी । सारे गहने-कपडे उतार फेंके और मुँह ढाँप कर चार पाई पर पडी रही । ठाकुर साहब ने यह समाचार सुना तो माथा कूटकर बोले—इन चाण्डालिनो से आज शुभोत्सव के दिन भी शांत नहीं बैठा जाता । इस जिन्दगी से तो मौत हो अच्छी । घर में आकर रोहिणी से बोले—तुम मुँह ढाँपकर सो रही हो, या उठकर पकवान बनाती हो ?

रोहिणी ने पडे-पडे उत्तर दिया—फट पड़े वह सोना, जिससे टूटे कान ! ऐसे उत्सव से बाज आयी; जिसे देखकर घरवालो की छाती फटे ।

विशालसिंह— तुम से तो बार-बार कहा कि उनके मुँह न लगा करो । एक चुप सौ वक्ताओं को हरा देता है। फिर तुमसे बड़ी भी तो ठहरी, यो भी तुमको उनका लिहाज करना ही चाहिए ।

रोहिणी क्यो दबने लगी । यह उपदेश सुना तो झुँझलाकर बोली—रहने भी दो जले पर नमक छिडकते हो ! जब बड़ा देख-देखकर जले, बात बात पर कोसे, तो कोई कहाँ तक उसका लिहाज करे । तुम्ही ने उन्हें सिर पर चढा लिया है । कोई बात होती है, मुझी को उपदेश करने को दौडते हो, सीधा पा लिया है न ! उनसे बोलते हुए तो तुम्हारा भी कलेजा काँपता है । तुम न शह देते, तो मजाल थी कि यों मुझे आंखे दिखती !

विशालसिंह—तो क्या मै उन्हें सिखा देता हूँ कि तुम्हे गालिया दें ?

कुंवर साहब ज्यों ज्यों रोहिणी का क्रोध शांत करने की चेष्टा करते थे वह और भी बफरती जाती थी यहां तक कि अंत में वह भी नम पड गये

वसुमती सायबान में बैठी हुइ दोनो प्राणियों की बात तन्मय होकर सुन रही थी, मानो कोई सेनापति अपने प्रतिपक्षी की गति का अध्ययन कर रहा हो, कि कब यह चूके और कब मैं दबा बैठूं। अन्त में प्रतिद्वन्द्वी की एक भद्दी चाल ने उसे अपेक्षित अवसर दे ही दिया। विशालसिंह को मुँह लटकाये रोहिणी की कोठरी से निकलते देखकर बोली—क्या मेरी सूरत न देखने की कसम खा ली है, या तुम्हारे हिसाब से मैं घर में हूं ही नहीं। बहुत दिन तो हो गये रूठे, क्या जन्म भर रूठे ही रहोगे ? क्या बात है ? इतने उदास क्यों हो ?

विशालसिंह ने ठिठककर कहा—तुम्हारी ही लगाई हुई आग को तो शान्त कर रहा था; पर उलटे हाथ जल गये। क्या यह रोज-रोज तूफान खडा किया करती हो ? मैं तो ऐसा तंग हो गया हूं कि जी चाहता है कि कहीं भाग जाऊँ।

वसुमती – कहाँ भागकर जाओगे ? कहकर वसुमती ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया, घसीटती हुई अपने कमरे में ले गयी और चारपाई पर बैठाती हुई बोली—औरतों को सिर चढाने का यही फल है। जब देखो तब अपने भाग्य को रोया करती है, और तुम दौडते हो मनाने। बस, उसका मिजाज और आसमान पर चढ़ जाता है। दो दिन, चार दिन, दस दिन, रूठी पड़ी रहने दो, फिर देखो भीगी बिल्ली हो जाती है या नहीं।

विशालसिंह—यहाँ वह खटवाँस लेकर पडी, अब पकवान कौन बनाये ?

वसुमति—तो क्या जहाँ मुर्गा न होगा, वहाँ सवेरा ही न होगा ? ऐसा कौन-सा बड़ा काम है। मैं बनाये देती हूँ।

विशालसिंह ने पुलकित होकर कहा—बस, कुलवन्ती स्त्रियों का यही धर्म है।

विजय के गर्व से फूली हुई वसुमती आधी रात तक बैठी भाँति-भाँति के पकवान बनाती रही। रामप्रिया ने उसे बहुत व्यस्त देखा, तो वह भी आ गयी और दोनों मिलकर काम करने लगीं।

विशालसिंह बाहर गये और कुछ देर गाना सुनते रहे पर वहाँ जी न लगा फिर भीतर चले गये और रसोई घर के

बैठ गये भय था कि कही रोहिणी कुछ कह न बैठे और दोनो फिर लड़ मरे

वसुमती ने कहा—अभी महारानी नही उठी क्या ? इसमें छिपकर बातें सुनने की बुरी लत है। मुहब्बत तो इसे छू नहीं गयी। अभी तुम तीन दिन बाहर कराहते रहे, पर कसम ले लो, जो उसका मन जरा भी मैला हुआ हो। ऐसी औरतो पर कभी विश्वास न करे।

विशालसिंह—सब देखता हूं और समझता हूं, निरा गधा नही हूं।

वसुमती— यही तो रोना है कि तुम देखकर भी नही देखते, समझकर भी नही समझते। आदमी में सब ऐब हों, किन्तु मेहर-बस न हो।

विशालसिंह—मै मेहर-बस हूं ? मैं उसे ऐसी-ऐसी बाते कहता हूं कि वह भी याद करती होगी।

रामप्रिया—कड़ी बात भी हँसकर कही जाय, तो मीठी हो जाती है।

विशालसिंह—हँसकर नही कहता। डाँटता हू, फटकारता हूं।

वसुमती—डाँटते होंगे मगर प्रेम के साथ। ढलती उम्र मैं सभी मर्द तुम्हारे ही जैसे हो जाते है। कभी-कभी तुम्हारी लम्पटता पर मुझे हँसी आती है। आदमी कड़े दम चाहिए। जैसे घोड़ा पैदल और सवार पहचानता है, उसी तरह औरत भी भकुए और मर्द को पहचानती है। जिसने सच्चा आसन जमाया और लगाम कड़ी रखी, उसी की जय है। जिसने रास ढीली कर दी, उसकी कुशल नही।

विशालसिंह—मैंने तो अपनी जान में कभी लगाम ढीली नहीं की। आज ही देखो, कैसी फटकार बतायी।

वसुमती—क्या कहना है, जरा मूँछे खड़ी कर लो, लाओ पगिया मै सँवार दूँ। यह नहीं कहते कि उसने ऐसी-ऐसी चोटें की कि भागते ही बनी !

सहसा किसी के पैरों की आहट पाकर वसुमती ने द्वार की ओर देखा ! रोहिणी रसोई के द्वार से दबे-पाँव चली जा रही थी। मुँह का रग उड गया। दांतों से ओठ दबाकर बोली—छिपी खड़ी थी। मैंने साफ देखा। अब घर में रहना मुश्किल है। देखो, क्या रंग लाती है।

विशालसिंह ने पीछे की ओर सशंक-नेत्रों से देखकर कहा—बड़ा गजब हुआ। चुड़ैल सब सुन गयी होगी। मुझे जरा भी आहट न मिली

वसमती—ऊँह रानी रूठेंगी अपना सोहाग लेंगी कोई कहा तक डरे आदमियो को बुलाओ यह सब सामान यहा से ले जाय

भादो की अंधेरी रात थी। हाथ को हाथ न सूझता था। मालूम होता था, पृथ्वी पाताल में चली गयी है, या किसी विराट् जन्तु ने उसे निगल लिया है। मोमबत्तियों का प्रकाश उस तिमिर-सागर में पांव रखते कांपता था। विशालसिंह भोग के पदार्थ थालियों में भरवा-भरवा कर बाहर रखवाने में लगे हुए थे। एकाएक रोहिणी एक चादर ओढे हुए घर से निकली और बाहर की ओर चली। विशालसिंह देहलीज के द्वार पर खडे थे। इस भरी सभा में उसे यों निश्शंक भाव से निकलते देखकर उनका रक्त खौलने लगा। जरा भी न पूछा, कहां जाती हो क्या बात है। मूर्ति की भांति खड़े रहे। और सब लोग अपने-अपने काम में लगे हुए थे। रोहिणी पर किसी की निगाह न पडी।

इतने में चक्रधर उनसे कुछ पूछने आये, तो देखा कि महरी उनके सामने खडी है और क्रोध से आखे लाल किये कह रहे हैं—अगर वह मेरी लौंडी नही है, तो मैं भी उसका गुलाम नही हूँ। जहा इच्छा हो जाय। अब इस घर में कदम न रखने दूंगा।

जब चक्रधर को रानियों के आपसी झगडे और रोहिणी के घर से निकल जाने की बात मालूम हुई तो उन्होने लपककर एक लालटेन उठा ली और बाहर निकलकर दाये-बाये निगाहें दौडाते, तेजी से कदम बढाते हुए चले। कोई दो सौ कदम गये होंगे कि रोहिणी एक वृक्ष के नीचे खड़ी दिखलायी दी। ऐसा मालूम होता था कि वह छिपने के लिए कोई जगह तलाश कर रही है। चक्रधर उसे देखते ही लपककर समीप पहुंचे और उसे घर चलने के लिए समझाने लगे। पहले तो रोहिणी किसी तरह राजी न हुई, लेकिन चक्रधर के बहुत समझाने-बुझाने के बाद वह घर की ओर लौट पड़ी।

जब दोनों आदमी घर पहुंचे, तो विशालसिंह अभी तक वहां मूर्तिवत् खड़े थे महरी भी खड़ी थी। भक्तजन अपना-अपना काम छोड़कर लालटेन की ओर ताक रहे थे। सन्नाटा छाया हुआ था।

रोहिणी ने देहलीज से कदम रखा, मगर ठाकुर साहब ने उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखा। जब वह अन्दर चली गयी तो उन्होंने चक्रधर का हाथ पकड़ लिया और बोले—मैं तो समझता था, किसी तरह न आयेगी मगर आप खीच ही लाये क्या बहुत बिगडती थी

चक्रधर ने कहा आपको कुछ नही कहा मभ्र तो बहुत समझदार मालूम होती हैं हा मिजाज नाजुक है बात बर्दाश्त नही कर सकती

विशालसिंह—मै यहा से टला तो नही, लेकिन सच पूछिए तो ज्यादती मेरी ही थी। मेरा क्रोध बहुत बुरा है। अगर आप न पहुंच जाते, तो बडी मुश्किल पडती। जान पर खेल जाने वाली स्त्री है। आपका यह एहसान कभी न भूलूंगा। देखिए तो, सामने कुछ रोशनी-सी मालूम हो रही है। बैंड भी बज रहा है। क्या माजरा है?

सैकड़ों आदमी कतार बांधे मशालो और लालटेनो के साथ चले आ रहे थे, आगे-आगे दो अश्वारोही भी नजर आते थे! बैंड की मनोहर ध्वनि आ रही थी।

७

सभी लोग बडे कुतूहल से आने वालों को देख रहे थे। कोई दस-बारह मिनट में वह विशालसिह के घर के सामने आपहुचे। आगे-आगे दो घोडों पर मुँशी वज्रधर और ठाकुर हरिसेवकसिह थे। पीछे कोई पच्चीस-तीस आदमी साफ सुथरे कपडे पहने चले आते थे। मकान के सामने पहुंचते ही दोनो सवार घोड़ों से उतर पडे और हाथ बांधे हुए कुँवर साहब के सामने आकर खडे हो गये। मुँशीजी की सज-धज निराली थी। सिर पर एक शमला था, देह पर एक नीचा आबा। ठाकुर साहब भी हिन्दुस्तानी लिबास में थे। मुँशीजी खुशी से मुस्कराते थे, पर ठाकुर साहब का मुख मलिन था।

ठाकुर साहब बोले—दीनबन्धु, हम सब आपके सेवक आपकी सेवा में यह शुभ सूचना देने के लिए हाजिर हुए है कि महारानी ने राज्य से विरक्त होकर तीर्थ यात्रा को प्रस्थान किया है और अब हमें श्रीमान् की छत्र-छाया के नीचे आश्रय लेने का वह स्वर्णावसर प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम सदैव ईश्वर से प्रार्थना करते रहते थे। यह पत्र है, जो महारानी ने श्रीमान् के नाम लिख रखा था।

कुंवरसाहब ने एक ही निगाह में उसे आद्योपांत पढ़ लिया और उनके मुख पर मन्द हास्य की आभा झलकने लगी। पत्र जेब में रखते हुए बोले—यद्यपि महारानी को तीर्थ-यात्रा का समाचार जानकर मुझे अत्यन्त खेद हो रहा है, लेकिन इस बात का सच्चा आनन्द भी है कि उन्होंने निवृत्त-मार्ग पर पग रखा। मेरी ईश्वर से यही विनय है कि उसने मेरी गरदन पर कर्तव्य-भार रखा है, उसे संभालने की मुझे शक्ति दे और प्रजा के प्रति मेरा जो धर्म है, उसके पालन करने की भी शक्ति प्रदान करे।

इतने में कृष्ण के जन्म का मुहूर्त आ पहुँचा। सारी महफिल खड़ी हो गयी और सभी उस्तादो ने एक स्वर से मगलगान शुरू किया। साजों के मेले ने समाँ बाँध दिया केवल दो ही प्राणी ऐसे थे जिन्हें इस समय

चिंता घेरे हुए थी — एक तो ठाकुर हरिसेवकसिंह, दूसरे कुँवर विशालसिंह। एक को यह चिंता लगी हुई थी कि देखें कल क्या मुसीबत आती है, दूसरे को यह फिक्र थी कि इस दुष्ट से क्योंकर पुरानी कसर निकालूँ। चक्रधर अब तक तो लज्जा से मुँह छिपाये बाहर खड़े थे, मंगल गान समाप्त होते ही आकर प्रसाद बाँटने लगे। किसी ने मोहन-भोग का थाल उठाया, किसी ने फलों का। कोई पञ्चामृत बाँटने लगा। हरबोंग-सा मच गया। कुँवर साहब ने मौका पाया, तो उठे और मुंशी वज्रधर को इशारे से बुला दालान में ले जाकर पूछने लगे—दीवान साहब ने तो मौका पाकर खूब हाथ साफ किये होंगे।

वज्रधर—मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं देखी। बेचारे दिन-भर सामान की जाँच-पड़ताल करते रहे। घर तक न गये।

विशालसिंह—यह सब तो आपके कहने से किया। आप न होते, न जाने क्या गजब ढाते। आपको पुरानी कथा मालूम नहीं। इसने मुझ पर बड़े-बड़े जुल्म किये हैं। इसी के कारण मुझे जगदीशपुर छोड़ना पड़ा। बस चला होता, तो इसने मुझे कत्ल करा दिया होता।

वज्रधर—गुस्ताखी माफ कीजिएगा। आपका बस चलता तो क्या रानीजी की जान बच जाती या दीवान साहब जिन्दा रहते? उन पिछली बातों को भूल जाइए। भगवान् ने आज आपको ऊँचा रुतबा दिया है। अब आपको उदार होना चाहिए। मैंने ठाकुर साहब के मुँह से एक भी बात ऐसी नहीं सुनी, जिससे यह हो कि वह आपसे कोई अदावत रखते हैं।

विशालसिंह ने कुछ लज्जित होकर कहा—मैंने निश्चय कर लिया था कि सबसे पहला वार इन्हीं पर करूँगा, लेकिन आपकी बातों ने मेरा विचार पलट दिया। आप भी उन्हें समझा दीजिएगा कि मेरी तरफ से कोई शंका न रखें।

यह कहकर कुँवर साहब घर में गये। सबसे पहले रोहिणी के कमरे में कदम रखा। पति की निष्ठुरता ने आज उसकी मदान्ध आँखें खोल दी थीं।

कुछ न था तभी मिजाज न मिलता था अब तो आकाश पर चढ जाएगा काहे को कोई जीने पायेगा ?

विशालसिंह ने दुखित होकर कहा—प्रिये, यह इन बातो का समय नही है। ईश्वर को धन्यवाद दो कि उसने हमारी विनती सुन ली।

रोहिणी—जब अपना कोई रहा ही नही, तो राजपाट लेकर चाटूँगी ?

विशालसिंह को क्रोध तो आया; लेकिन इस भय से कि बात बढ जायगी, कुछ बोले नही। वहाँ से वसुमती के पास पहुँचे। वह मुँह लपेटे पड़ी हुई थी। जगाकर बोले—क्या सोती हो, उठो खुशखबरी सुनाये।

वसुमती—पटरानी को तो सुना ही आये, मै सुनकर क्या करूँगी ? अब तक जो बात मन में थी, वह आज तुमने खोल दी, तो यहाँ बचा हुआ सत्तू खाने वाले पाहुने नही है !

विशालसिंह दुःखी होकर बोले—यह बात नही है, वसुमती ! तुम जानबूझ कर नादान बनती हो। मैं इधर ही आ रहा था, ईश्वर से कहता हूँ। उसका कमरा अँधेरा देखकर चला गया; देखूँ क्या बात है।

वसुमती—मुझसे बातें न बनाओ, समझ गये। जो एक औरत को काबू में नही रख सकता, वह रियासत का भार क्या संभालेगा ?

यह कहकर वह उठी और झल्लायी हुई छत पर चली गयी। विशालसिंह कुछ देर उदास खड़े रहे तब रामप्रिया के कमरे में प्रवेश किया। वह चिराग के सामने बैठी कुछ लिख रही थी। पति की आहट पाकर सिर उठाया, तो आँखो में आसू भरे हुए थे। विशालसिंह ने चौंककर पूछा क्या बात है प्रिये ? क्यों रो रही हो ? मै तुम्हे एक खुशखबरी सुनाने आया हूँ ?

सुख न देखा उसका तो जन्म ही व्यर्थ हुआ रोते ही रोते उम्र बीत गयी

यह कहते कहते रामप्रिया सिसक सिसककर रोने लगी विशालसिंह को उसका रोना बुरा मालूम हुआ। बाहर आकर महफिल में बैठ गये। मैडू खाँ सितार बजा रहे थे। सारी महफिल तन्मय हो रही थी। जो लोग फजलू का गाना न सुन सके थे, वे भी इस वक्त सिर घुमाते और झूमते नजर आये थे। किन्तु इस आनन्द और सुधा के अनन्त प्रवाह में एक प्राणी हृदय की ताप से विकल हो रहा था। वह राजा विशालसिंह थे, सारी बारात हँसती थी, दूल्हा रो रहा था।

८

दूसरी वर्षा भी आधी से ज्यादा बीत गयी; लेकिन चक्रधर ने माता-पिता से अहल्या का वृत्तान्त गुप्त रक्खा। जब मुँशीजी पूछते वहाँ क्या बात कर आये ? आखिर यशोदानन्दन को विवाह करना है या नहीं ? न करना हो तो साफ-साफ कह दे। करना हो, तो उसकी तैयारी करें। तो चक्रधर कुछ इधर-उधर की बातें करके टाल जाते। उधर यशोदानन्दन बार-बार लिखते तुमने मुंशीजी से सलाह की या नहीं। अगर तुम्हे उनसे कहते शर्म आती हो, तो मैं ही आकर कहूं ? आखिर इस तरह कब तक समय टालोगे ? अहल्या तुम्हारे सिवा और किसी से विवाह न करेगी। चक्रधर इन पत्रों के जवाब में भी यही लिखते कि मैं खुद फिक्र में हूँ। ज्योंही मौका मिला, जिक्र करूँगा। मुझे विश्वास है कि पिताजी राजी हो जायँगे।

जन्माष्टमी के उत्सव के बाद मुँशीजी घर आये तो उनके हौसले बढ़े हुए थे। राजा साहब के साथ-ही-साथ उनके सौभाग्य का सूर्य उदय होता हुआ ही मालूम होता था। अब वह अपने ही शहर के किसी रईस के घर चक्रधर की शादी कर सकते थे। लेकिन मुँशी यशोदानन्दन को वचन दे चुके थे, इसलिए उनसे एक बार पूछ लेना उचित था। अगर उनकी तरफ से जरा भी विलम्ब हो तो साफ कह देना चाहते थे कि मुझे आपके यहाँ विवाह करना मजूर नहीं। यो दिल में निश्चय करके एक दिन भोजन करते समय उन्होंने चक्रधर से कहा—मुँशी यशोदानन्दन भी कुछ ऊल-जलूल आदमी हैं। अभी तक कानो में तेल डाले हुए बैठे हैं।

चक्रधर उनकी तरफ से तो देर नहीं है। वह तो मेरे खत का ...र रहे हैं।

चक्रधर ने देखा कि अब अवसर आ गया है आज निश्चय ही कर नना चाहिए। बोले पशोपेश जो कुछ होगा आप ही की तरफ से होगा बात यह है वह कन्या मुशी यशोदानन्दन की पुत्री नही है

वज्रधर—पुत्री नही है ! वह तो लडकी ही बताते थ। खर, पुत्री न होगी, भतीजी होगी, भांजी होगी, नातिन होगी, बहन होगी। मुझे आम खाने से मतलब है या पेड़ गिनने से ?

चक्रधर—वह लडकी उन्हें किसी मेले में मिली थी। तब उसकी उम्र तीन-चार बरस की थी। उन्हे उस पर दया आ गयी, घर लाकर पाला, पढाया-लिखाया।

वज्रधर—(स्त्री से) कितना दगाबाज आदमी है ! क्या अभी तक लड़की के माँ-बाप का पता नहीं चला ?

चक्रधर—जी नहीं, मुँशीजी ने उनका पता लगाने की बड़ी चेष्टा की पर कोई फल न निकला।

वज्रधर—अच्छा, तो यह किस्सा है ! बड़ा झूठा आदमी है, बना हुआ मक्कार !

निर्मला—तुम साफ-साफ लिख दो, मुझे नही करना है। बस !

वज्रधर—मैं तुमसे तो सलाह नही पूछता हूँ। मैं खुद जानता हूँ, ऐसे धोखेबाजों के साथ कैसे पेश आना चाहिए।

खाना खाकर दोनों आदमी उठे, तो मुँशीजी ने कहा—कलम-दवात लाओ, मैं इसी वक्त यशोदानन्दन को खत लिख दूँ। बिरादरी का वास्ता न होता, तो हरजाने का दावा कर देता।

चक्रधर आरक्त मुख और संकोच-रुद्ध कण्ठ से बोले—मै तो वचन दे आया हूँ।

वज्रधर—तो यह क्यों नही कहते कि तुमने सब कुछ आप-ही-आप तय कर लिया है। तुमने लड़की सुन्दर देखी, रीझ गये, मगर याद रखो स्त्री में सुन्दरता ही सबसे बड़ा गुण नही है। मैं तुम्हे हरगिज यह शादी न करने दूँगा।

चक्रधर—मेरा खयाल है कि स्त्री हो या पुरुष, गुण और स्वभाव ही उसमें मुख्य वस्तु है। इसके सिवा और सभी बाते गौण है।

वज्रधर—तुम्हारे सिर नयी रोशनी का भूत तो नही सवार हुआ था एकाएक यह क्या काया पलट हो गयी ?

चक्रधर मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा तो यही है कि आप लोगो की सेवा करता जाऊँ आपकी मरजी के खिलाफ कोई काम न करूँ लकिन सिद्धात के विषय मे मजबूर हूँ।

वज्रधर—सेवा करना तो नहीं चाहते, मुँह मे कालिख लगाना चाहते हो, मगर याद रखो, तुमने यह विवाह किया तो अच्छा न होगा। ईश्वर वह दिन न लाये कि मै अपने कुल मे कलक लगते देखूँ!

चक्रधर—तो मेरा भी यही निश्चय है कि मैं और कही विवाह न करूँगा।

यह कहते हुए चक्रधर बाहर चले आये और बाबू यशोदानन्दन को एक पत्र लिखकर सारा किस्सा बयान किया। उसके अन्तिम शब्द ये थे—पिताजी राजी नही होते और यद्यपि मैं सिद्धान्त के विषय में उनसे दबना नही चाहता, लेकिन उनसे अलग रहने और बुढापे में उन्हे इतना बड़ा सदमा पहुँचाने की मैं कल्पना भी नही कर सकता। मैं बहुत लज्जित होकर आपसे क्षमा चाहता हूँ। अगर ईश्वर की यही इच्छा है, तो मै जीवन पर्यन्त अविवाहित ही रहूंगा, लेकिन यह असम्भव है कि कहीं और विवाह कर लूँ।'

इसके बाद उन्होने दूसरा पत्र अहल्या के नाम लिखा। उसके अन्तिम शब्द ये थे- 'मैं अपने माता-पिता का वैसा ही भक्त हूँ, जैसा कोई और बेटा हो सकता है। किन्तु यदि इस भक्ति और आत्मा की स्वाधीनता में विरोध आ पड़े, तो मुझे आत्मा की रक्षा करने में जरा भी संकोच न होगा। अगर मुझे यह भय न होता कि माताजी अवज्ञा से रो-रोकर प्राण दे देगी और पिताजी देश-विदेश मारे-मारे फिरेंगे, तो मैं यह असह्य यातना न सहता। लेकिन मैं सब-कुछ तुम्हारे ही फैसले पर छोड़ता हूँ केवल इतनी ही याचना करता हूँ कि मुझ पर दया करो।'

दोनो पत्रों को डाकघर में डालते हुए वह मनोरमा को पढ़ाने चले गये।

९

मुद्दत के बाद जगदीशपुर के भाग जगे, कार्तिक लगते ही एक ओर राजभवन की मरम्मत होने लगी, दूसरी ओर गद्दी के उत्सव की तैयारिया शुरू हुई ।

राजा साहब ताकीद करते रहते थे कि प्रजा पर जरा भी सख्ती न होने पाये । दीवान साहब से उन्होंने जोर देकर कह दिया था कि बिना पूरी मजदूरी दिये किसी से काम न लीजिए; लेकिन यह उनकी शक्ति से बाहर था कि आठों पहर बैठे रहे । उनके पास अगर कोई शिकायत पहुँचती, तो कदाचित् वह राज-कर्मचारियों को फाड खाते, लेकिन प्रजा सहनशील होती है, जब तक प्याला भर न जाय, वह जबान नही खोलती । फिर गद्दी के उत्सव में थोडा-बहुत कष्ट होना स्वाभाविक समझकर और भी कोई न बोलता था ।

तीन महीने तक सारी रियासत के बढई, मिस्त्री,दरजी,चमार,कहार सब दिल तोड़कर काम करते रहे । चक्रधर को रोज खबरे मिलती रहती थी कि प्रजा पर बडे-बडे अत्याचार हो रहे है, लेकिन वह राजा साहब से शिकायत करके उन्हे असमजस में न डालना चाहते थे । अकसर खुद जाकर मजूरों और कारीगरो को समझाते थे । इस तरह तीन महीने गुजर गये । राजभवन का कलेवर नया हो गया । सारे कस्बे में रोशनी के फाटक बन गए, तिलोकोत्सव का विशाल पण्डाल तैयार हो गया ।

लेकिन अब तक बहुत-कुछ काम बेगार से चल गया था । मजूरो को भोजन-मात्र मिल जाता था । अब नकद रुपये की जरूरत सामने आ रही थी । राजाओं का आदर-सत्कार और अंगरेज हुक्काम की दावत-तवाजा तो बेगार में न हो सकती थी ! खर्च का तखमीना पांच लाख से ऊपर था। खजाने में झंझी कोड़ी न थी । असामियो से छमाही लगान पहले ही वसूल किया जा चुका था। मुहूर्त आता जाता था और कुछ निश्चय न होता था। यहा तक कि केवल 15 दिन और रह गये

सन्ध्या का समय था राजा साहब उस्ताद मडूखा के साथ बैठे सितार का अभ्यास कर रहे थे कि दीवान साहब और मुंशीजी आकर खड़े हो गये

विशालसिंह ने पूछा—कोई जरूरी काम है ?

ठाकुर—हुजूर, उत्सव को अब केवल एक सप्ताह रह गया है और अभी तक रुपये की कोई सबील नहीं हो सकी। अगर आज्ञा हो, तो किसी बैंक से 5 लाख कर्ज ले लिया जाय।

राजा—हरगिज नहीं।

दीवान—तो असामियो पर हल पीछे 10) चन्दा लगा दिया जाय।

राजा—मैं अपने तिलकोत्सव के लिए असामियो पर जुल्म न करूंगा। इससे तो कहीं अच्छा है कि उत्सव ही न हो।

दीवान—महाराज, रियासतो में पुरानी प्रथा है। सब असामी खुशी से देंगे, किसी को आपत्ति न होगी ?

मुंशी—गाते-बजाते आयेंगे और दे जायेंगे।

राजा—अगर आप लोगों का विचार है कि किसी को कष्ट न होगा और लोग खुशी से मदद देंगे तो आप अपनी जिम्मेदारी पर वह काम कर सकते है। मेरे कानो तक शिकायत न आये।

दीवान—हुजूर, शिकायत तो थोडी-बहुत हर हालत में होती ही है। इससे बचना असम्भव है। राजा और प्रजा का सम्बन्ध ही ऐसा है। प्रजा-हित के लिए भी कोई काम कीजिए, तो उसमें भी लोगों को शंका होती है। हल पीछे 10) बैठा देने से कोई 5 लाख रुपये हाथ आ जायँगे। रही रसद, वह तो बेगार में मिलती ही है। आपकी अनुमति की देर है।

मुंशी—जब सरकार ने कह दिया कि आप अपनी जिम्मेदारी पर वसूल कर सकते हैं, तो अनुमति का क्या प्रश्न ? चलिए, अब हुजूर को तकलीफ न दीजिए।

राजा—बस, इतना ख्याल रखिए कि किसी को कष्ट न होने पाये। आपको ऐसी करनी चाहिए कि असामी लोग सहर्ष आकर शरीक हों।

गालियां और ठोक पाट तो साधारण बात थी किसी के बैल खोल लिए जाते थे किसी की गाय छीन ली जाती थी कितनो ही के खेत कटवा लिये गये। बेदखली और इजाफ की धमकियां दी जाती थी। जिसने खुशी से दिये, उसका तो 10) ही में गला छूटा। जिसने हीले-हवाले किये, कानून बघारा, उसे 10) के बदले 20), 30), 40) देने पड़े। आखिर विवश होकर एक दिन चक्रधर ने राजा साहब से शिकायत कर ही दी।

राजा साहब ने त्योरी बदलकर कहा—मेरे पास तो आज तक कोई असामी शिकायत करने नही आया। आप उनकी तरफ से क्यो वकालत कर रहे हैं ?

चक्रधर—उन्हे आपसे शिकायत करने को क्योकर साहस हो सकता है ?

राजा—यह मै नही मानता। जिसको किसी बात की अखर होती है, वह चुप नही बैठा रहता।

चक्रधर—तो आपसे कोई आशा न रखूँ ?

राजा—मैं अपने कर्मचारियो से अलग कुछ नही हूँ।

चक्रधर ने इसका और कुछ जवाब न दिया। मुंशीजी राजभवन में इन्हे देखकर बोले—तुम यहाँ क्या करने आये थे ? अपने लिए कुछ नहीं कहा ?

चक्रधर—अपने लिए क्या कहता ? सुनता हूँ, रियासत में बड़ा अंधेर मचा हुआ है।

वज्रधर—यह सब तुम्हारे आदमियों की शरारत है। तुम्हारी समिति के आदमी जा-जाकर असामियों को भड़काते रहते हैं।

चक्रधर—हम लोग तो केवल इतना ही चाहते है कि असामियों पर सख्ती न की जाय और आप लोगों ने इसका वादा भी किया था, फिर यह मार-धाड़ क्यों हो रही है ?

वज्रधर—इसीलिए कि असामियों से कह दिया गया है कि राजा साहब किसी पर जब्र नही करना चाहते। जिसकी खुशी हो दे, जिसकी खुशी हो न दे। तुम अपने आदमियो को बुला लो, फिर देखो कितनी आसानी से काम हो जाता है। तुम आज ही अपने आदमियो को बुला लो। रियासत के सिपाही उनसे बेतरह बिगड़े हुए हैं ऐसा न हो कि मारपीट

चले लेकिन दिल में आगा-पीछा हो रहा था कुछ समझ में न आता था कि क्या करना चाहिए इसी सोच में पड़े हुए मनोरमा के यहां चले गये

मनोरमा उन्हें उदास देखकर बोली—आप बहुत चिन्तित-से मालूम होते हैं ? घर में तो सब कुशल है ?

चक्रधर— क्या करूँ मनोरमा, अपनी दशा देखकर कभी-कभी रोना आ जाता है। सारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, फिर भी हम अपने भाइयों की गर्दन पर छुरी फेरने से बाज नहीं आते। राजा साहब की जात से लोगों को कैसी-कैसी आशाएँ थीं, लेकिन अभी गद्दी पर बैठे छ महीने भी नहीं हुए और इन्होंने भी वही पुराना ढग अख्तियार कर लिया। प्रजा से डण्डों के जोर से रुपये वसूल किये जा रहे हैं और कोई फरियाद नहीं सुनता। सबसे ज्यादा रोना तो इस बात का है कि दीवान साहब और मेरे पिताजी ही राजा साहब के मन्त्री और इस अत्याचार के मुख्य कारण हैं।

सरल हृदय प्राणी अन्याय की बात सुनकर उत्तेजित हो जाते हैं। मनोरमा ने उद्दण्ड होकर कहा—आप असामियों से क्यों नहीं कहते कि किसी को एक कौड़ी भी न दें। कोई देगा ही नहीं तो ये लोग कैसे लेंगे ?

चक्रधर को हँसी आ गयी। बोले—तुम मेरी जगह होती, तो असामियों को मना कर देती ?

मनोरमा अवश्य। खुल्लम-खुल्ला कहती, खबरदार ! राजा के आदमियों को कोई एक पैसा भी न दे। मैं राजा के आदमियों को इतना पिटवाती कि फिर इलाके में जाने का नाम ही न लेते।

चक्रधर ये बातें सुनकर पुलकित हो उठे। मुस्कराकर बोले—अगर दीवान साहब खफा हो जाते ?

मनोरमा—तो खफा हो जाते ! किसी के खफा हो जाने के डर से सच्ची बात पर परदा थोड़े ही डाला जाता है।

इस विषय पर फिर कुछ बातचीत न हुई, लेकिन चक्रधर यहां से पढ़ाकर चले, तो उनके मन में प्रश्न हो रहा था—क्या अब यहाँ मेरा आना उचित है ? आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अन्तस्तल को देखा, तो उसमें कितने ही ऐसे भाव छिपे हुए थे, जिन्हें यहाँ न रहना चाहिए था।

१०

गद्दी के कई दिन पहले ही से मेहमानों का आना शुरू हो गया और तीन दिन बाकी ही थे कि सारा कैम्प भर गया। दीवान साहब ने कैम्प में ही बाजार लगवा दिया था, वहीं रसद-पानी का भी इन्तजाम था। राजा साहब, स्वयं मेहमानों की खातिरदारी करते रहते थे; किन्तु जमघट बहुत बड़ा था। आठों पहर हरबोंग-सा मचा रहता था।

मेहमानों के आदर-सत्कार की तो धूम थी और वे मजदूर, जो छाती फाड़-फाड़कर काम कर रहे थे, भूखों मरते थे। काम लेने को सब थे, पर भोजन को पूछने वाला कोई न था। चमार पहर रात रहे घास छीलने जाते, मेहतर पहर रात से सफाई करने लगते, कहार पहर रात से पानी खींचना शुरू करते, मगर कोई उनका पुरसांहाल न था। चपरासी बात-बात पर उन्हे गालियाँ सुनाते; क्योंकि उन्हें खुद बात-बात पर डाँट पड़ती थी चपरासी सहते थे; क्योंकि उन्हे दूसरे पर अपना गुस्सा उतारने का मौका मिल जाता था। बेगारों से न सहा जाता था, इसलिए कि उनकी आतें जलती थीं। दिन-भर धूप में जलते, रात-भर क्षुधा की आग में। असन्तोष बढ़ता जाता था। न-जाने कब सब-के-सब जान पर खेल जायँ, हड़ताल कर दें।

सन्ध्या का समय था। तिलक का मुहूर्त निकट आ गया था। हवन की तैयारी हो रही थी। सिपाहियों को वर्दी पहनकर खड़े हो जाने की आज्ञा दे दी गयी थी कि सहसा मजदूरों के बाड़े से रोने-चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। किसी कैम्प में घास न थी और ठाकुर हरिसेवक हंटर लिए चमारों को पीट रहे थे। मुंशी वज्रधर की आँखें मारे क्रोध के लाल हो रही थीं।

चौधरी ने हाथ बाँधकर कहा—हुजूर घास तो रात ही को पहुँचा दी गयी थी हाँ इस बेला अभी नहीं पहुँची आध आदमी तो माँदे पड़े

मुशी ' झूठ बोलता है अभी पोलो खेल होगा घोडे बिना खाये कैसे दौडेगे ?

एक युवक ने कहा—हम लोग तो बिना खाये आठ दिन से घास दे रहे है, घोडे क्या बिना खाये एक दिन भी न दौड़ेगे ?

चौधरी डण्डा लेकर युवक को मारने दौडा; पर उसके पहले ही ठाकुर साहब ने झटपट उसे चार-पांच हटर सड़ाप-सड़ाप लगा दिये। नंगी देह, चमडा फट गया, खून निकल गया।

चौधरी ने ठाकुर साहब और युवक के बीच मे खडे होकर कहा—हुजूर क्या मार ही डालेगे? लडका है, कुछ अनुचित मुँह से निकल जाय तो क्षमा करनी चाहिए। राजा को दयावान होना चाहिए।

ठाकुर साहब आपे से बाहर हो रहे थे। एक चमार का यह हौसला कि उनके सामने मुँह खोल सके। वही हटर तान कर चौधरी को जमाया। बूढा आदमी, उस पर कई दिन का भूखा, खडा भी मुश्किल से हो सकता था, हटर पडते ही जमीन पर गिर पडा। बाड़े में हलचल पड़ गयी। हजारो आदमी जमा हो गये। कितने ही चमारो ने मारे डर के खुरपी और रस्सी उठा ली थी और घास छीलने जा रहे थे। चौधरी पर हटर पडते देखा तो रस्सी-खुरपी फेंक दी और आकर चौधरी को उठाने लगे।

ठाकुर साहब ने तड़पकर कहा—तुम सब अभी एक घँटे में घास लाओ, नही तो एक-एक की हड्डी तोड दी जायेगी।

एक चमार बोला—हम यहां काम करने आये हैं, जान देने नही आये है। एक तो भूखो मरे दूसरे लात खाये। हमारा जनम इसीलिए थोडे ही हुआ है? जिससे चाहें काम कराइए, हम घर जाते है।

मुँशी—जिसने बाडे के बाहर कदम रखा, उसकी शामत आई। तोप पर उडा दूँगा।

लेकिन चमारो के सिर पर भूत सवार था। बूढे चौधरी को उठाकर सब-के-सब एक गोल में बाडे के द्वार की ओर चले। सिपाहियो की कवायद हो रही थी। ठाकुर साहब ने खबर भेजी और बात-की बात में उन सबो ने आकर बाडे का द्वार रोक लिया। सभी कैम्पो में खलबली पड गयी। तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगी। राजा साहब अपने खेमे में तिलक के भडकीले-सजीले वस्त्र धारण कर रहे थे। यह खबर सुनी, तो तिलमिला गये। क्रोध से बावले होकर वह अपनी बन्दूक लिए खेमे से निकल आये और कई आदमियो के साथ बाड के द्वार पर जा पहुचे

चौधरी इतनी देर में झाड़-पोछकर उठ बैठा था। राजा साहब को देखते ही रोकर बोला—दुहाई है महाराज की सरकार बड़ा अंधेर हो रहा है। गरीब लोग मारे जाते है।

राजा—तुम सब पहले बाड़े के द्वार से हट जाओ, फिर जो कुछ कहना है, मुझसे कहो। अगर किसी ने बाड़े के बाहर पाँव रखा, तो जान से मारा जाएगा।

चौधरी—सरकार ने हमको काम करने के लिए बुलाया है कि जान लेने के लिए ?

राजा - काम न करोगे, तो जान ली जायगी।

चौधरी—काम तो आप का करे, खाने किसके घर जायं ?

राजा—क्या बेहूदा बाते करता है, चुप रहो। तुम सब-के-सब मुझे बदनाम करना चाहते हो। तुम नीच हो और नीच लातो के बगैर सीधा नहीं होता।

चौधरी—क्या अब हमारी पीठ पर कोई नही कि मार खाते रहे और मुँह न खोलें ? अब तो सेवा-सम्मती हमारी पीठ पर है। क्या वह कुछ भी न्याय न करेगी।

राजा—अच्छा ! तो तुझे सेवा-समिति वालों का घमण्ड है ?

चौधरी—हई है, वह हमारी रक्षा करती है, तो क्यों न उनका घमण्ड करे ?

राजा साहब ओठ चबाने लगे—तो यह समिति वालोंकी कारस्तानी है। चक्रधर मेरे साथ कपट-चाल चल रहे है, लाला चक्रधर! जिसका बाप मेरी खुशामद की रोटियाँ खाता है, देखता हूँ, वह मेरा क्या कर लेता है। इन मूर्खों के सिर से यह घमण्ड निकाल ही देना चाहिए। यह जहरीले कीड़े फैल गये, तो आफत मचा देंगे।

चौधरी तो ये बातें कर रहा था, उधर बाड़े में घोर कोलाहल मचा हुआ था। सरकारी आदमियों की सूरत देखकर जिनके प्राण-पखेरू उड़ जाते थे, वे इस समय निःशंक और निर्भय बन्दूकों के सामने मरने को तैयार खड़े थे। द्वार से निकलने का रास्ता न पाकर कुछ आदमियो ने बाडे की लकड़ियां और रस्सियाँ काट डाली और हजारों आदमी उधर से भडभडाकर निकल पड़े, मानो कोई उमडी हुई नदी बाँध तोड़कर निकल पड़े। उसी वक्त एक ओर से सशस्त्र पुलिस के जवान और दूसरी ओर से चक्रधर

सामंत के कई युवकों के साथ आते हुए दिखाई दिये

उन्हे देखते ही हडतालियो में जान सी पड़ गयी जैसे अबोध बालक अपनी माता को देखकर शेर हो जाय हजारो आदमियो ने घेर लिया 'भैया आ गये ! भैया आ गये !' की ध्वनि से आकाश गूँज उठा।

चक्रधर ने ऊँची आवाज से कहा—क्यों भाइयो, तुम मुझे अपना मित्र समझते हो या शत्रु ?

चौधरी—भैया, यह भी कोई पूछने की बात है। तुम हमारे मालिक हो, सामी हो, सहाय हो !

चक्रधर इस भीड़ से निकल कर सीधे राजा साहब के पास आये और बोले—महाराज, मैं आप से कुछ विनय करना चाहता हूँ।

राजा साहब ने त्योरियाँ बदल कर कहा—मैं इस वक्त कुछ नही सुनना चाहता।

चक्रधर—आप कुछ न सुनेंगे, तो पछतायेंगे।

राजा—मैं इन सबों को गोली मार दूँगा।

चक्रधर—दीन प्रजा के रक्त से राज-तिलक लगाना किसी राजा के लिए मंगलकारी नही हो सकता। प्रजा का आशीर्वाद ही राज्य की सबसे बडी शक्ति है। मैं आप का शुभचिन्तक हूँ। इसीलिए आप की सेवा में आया हूं। यह सारा तूफान अयोग्य कर्मचारियो का खडा किया हुआ है। ये सभी आदमी इस वक्त झल्लाये हुए है। गोली चलाकर आप उनके प्राण ले सकते है, लेकिन उनका रक्त केवल इसी बाड़े में न सूखेगा, यह सारा विस्तृत कैम्प उस रक्त से सिच जायगा; उसकी लहरो के झोके से यह विशाल मण्डप उखड़ जायगा और यह आकाश में फहराती हुई ध्वजा भूमि पर गिर पड़ेगी। सारी रियासत मे हाहाकार मच जायगा।

राजा साहब अपनी टेक पर अडना जानते थे, किन्तु इस समय उनका दिल काँप उठा। बोले—इन लोगों को अगर कोई शिकायत थी, तो इन्हें आकर मुझसे कहना चाहिए था। मुझसे न कहकर इन लोगो ने हेकड़ी करनी शुरू की, रात घोडो को घास नही दी और इस वक्त भागे जाते हैं। मैं यह घोर अपमान नही सह सकता।

चक्रधर—आप ने इन लोगो को अपने पास आने का अवसर कब दिया ? आप को मालूम है कि इन गरीबो को एक सप्ताह से कुछ भोजन

राजा यह आप क्या कहते है ? मैने सख्त ताकीद कर दी थी कि हर एक मजदूर को इच्छा पूर्ण भोजन दिया जाय क्यो दीवान साहब क्या बात है ?

हरिसेवक—धर्मावतार, आप इन महाशय की बातो मे न आइए। यह सारी आग इन्ही की लगायी हुई है।

मुंशी—दीनबन्धु, यह लडका बिलकुल नासमझ है। दूसरो ने जो कुछ कह दिया, उसे सच समझ लेता है।

राजा—मै इसकी पूछ-ताछ करूँगा।

हरिसेवक—हुजूर, इन्ही लोगो ने आदमियो को उभारकर सरकश बना दिया है। ये लोग सबसे कहते फिरते है कि किसी को तुम्हारे ऊपर राज्य करने का अधिकार नही है, किसी को तुमसे बेगार लेने का अधिकार नही। जमीन के मालिक तुम हो। जो जमीन से बीज उगाये, वही उसका मालिक है। राजा तो तुम्हारा गुलाम है।

राजा—बहुत ठीक कहते हैं। वास्तव में मै प्रजा का गुलाम हू, बल्कि उसके गुलाम का गुलाम हूँ।

हरिसेवक—हुजूर, मै इन लोगो की बातें कहाँ तक कहू। कहते हैं, राजा को इतने बडे महल में रहने का कोई हक नहीं। उसका ससार में कोई काम ही नहीं।

राजा—बहुत ही ठीक कहते हैं। आखिर मैं पड़े-पडे खाने के सिवा और क्या करता हू।

चक्रधर ने झुँझलाकर कहा—मैंने प्रजा को उनके अधिकार अवश्य समझाये है, लेकिन यह कभी नहीं कहा कि राजा को संसार में रहने का कोई हक नही; क्योंकि मै जानता हू, जिस दिन राजाओं की जरूरत न रहेगी, उस दिन उनका अन्त हो जाएगा।

राजा—मै तो बुरा नही मानता, आपने कोई ऐसी बात नही कही, जो और लोग न कहते हों।

चक्रधर को मालूम हुआ कि राजा साहब मुझे बना रहे हैं। गरम होकर बोले—अगर आप के ये भाव सच्चे होते, तो प्रजा पर यह विपत्ति ही न आती। राजाओं की यह पुरानी नीति है कि प्रजा का मन मीठी-मीठी बातों से भरें और अपने कर्मचारियो को करने

द। वह राजा जिसके कानों तक प्रजा की पुकार न पहुंचने पाये आदर्श नहीं कहा जा सकता।

राजा—किसी तरह नहीं। उसे गोली मार देनी चाहिए। जीता चुनवा देना चाहिए। प्रजा का गुलाम है कि दिल्लगी।

चक्रधर यह व्यंग्य न सह सके। उनकी स्वाभाविक शक्ति ने उनका साथ छोड़ दिया। चेहरा तमतमा उठा। बोले—जिस आदर्श के सामने आपको सिर झुकाना चाहिए, उसका मजाक उडाना आपको शोभा नहीं देता। मैंने कभी यह अनुमान न किया था कि आपके वचन और कर्म में इतनी जल्द इतना बड़ा भेद हो जायगा।

क्रोध ने अब अपना यथार्थ रूप धारण किया। राजा साहब अभी तक तो व्यंग्यों से चक्रधर को परास्त करना चाहते थे; लेकिन जब चक्रधर के वार मर्मस्थल पर पड़ने लगे, तो उन्हें भी अपने शस्त्र निकालने पडे। डपटकर बोले—अच्छा, बाबूजी, अब अपनी जबान बन्द करो। मैं प्रजा का गुलाम नहीं हूं। प्रजा मेरे पैरों की धूल है। मुझे अधिकार है कि उसके साथ जैसा उचित समझूँ, वैसा सलूक करूं। किसी को हमारे और हमारी प्रजा के बीच में बोलने का हक नहीं है। आप अब कृपा करके यहां से चले जाइए और फिर कभी मेरी रियासत में कदम न रखिएगा; वरना शायद आपको पछताना पड़े। जाइए।

मुँशी वज्रधर की छाती धक-धक करने लगी। चक्रधर को हाथों से पीछे हटाकर बोले—हुजूर की कृपा-दृष्टि ने इसे शोख कर दिया दिया है। अभी तक बडे आदमियों की सोहबत में बैठने का मौका तो मिला नहीं बात करने की तमीज कहाँ से आये।

लेकिन चक्रधर भी जवान आदमी थे, उस पर सिद्धान्तों के पक्के, आदर्श पर मिटने वाले, अधिकार और प्रभुत्व के जानी दुश्मन, वह राजा साहब के उद्दण्ड शब्दों से जरा भी भयभीत न हुए। तने हुए सामने आये और बोले—आपको अपने मुख से ये शब्द निकालते हुए शर्म आनी चाहिए थी। आप प्रजा पर अपने को अर्पण कर देना चाहते थे। आप कहते थे, मैं प्रजा को अपने पास बेरोक-टोक आने दूंगा, उनके लिए मेरे द्वार हरदम खुले रहेंगे। आप कहते थे, मेरे कर्मचारी उनकी ओर टेढ़ी निगाह से भी देखेंगे, तो उनकी शामत आ जायगी। वे सारी बातें क्या आपको भूल गयी? और इतनी जल्द? अभी तो बहुत दिन नहीं गुजरे। अब आप कहते हैं प्रजा मेरे पैरों की धूल है

राजा साहब कहाँ तो क्रोध से उन्मत्त हो रहे थे कहाँ यह लगती हुई बात सुनकर रो पड़े क्रोध निरुत्तर होकर पानी हो जाता है मगर एक ही क्षण में राजा साहब सचेत हो गये। प्रभुता ने आँसुओं को दबा दिया। अकड़कर बोले—मैं कहता हूँ, यहाँ से चले जाओ!

चक्रधर—जब तक आप इन आदमियों को जाने न देंगे, मैं नहीं जा सकता।

राजा—मेरे आदमियों से तुम्हें कोई सरोकार नहीं है। उनमें से अगर एक भी हिला, तो उसकी लाश जमीन पर होगी।

चक्रधर—तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि उन्हें यहाँ से हटा ले जाऊँ?

यह कहकर चक्रधर मजदूरों की ओर चले। राजा साहब जानते थे कि इनका इशारा पाते ही सारे मजदूर हवा हो जायँगे, फिर सशस्त्र सेना भी उन्हें न रोक सकेगी। तिलमिलाकर बन्दूक लिए हुए चक्रधर के पीछे दौड़े और ऐसे जोर से उन पर कुन्दा चलाया कि सिर पर लगता तो शायद वहीं ठण्डे हो जाते। मगर कुशल हुई। कुन्दा पीठ में लगा और उसके झोंके से चक्रधर कई हाथ पर जा गिरे। उनका जमीन पर गिरना था कि पाँच हजार आदमी बाड़े को तोड़कर, सशस्त्र सिपाहियों को चीरते, बाहर निकल आये और नरेशों के कैम्प की ओर चले। रास्ते में जो कर्मचारी मिला, उसे पीटा। मालूम होता था, कैम्प में लूट मच गयी है। दूकानदार अपनी दुकानें समेटने लगे, दर्शकगण अपनी धोतियाँ सँभालकर भागने लगे। चारों तरफ भगदड़ पड़ गयी। जितने बेफिक्रे, शोहदे, लुच्चे तमाशा देखने आए थे, वे सब उपद्रवकारियों में मिल गये। यहाँ तक कि नरेशों के कैम्प तक पहुँचते-पहुँचते उनकी संख्या दूनी हो गयी।

राजा-रईस अपनी वासनाओं के सिवा और किसी के गुलाम नहीं होते। वक्त की गुलामी भी उन्हें पसन्द नहीं वे किसी नियम को अपनी स्वेच्छा में बाधा नहीं डालने देते। फिर उनको इसकी क्या परवाह कि सुबह है या शाम। कोई मीठी नींद के मजे लेता था, कोई गाना सुनता था, कोई स्नानध्यान में मग्न था और लोग तिलक-मण्डप जाने की तैयारियाँ कर रहे थे। कहीं भँग घुटती थी, कहीं कवित्त-चर्चा हो रही थी और कहीं नाच हो रहा था। कोई नाश्ता कर रहा था और कोई लेटा नौकरों से चम्पी करा रहा था। उत्तरदायित्वहीन स्वतन्त्रता अपनी विविध लीलाएँ दिखा रही थी अगर उपद्रवी इस कैम्प में पहुँच जाते तो महा

अनर्थ हो जाता न जाने कितने राजवंशों का अंत हो जाता किन्तु राजाओं की रक्षा उनका इकबाल करता है अंग्रेजी कैम्प में १० १२ आदमी अभी शिकार खेलकर लौटे थे उन्होंने जो यह हंगामा सुना तो बाहर निकल आये और जनता पर अन्धाधुन्ध बन्दूक छोड़ने लगे। पहले तो उत्तेजित जनता ने बन्दूकों की परवा न की, उसे अपनी संख्या का बल था।

जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो जाती है।

गोलियों की पहली बाढ़ आई। कई आदमी गिर गये।

चौधरी—देखो भाई, घबराना नहीं। जो गिरता है उसे गिरने दो; आज ही तो दिल के हौसले निकले है। जय हनुमानजी की !

एक मजदूर—बढ़े आओ, बढ़े आओ, अब मार लिया है। आज ही तो ..

उसके मुँह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि गोलियों की दूसरी बाढ़ आयी और कई आदमियों के साथ दोनों नेताओं का काम तमाम कर गयी। एक क्षण के लिए सबके पैर रुक गये। जो जहाँ था, वहीं खड़ा रह गया। समस्या थी कि आगे जायें या पीछे ? सहसा एक युवक ने कहा—मारो, रुक क्यों गये ? सामने पहुँचकर हिम्मत छोड़े देते हो ! बढ़े चलो। जय दुर्गामाई की !

अंग्रेजी कैम्प से फिर गोलियों की बाढ़ आयी और कई आदमियों के साथ यह आदमी भी गिर गया, और उसके गिरते ही सारे समूह में खलबली पड़ गयी। अभी तक इन लोगों को न मालूम था कि गोलियाँ किधर से आ रही है। समझ रहे थे कि इसी कैम्प से आती होंगी। अब शिकारी लोग बढ़ आये थे और साफ नजर आ रहे थे।

एक चमार बोला—साहब लोग गोली चला रहे है। चलो, उन्हीं सबो को पथे ? मुर्गी के अण्डे खा-खाकर खूब मोटाये हुए हैं।

वे अंग्रेजी कैम्प की तरफ मुड़े और एक ही हल्ले में अंग्रेजी कैम्प के फाटक तक आ पहुँचे। अंग्रेज योद्धा अभी तक तो मोरचे पर खड़े बन्दूकें छोड़ रहे थे, लेकिन इस भयंकर दल को सामने देखकर उनके औसान जाते रहे दो चार तो भागे दो-तीन मूर्छा खाकर गिर पड़े केवल पाँच फौजी अपनी जगह पर डटे रहे उन्हे बचने की कोई

आशा न थी इसी निराशा ने उन्हे अदम्य साहस प्रदान कर दिया था। स मने पहुचकर लोगो ने आगे बढकर पत्थर चलाने शुरू किये यहा तक कि अग्र ज चोट खाकर गिर पड एक का सिर फट गया था दूसरे की बाँह टूट गयी थी। केवल तीन आदमी रह गये थे और वही इन आदमियों को रोक रखने के लिए काफी थे। लेकिन उनके पास भी कारतूस न रह गये थे। इधर हड़तालियों के हौहले बढ़ते जाते थे। शिकार अब बेदम होकर गिरना चाहता था। हिंसा के मुँह से लार टपक रही थी।

सहसा एक आदमी पीछे से भीड को चीरता, बेतहाशा दौडता हुआ आकर बोला—बस, बस. क्या करते हो! ईश्वर के लिए हाथ रोको! क्या गजब करते हो! लोगों ने चकित होकर देखा, तो चक्रधर थे। सैकड़ो आदमी उन्मत्त होकर उनकी ओर दौडे और उन्हे घेर लिया। जयजयकार की ध्वनि से आकाश गूँजने लगा।

एक मजदूर ने कहा—हमें अपने एक सौ भाइयों के खून का बदला लेना है।

चक्रधर ने दोनो हाथ ऊपर उठाकर कहा—कोई एक कदम आगे न बढ़े। खबरदार!

मजदूर—यारो, बस, एक हल्ला और!

चक्रधर—हम फिर कहते है, अब एक कदम भी आगे न उठे।

जिले के मैजिस्ट्रेट मिस्टर जिम ने कहा—बाबू साहब, खुदा के लिए हमें बचाइए।

फौज के कप्तान मिस्टर सिम बोले—हम हमेशा आपको दुआ देगा। हम सरकार से आपका सिफारिश करेगा।

एक मजदूर—हमारे एक सौ जवान भून डाले, तब आप कहाँ थे? यारो, क्या खड़े हो, बाबूजी का क्या बिगडा है। मारे तो हम गये हैं न? मारो बढ के।

चक्रधर—ने उपद्रवियों के सामने खड़े होकर कहा—अगर तुम्हें खून की ऐसी प्यास है तो मैं हाजिर हूँ। मेरी लाश को पैरो से कुचल कर तभी तुम आगे बढ सकते हो

चक्रधर मर। लहू इस ज्वाला को शान्त करने के लिए काफ नहीं है ?

मजदूर—भैया, तुम सान्त-सान्त बका करते हो, लेकिन उसका फल क्या होता है। हमें जो चाहता है, मारता है; जो चाहता है, पीसता है; तो क्या हमी सान्त बैठे रहे ? सान्त रहने से तो और भी हमारी दुर्गत होती है। हमें सान्त रहना मत सिखाओ। हमें मरना सिखाओ, तभी हमारा उद्धार कर सकोगे।

चक्रधर—अगर अपनी आत्मा की हत्या करके हमारा उद्धार भी होता हो तो हम आत्मा की हत्या न करेंगे। संसार को मनुष्य ने नहीं बनाया है, ईश्वर ने बनाया है। भगवान् ने उद्धार के जो उपाय बताये है, उनसे काम लो और ईश्वर पर भरोसा रखो।

मजदूर—हमारी फाँसी तो हो ही जायगी। तुम माफी तो न दिला सकोगे।

मिस्टर जिम—हम किसी को सजा न देंगे।

चक्रधर—इनाम मिले या फाँसी, इसकी क्या परवा। अभी तक तुम्हारा दामन खून के छीटो से पाक है, उसे पाक रखो। ईश्वर की निगाह में तुम निर्दोष हो। अब अपने को कलंकित मत करो, जाओ।

मजदूर—अपने भाइयों का खून कभी हमारे सिर से न उतरेगा; लेकिन तुम्हारी यही मरजी है, लौट जाते है। आखिर फाँसी पर तो चढना ही है।

एक क्षण में सारा कैम्प साफ हो गया। एक भी मजदूर न रह गया।

इन आदमियो के जाते ही वे लोग भी इनके साथ हो लिये, जो पहले लूट के लालच से चले आये थे। जिस तरह पानी आ जाने से कोई मेला उठ जाता है, ग्राहक, दूकानदार और दूकाने सब न जाने कहाँ लुप्त हो जाती है, उसी भाँति एक क्षण में सारे कैम्प में सन्नाटा छा गया। केवल तिलक मण्डप से अभी तक आग की ज्वाला निकल रही थी। राजा साहब और उनके साथ के कुछ गिने-गिनाये आदमी उसके सामने चुपचाप खडे मानो किसी मृतक की दाह-क्रिया कर रहे हो।

अँधेरा छा गया था घायलो के कराहने की आवाजें आ रही थीं

चक्रधर और उसके साथ के युवक उन्हें सावधानी से उठा। उठाकर एक वृक्ष के नीचे जमा कर रहे थे कई आदमी तो उठाते उठाते सुरलोक सिधारे कुछ सेवक उन्हें ले जाने की फिक्र करने लगे।

एकाएक कई सिपाहियों ने आकर चक्रधर को पकड़ लिया और अंग्रेजी कैम्प की तरफ ले चले। पूछा, तो मालूम हुआ कि जिम साहब का यह हुक्म है।

वहाँ कचहरी लगी हुई थी। सशस्त्र पुलिस के सिपाही, जिन्हें अब लूट से फुरसत मिल चुकी थी, द्वार पर संगीने चढ़ाये खड़े थे। अन्दर मिस्टर जिम और मिस्टर सिम रौद्र रूप धारण किये सिगार पी रहे थे, मानो क्रोधाग्नि मुँह से निकल रही हो। राजा साहब मिस्टर जिम के बगल में बैठे थे। दीवान साहब क्रोध से आँखे लाल किये मेज पर हाथ रखे कुछ कह रहे थे और मुँशी वज्रधर हाथ बाँधे एक कोने में खड़े थे।

चक्रधर को देखते ही मिस्टर जिम ने कहा—राजा साहब कहता है कि यह सब तुम्हारी शरारत है।

चक्रधर आवेश में आकर बोले—अगर राजा साहब, आपका ऐसा विचार है, तो इसका मुझे दुःख है। हम लोग जनता में जागृति अवश्य फैलाते है, उनमें शिक्षा का प्रचार करते है, उन्हे स्वार्थान्ध मामलो के फन्दो से बचाने का उपाय करते हैं, और उन्हे अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करने का उपदेश दे देते हैं। हम चाहते है कि वे मनुष्य बने और मनुष्यो की भाँति संसार में रहें। वे स्वार्थ के दास बनकर कर्मचारियो की खुशामद न करे, भयवश अपमान और अत्याचार न सहे। अगर इसे कोई भड़काना समझता है, तो समझे। हम तो इसे अपना कर्त्तव्य समझते है।

जिम—तुम्हारे उपदेश का यह नतीजा देखकर कौन कह सकता है कि तुम उन्हें नहीं भड़काता?

चक्रधर—यहाँ उन आदमियो पर अत्याचार हो रहा था और उन्हे यहाँ से चले जाने का या काम न करने का अधिकार था। अगर उन्हें शांति के साथ चले जाने दिया जाता, तो यह नौबत कभी न आती।

राजा हमें से बगार लेने का अधिकार है और उसे हम

नही छोड सकते आप असामियो को बगार देने से मना करते हैं और आज के ८ का सारा भार आपके ऊपर है

चक्रधर—कोई अन्याय केवल इसलिए मान्य नहीं हो सकता कि लोग उसे परम्परा से सहते आए है।

जिम—हम तुम्हारे ऊपर बगावत का मुकदमा चलायेगा। तुम dangerous (खतरनाक) आदमी है।

राजा—हुजूर, मैं इनके साथ कोई सख्ती नहीं करना चाहता, केवल यह प्रतिज्ञा लिखाना चाहता हूँ कि यह अथवा इनके सहकारी लोग मेरी रियासत में न जायँ।

चक्रधर—मैं ऐसी प्रतिज्ञा नही कर सकता। दीनों पर अन्याचार होते देखकर दूर खडे रहना वह दशा है, जो हम किसी तरह नही सह सकते।

मिस्टर जिम ने सब-इन्स्पेक्टर से कहा—इनको हवालात में रखो, कल इजलास पर पेश करो।

वज्रधर ने आगे बढकर जिम के पैरों पर पगड़ी रख दी और बोले—हुजूर, यह गुलाम का लडका है। हुजूर, इसकी जांबख्शी करे।

मिस्टर जिम—ओ! तहसीलदार साहब, यह तुम्हारा लडका है? तुमने उसको घर से निकाल क्यो नही दिया? सरकार तुमको इसलिए पेशन नही देता कि तुम बागियो को पाले। हम तुम्हारा पेशन बन्द कर देगा।

राजा—बाबू चक्रधर, अभी कुछ नहीं बिगडा है। आप प्रतिज्ञा लिखकर शौक से घर जा सकते है। मैं आपको तग नही करना चाहता। हा, इतना ही चाहता हूँ कि फिर ऐसे हगामे न खडे हो।

चक्रधर—राजा साहब, क्षमा कीजिएगा, जब तक असन्तोष के कारण दूर न होगे, ऐसी दुर्घटनाएँ होगी और फिर होगी। मुझे आप पकड सकते है, कैद कर सकते हैं। इससे चाहे आपको शान्ति हो; पर वह असन्तोष को भड़काकर आप प्रजा को शान्त नही कर सकते। हाँ, कायर बना सकते है। अगर आप उन्हे कर्महीन, बुद्धिहीन, पुरुषार्थहीन, मनुष्य का तन धारण करने वाले सियार और सुअर बनाना चाहते है, तो बनाइए, पर इससे न आपकी कीर्ति होगी, न ईश्वर प्रसन्न होंगे और न स्वयं आपकी आत्मा ही तुष्ट होगी।

११

संध्या हो गयी है। ऐसी उमस है कि सांस लेना कठिन है, और जेल की कोठरियो में यह उमस और भी असह्य हो गई है। एक भी खिडकी नही, एक भी जगला नहीं। उस पर मच्छरो का निरन्तर गान कानों के परदे फाड़े डालता है।

यहीं एक कोठरी में चक्रधर को भी स्थान दिया गया है। स्वाधीनता की देवी अपने सच्चे सेवकों को यही पद प्रदान करती है।

वह सोच रहे है—यह भीषण उत्पात क्यों हुआ ? हमने कभी भूलकर भी किसी से यह प्रेरणा नही की। फिर लोगों के मन में यह बात कैसे समायी ? इस प्रश्न का उन्हें यही उत्तर मिल रहा है कि यह हमारी नीयत का नतीजा है। हमारी शांति-शिक्षा की तह में द्वेष छिपा हुआ था। हम भूल गए थ कि संगठित शक्ति आग्रहमय होती है; अत्याचार से उत्तेजित हो जाती है। अगर हमारी नीयत साफ होती, तो जनता के मन में कभी राजाओं पर चढ दौड़ने का आवेश न होता, लेकिन क्या जनता राजाओं के कैम्प की तरफ न जाती, तो पुलिस उन्हें बिना रोक-टोक अपने घर जाने देती ? कभी नही, सवार के लिए घोड़े का अड़ जाना या बिगड जाना एक बात है। जो छेड़-छेड़ कर लड़ना चाहे, उससे कोई क्योंकर बचे ? फिर, अगर प्रजा अत्याचार का विरोध न करे, उसके संगठन से फायदा ही क्या ? इसीलिए तो उसे सारे उपदेश दिए जाते है। कठिन समस्या है। या तो प्रजा को उनके हाल पर छोड़ दूँ, उन पर कितने ही जुल्म हो, उनके निकट न जाऊँ या ऐसे उपद्रवो के लिए तैयार रहूँ। राज्य पशु-बल का प्रत्यक्ष रूप है। वह साधु नहीं है, जिसका बल धर्म है; वह विद्वान नहीं है, जिसका बल तर्क है। वह सिपाही है जो डण्डे के जोर से अपना स्वार्थ सिद्ध कराता है। इसके सिवा उनके पास कोई दूसरा साधन ही नही।

यह सोचते-सोचते उन्हें अपना ख्याल आया। मैं तो कोई आन्दो

लन नहो कर रहा था किसो को भडका नही रहा था जिन लोगो की प्राणरक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाली वही मेर साथ यह सलूक कर रहे हैं इतना भी नही देख सकते कि जनता पर किसी का असर हो उनकी इच्छा इसके सिवा और क्या है कि सभी आदमी अपनी-अपनी आँखे बन्द कर रखे, उन्हे अपने आगे-पीछे, दाये-बाये देखने का हक नही। अगर सेवा करना पाप है, तो यह पाप तो मै उस वक्त तक करता रहूँगा, जब तक प्राण रहेगे। जेल की क्या चिन्ता ? सेवा करने के लिए सभी जगह मौके है। जेल में तो और भी ज्यादा। लालाजी को दुःख होगा, अम्माजी रोयेगी, लेकिन मजबूरी है। जब बाहर भी जवान और हाथ-पाँव बाँधे जायँगे, तो जैसे जेल वैसे बाहर। वह भी जेल ही है। हा, जरा उसका विस्तार अधिक है। मै किसी तरह प्रतिज्ञा नही कर सकता।

वह इसी सोच-विचार में पड़े हुए थे कि एकाएक मुंशी वज्रधर कमरे में दाखिल हुए। उनकी देह पर एक पुरानी अचकन थी, जिसका मैल उसके असली रग को छिपाये हुए था। नीचे एक पतलून था, जो कमरबन्द न होने के कारण खिसकर इतना नीचा हो गया था कि घुटनो के नीचे एक झोला-सा पड़ गया था। ससार में कपड़े से ज्यादा बेवफा और कोई वस्तु नही होती। तहसीलदार साहब चक्रधर के पास जाकर बोले—क्या करते हो, बेटा ? यहा तो बड़ा अँधेरा है। चलो, बाहर इक्का खड़ा है, बैठ लो। इधर ही से साहब के बँगले पर होते चलेगे। जो कुछ वह कहे, लिख देना। बात ही कौन-सी है। हमें कौन किसी से लड़ाई करनी है। कल ही से दौड लगा रहा हूँ। बारे आज दोपहर को जाके सीधा हुआ। पहले बहुत यों-त्यो करता रहा, लेकिन मैने पिड न छोड़ा। या वहाँ न चलना चाहो, तो यही एक हलफनामा लिख दो। देर करने से क्या फायदा। तुम्हारी अम्माँ रो-रोकर जान दे रही है।

चक्रधर ने सिर नीचा करके कहा—अभी तो मैंने कुछ निश्चय नही किया। सोचकर जवाब दूँगा। आप नाहक इतने हैरान हुए।

वज्रधर—कैसी बाते करते हो, बेटा ? यहाँ नाक कटी जा रही है, घर से निकलना मुश्किल हो गया है और तुम कहते हो—सोचकर जवाब दूँगा। इसमें सोचने की बात ही क्या है ? चलो, हलफनामा लिख दो। घर में कल से आग नही जली

चक्रधर   मेरी आत्मा किसी तरह अपने पाव म बेडिया डालने पर राजी नही होता

चक्रधर जब प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करने पर राजी न हुए   तो मुशीजी निराश होकर बोले—अच्छा बेटा, लो, अब कुछ न कहेग । मै तो जानता था कि तुम जन्म के जिद्दी हो, मेरी एक न सुनोगे, इसीलिए आता ही न था; लेकिन तुम्हारी माता ने मुझे कुरेद-कुरेद कर भेजा । कह दूँगा, नही आता । जितना रोना हो, रो लो ।

कठोर-से-कठोर हृदय में भी मातृ-स्नेह की कोमल स्मृतियाँ संचित होती है । चक्रधर कातर होकर बोले–आप माताजी को समझाते रहियेगा। कह दीजियेगा, मुझे जरा भी तकलीफ नही है ।

वज्रधर ने इतने दिनो तक योही तहसीलदारी न की थी । ताड गये कि अबकी निशाना ठीक पडा । बेपरवाई से बोले—मुझे क्या गरज पडी है कि किसी के लिए झूठ बोलूँ । जो आँखों से देख रहा हूँ, वही कहूँगा । रोयेगी, रोये, रोना तो उसकी तकदीर ही में लिखा है । जब से तुम आये हो, एक घूँट पानी तक मुँह मे नही डाला । इसी तरह दो-चार दिन और रही, तो प्राण निकल जायेगे ।

चक्रधर करुणा से विह्वल हो गये । बिना कुछ कहे हुए मुंशीजी के साथ दफ्तर की ओर चले । मुंशीजी के चेहरे की झुर्रियाँ एक क्षण के लिए मिट गयीं । चक्रधर को गले लगाकर बोले—जीते रहो बेटा, तुमने मेरी बात मान ली । इससे बढकर और क्या खुशी की बात होगी ।

दोनों आदमी दफ्तर में आये, तो जेलर ने कहा – क्या आप इक-रार-नामा लिख रहे है ? निकल गयी सारी शेखी ! इसी पर इतनी दूने की लेते थे ।

चक्रधर पर घडो पानी पड़ गया । मन की अस्थिरता पर लज्जित हो गये । जाति-सेवको से सभी दृढता की आशा रखते है, सभी उसे आदर्श पर बलिदान होते देखना चाहते है । जातीयता के क्षेत्र में आते ही उसके गुणों की परीक्षा अत्यन्त कठोर नियमों से होने लगती है और दोषों की सूक्ष्म नियमो से । परले सिरे का कुचरित्र मनुष्य भी साधुवेश रखने वालो से ऊँचे आदर्श पर चलने की आशा रखता है, और उन्हे आदर्श से गिरते देखकर उनका तिरस्कार करने में संकोच नही करता । जेलर के कटाक्ष ने चक्रधर की झपकी हुई आँखे खोल दीं । तुरन्त उत्तर दिया—मैं जरा वह प्रतिज्ञा-पत्र देखना चाहता हू

लिए कोई जगह ही नहीं रही घर पर कैदी ही बना रहूँगा जब कैद ही होना है तो क्या बुरा है? अब या तो अदालत से बरी होकर आऊंगा या सजा के दिन काटकर।

यह कहकर चक्रधर अपनी कोठरी में चले आये।

एक सप्ताह के बाद मिस्टर जिम के इजलास में मुकदमा चलने लगा।

अदालत में रोज खासी भीड हो जाती। वे सब मजदूर, जिन्होने हडताल की थी, एक बार चक्रधर के दर्शनों को आ जाते। शहर में हजारो आदमी आ पहुँचते थे। कभी-कभी राजा विशालसिंह भी आकर दर्शकों की गैलरी में बैठ जाते। लेकिन और कोई आये या न आये, किन्तु मनोरमा रोज ठीक दस बजे कचहरी में आ जाती और अदालत के उठने तक अपनी जगह पर मूर्ति की भाँति वैठी रहती। उसके मुख पर दृढ संकल्प, विशाल करुणा, अलौकिक धैर्य और गहरी चिन्ता का फीका रग छाया हुआ था।

सन्ध्या का समय था। आज पूरे १५ दिनो की कारवाई के बाद मिस्टर जिम ने दो साल की कैद का फैसला सुनाया था। यह कम-से-कम सजा थी, जो उस धारा के अनुसार दी जा सकती थी।

चक्रधर हँस-हँसकर मित्रो से विदा हो रहे थे। सबकी आँखों में जल भरा हुआ था। मजदूरो का दल इजलास के द्वार पर खडा 'जय-जय' का शोर मचा रहा था। कुछ स्त्रियाँ खड़ी रो रही थी। सहसा मनोरमा आकर चक्रधर के सम्मुख खडी हो गयी। उसके हाथ में फूलों का एक हार था। वह उसने उनके गले में डाल दिया और बोली—अदालत ने तो आप को सजा दे दी, पर इतने आदमियो में एक भी ऐसा न होगा, जिसके दिल में आपसे सौगुना प्रेम न हो गया हो। आप ने हमें सच्चे साहस, सच्चे आत्मबल और सच्चे कर्त्तव्य का रास्ता दिखा दिया। जाइए, जिस काम का बीडा उठाया है, उसे पूरा कीजिए, हमारी शुभकामनाएँ आप के साथ हैं।

चक्रधर ने केवल दबी आँखो से मनोरमा को देखा, कुछ बोल न सके। उन्हे शर्म आ रही थी कि लोग दिल में क्या खयाल कर रहे होंगे। सामने राजा विशालसिंह, दीवान साहब, ठाकुर गुरुसेवक और मुंशी वज्रधर खडे थे। बरामदे में हजारों आदमियों की भीड़ थी। धन्यवाद के शब्द उनकी जबान पर आकर रुक गये। वह दिखाना चाहते थे कि मनोरमा की यह वीर-भक्ति उसकी बाल-क्रीड़ा मात्र है।

एक क्षण में सिपाहियों ने को बन्द गाडी में बिठा दिया और जेल की ओर ले चले

१२

चक्रधर की गिरफ्तारी के दूसरे दिन मनोरमा, राजा विशालसिंह को फटकार सुनाने गई थी। उसकी दोनों आँखे बीर वहूटी हो रही थी, भवे चढ़ी हुई। उस समय राजा साहब कोप-भवन में मारे क्रोध से अपनी मूछें ऐंठ रहे थे। सारे राजमहल में सन्नाटा था। मनोरमा उनके सामने चली गयी और उन्हे सरोष नेत्रों से ताकती हुई वोली—उसका कंठ आवेश से काँप रहा था—महाराज! मै आपसे यह पूछने आई हूँ कि क्या प्रभुता और पशुता एक ही वस्तु है, या उनमें कुछ अन्तर है? मुझे आश्चर्य होता है कि जिन्हें मैं देवता समझती हूँ, उन पर आपके हाथ क्योंकर उठे?

मनोरमा के मान-प्रदीप्त सौंदर्य ने राजा साहब को परास्त कर दिया।

सौंदर्य के सामने प्रभुत्व भीगी बिल्ली बन गया। विशालसिंह ने अपने कृत्य पर पश्चाताप करते हुए कहा—मनोरमा, बाबू चक्रधर वीरात्मा है और उनके साथ मैने जो अन्याय किया है, उसका मुझे जीवन-पर्यन्त दु:ख रहेगा।

मनोरमा के सौंदर्य ने राजा साहब पर जो जादू का-सा असर डाला था, वही असर उनकी विनय और शालीनता ने मनोरमा पर किया। जब वह कमरे से चली गयी तो विशालसिंह द्वार पर खड़े उसकी ओर ऐसे तृषित नेत्रों से देखते रहे, मानो उसे पी जायेंगे। उनके हृदय में एक विचित्र आकांक्षा अंकुरित हुई।

दीवान साहब से पहले वह खिचे रहते थे। अब उनका विशेष आदर-सत्कार करने लगे। दो-तीन बार उनके मकान पर भी गए और ठाकुर साहब की भी कई बार दावत की। आपस में घनिष्ठता बढ़ने लगी। हर्ष की बात यह थी कि मनोरमा के विवाह की बातचीत और कहीं

नहीं हो रही थी मैदान खाली था इन अवसरों पर मनोरमा उनके साथ कुछ इस तरह दिल खोलकर मिली कि राजा साहब की आशाएँ और भी चमक उठीं। हाँ, अगर शंका थी, तो लौंगी की ओर से थी। वह राजा साहब का आना-जाना पसन्द न करती थी। वह उनके इरादों को भाँप गयी थी और उन्हें दूर ही रखना चाहती थी। यही एक कंटक था और उसे हटाये बिना वह अपने लक्ष्य पर न पहुँच सकते थे। बेचारे इसी उधेड़-बुन में पड़े रहते थे। आखिर उन्होंने मुंशीजी को अपना भेदिया बनाना निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल मुँशीजी दीवान साहब के मकान पर पहुँचे! दीवान साहब मनोरमा के साथ गंगा-स्नान को गये हुए थे। लौंगी अकेली बैठी हुई थी। मुँशीजी फूले न समाये। ऐसा ही मौका चाहते थे। जाते-ही-जाते विवाह की बात छेड़ दी।

लौंगी को यह सम्बन्ध किसी भी तरह स्वीकार नहीं था। अभी बात-चीत हो ही रही थी कि दीवान साहब स्नान करके लौट आये। लौंगी ने इशारे से उन्हें एकान्त में ले जाकर सलाह की। थोड़ी देर बाद दीवान साहब ने आकर मुँशीजी से कहा—आप राजा साहब से जाकर कह दीजिए कि हमें विवाह करना मंजूर नहीं।

मुँशीजी ने सोचा, अगर जाकर राजा साहब से कहे देता हूँ कि दीवान साहब ने साफ इन्कार कर दिया, तो मेरी किरकिरी होती है। इस-लिए आपने जाकर डून हांकनी शुरू की—हुजूर, बुढ़िया बला कि चुड़ैल है, हत्थे पर तो आती ही नहीं, इधर भी झुकती है, उधर भी; और दीवान साहब तो निरे मिट्टी के ढेले है।

राजा साहब ने अधीर होकर पूछा—आखिर आप तय क्या कर आये?

मुँशी—हुजूर के एकबाल से फतह हुई, मगर दीवान साहब खुद आप से शादी की बातचीत करते झेंपते है। आपकी तरफ से बातचीत शुरू हो, तो शायद उन्हें इन्कार न होगा।

राजा—तो मैं बातचीत शुरू कर देता हूँ। आज ही ठाकुर साहब की दावत करूँगा और मनोरमा को भी बुलाऊँगा। आप भी जरा तकलीफ कीजिएगा।

दावत में राजा साहब ने मौका पाकर मनोरमा पर अपनी अभि

लाषा प्रकट की पहले तो वह सहमी-सी खड़ी रही फिर बोली पिताजी से तो अभी आपकी बातें नहीं हुई।

राजा—अभी तो नहीं, मनोरमा! अवसर पाते ही करूँगा; पर कहीं उन्होंने इन्कार कर दिया तो?

मनोरमा—मेरे भाग्य का निर्णय वही कर सकते हैं। मैं उनका अधिकार नहीं छीनूँगी।

दोनों आदमी बरामदे में पहुँचे, तो मुँशीजी और दीवान साहब खड़े थे। मुँशीजी ने राजा साहब से कहा—हुजूर को मुबारकबाद देता हूँ।

दीवान—मुँशीजी····

मुँशी - हुजूर, आज जलसा होना चाहिए। (मनोरमा से) महारानी, आपका सोहाग सदा सलामत रहे।

दीवान—जरा मुझे सोच···

मुँशी—जनाब, शुभ काम में सोच-विचार कैसा। भगवान् जोड़ी सलामत रखे!

सहसा बाग में बैंड बजने लगा और राजा के कर्मचारियों का समूह इधर-उधर से आ-आकर राजा साहब को मुबारक देने लगा। दीवान साहब सिर झुकाये खड़े थे। न कुछ कहते बनता था, न सुनते। दिल में मुँशीजी को हजारों गालियाँ दे रहे थे कि इसने मेरे साथ कैसी चाल चली! आखिर यह सोचकर दिल को समझाया कि लौंगी से सब हाल कह दूँगा। भाग्य में यही बदा था, तो मैं करता क्या? मनोरमा भी तो खुश है।

ज्योंही ठाकुर साहब घर पहुँचे, लौंगी ने पूछा—वहाँ क्या बातचीत हुई?

दीवान—शादी ठीक हो गई और क्या?

नहो जा सकता था इसलिए लौंगी मन मार कर उसी दिन से विवाह को तैयारिया करने लगी।

यो तीन महीने तैयारिया म गुजर गए विवाह का महूत निकट आ गया। सहसा एक दिन शाम को खबर मिली कि जेल मे दंगा हो गया और चक्रधर के कन्धे में गहरा घाव लगा है। बचना मुश्किल है।

मनोरमा के विवाह की तैयारियाँ तो हो ही रही थी और यों भी देखने में वह बहुत खुश नजर आती थी, पर उसका हृदय सदैव रोता रहता था। कोई अज्ञात भय, कोई अलक्षित वेदना, कोई अतृप्त कामना, कोई गुप्त चिन्ता, हृदय को मथा करती थी। अन्धों की भाँति इधर-उधर टटोलती थी, पर न चलने का मार्ग मिलता था, न विश्राम का आधार। उसने मन में एक बात निश्चय की थी और उसी में सन्तुष्ट रहना चाहती थी, लेकिन कभी-कभी वह जीवन इतना शून्य, इतना अँधेरा, इतना नीरस मालूम होता कि घटों वह मूछित-सी बैठी रहती, मानों कही कुछ नही है, अनन्त आकाश में केवल वही अकेली हैं।

यह भयानक समाचार सुनते ही मनोरमा को हौलदिल-सा हो गया। आकर लौंगी से बोली—लौंगी अम्माँ, मैं क्या करूँ? बाबूजी को देखे बिना अब नही रहा जाता। क्यों अम्माँ, घाव अच्छा हो जायगा न?

लौंगी ने करुण नेत्रों से देखकर कहा—अच्छा क्यों न होगा, बेटी! भगवान् चाहेगे, तो जल्द अच्छा हो जायगा।

लौंगी मनोरमा के मनोभाव को जानती थी। उसने सोचा, इस अबला को कितना दुःख है। मन-ही-मन तिलमिला कर रह गयी। हाय! चारे पर गिरने वाली चिड़िया को मोती चुगाने की चेष्टा की जा रही है। तड़प-तड़पकर पिंजड़े में प्राण देने के सिवा वह और क्या करेगी! मोती में जो चमक है, वह अनमोल है; लेकिन उसे कोई खा तो नही सकता। उसे गले में बाँध लेने से क्षुधा तो न मिटेगी।

चक्रधर को जल मे पहुचकर ऐसा मालूम हुआ कि वह नयी दुनिया मे आ गये। उन्हे ईश्वर के दिये हुए वायु और प्रकाश के मुश्किल से दर्शन होते थे। भोजन ऐसा मिलता था, जिसे शायद कुत्ते भी सूँघकर छोड देते। वस्त्र ऐसे, जिन्हे कोई भिखारी पैरो से ठुकरा देता, और परिश्रम इतना करना पडता था जितना बैल भी न कर सके। जेल शासन का विभाग नहीं पाशविक व्यवसाय है। आदि से अन्त सारा व्यापार घृणित, जघन्य, पैशाचिक और निन्द्य है। अनीति की भी अक्ल यहाँ दंग है, दुष्टता भी यहाँ दाँतों तले उँगली दबाती है।

मगर कुछ ऐसे भी भाग्यवान है, जिनके लिए ये जेल कल्प-वृक्ष से कम नही। बैल अनाज पैदा करता है, तो अनाज का भूसा खाता है। कैदी बल से भी गया-गुजरा है। वह नाना प्रकार के शाक-भाजी और फल-फूल पैदा करता है; पर सब्जी, फल और फूलो से भरी हुई डालियाँ हुक्काम के बँगलो पर पहुँच जाती है। कैदी देखता है और किस्मत ठोक कर रह जाता है।

चक्रधर को चक्की पीसने का काम दिया गया। प्रातःकाल गेहूँ तौल-कर दे दिया जाता और सन्ध्या तक उसे पीसना जरूरी था। कोई उज्र या बहाना न सुना जाता था। बीच में केवल एक बार खाने की छुट्टी मिलती थी। इसके बाद फिर चक्की में जुत जाना पडता था। वह बराबर सावधान रहते थे कि किसी कर्मचारी को कुछ कहने का मौका न मिले, लेकिन गालियों में बाते करना जिनकी आदत हो गयी हो, उन्हें कोई क्योंकर रोकता।

किन्तु विपत्ति का अन्त यहीं तक न था। कैदी लोग उन पर ऐसे अश्लील, ऐसी अपमानजनक आवाजे कसते थे कि क्रोध और घृणा से उनका रक्त खौल उठता, पर लहू का घूँट पीकर रह जाते थे। उनके कमरे में पाँच कैदी रहते थे उनमे धन्नासिह नाम का एक ठाकुर भी था बहुत ही बलिष्ठ

और गजब का शैतान वह उनका नेता था वे सब इतना शोर मचाते इतनी गन्दी, घृणोत्पादक बातें करते कि चक्रधर को कानों में उगलियाँ डालनी पडती थी। हुक्म तो यह था कि कोई कैदी तम्बाकू भी न पीने पाये पर यहाँ गाँजा, भग, शराब, अफीम—यहाँ तक कि कोकेन भी न जाने किस तिकडम से पहुँच जाते थे। नशे में वे इतने उद्दण्ड हो जाते, मानो नर-तन-धारी राक्षस हों।

धीरे-धीरे चक्रधर को इन आदमियों से सहानुभूति होने लगी। सोचा, इन परिस्थितियों में पड़कर ऐसा कौन प्राणी है, जिसका पतन न हो जायगा। उन्हें सभी श्रेणी के मनुष्यों से साबिका पड़ चुका था, पर ऐसे निर्लज्ज, गालियाँ खाकर हँसने वाले, दुर्व्यसनों में डूबे हुए, मुहफट, बेहया आदमी उन्होंने अब तक न देखे थे। उन्हें न गालियों की लाज थी, न मार का भय। कभी-कभी उन्हें ऐसी-ऐसी अस्वाभाविक ताडनाएँ मिलती थीं कि चक्रधर के रोएँ खड़े हो जाते थे, मगर क्या मजाल कि किसी कैदी की आँखों में आँसू आये। यह व्यापार देख-देखकर चक्रधर अपने कष्टों को भूल जाते थे। कोई कैदी उन्हें गाली देता, तो चुप हो जाते और इस ताक में रहते थे कि कब इसके साथ सज्जनता दिखाने का अवसर मिले।

चक्रधर का जीवन कभी इतना आदर्श न था। कैदियों को मौका मिलने पर धर्म कथाएँ सुनाते। इन कथाओं को कैदी लोग इतने चाव से सुनते, मानो एक-एक शब्द उनके हृदय पर अंकित हो जाता था, किन्तु इनका असर बहुत जल्दी मिट जाता था, इतनी जल्दी कि आश्चर्य होता था। उधर कथा हो रही है और इधर लात-मुक्के चल रहे हैं। कभी-कभी वे इन कथाओं पर अविश्वास-पूर्ण टीकाएँ करते और बात हँसी में उडा देते। पर अभिव्यक्तिपूर्ण आलोचनाएँ सुनकर भी चक्रधर हताश न होते। शनैः-शनैः उनकी भक्ति-चेतना स्वय दृढ़ होती जाती थी।

इस भाँति कई महीने गुजर गये। एक दिन संध्या-समय चक्रधर दिनभर के कठिन श्रम के बाद बैठे संध्या कर रहे थे कि कई कैदी आपस में बातें करते हुए निकले—आज इस दारोगा की खबर लेनी चाहिए। जब देखो, गालियाँ दिया करता है। ऐसा मारो कि जन्म भर को दाग हो जाय! यही न होगा कि साल-दो-साल की मीयाद और बढ़ जायगी। बच्चा की आदत तो छूट जायगी। चक्रधर इस तरह की बातें अक्सर सुनते रहते थे, इसलिए उन्होंने इस पर कुछ विशेष ध्यान न दिया, मगर भोजन करने के समय ज्योंही दारोगा साहब आकर खड हुए और एक कैदी को देर में

आने के लिए मारने दौड कि कई कदो चारो तरफ से दौड पड और मारो मारो' का शोर मच गया दारोगाजी की सिटटी पिटटी भूल गयी सहसा धन्नासिह ने आगे बढकर दारोगाजी की गरदन पकडी और इतनी जोर से दबायी कि उनकी आख बाहर निकल आयी। चक्रधर ने देखा, अब अनथ हुआ चाहता है, तो तीर की तरह झपटे, कैदियो के बीच में घुस कर धन्ना सिह का हाथ पकड़ लिया और बोले— क्या करते हो ?

धन्नासिह—हट जाओ सामने से नहीं तो सारा बाबूपन निकाल दूँगा। पहले इससे पूछो, अब तो किसी को गालियाँ न देगा, मारने तो न दौड़ेगा ?

दारोगा—कसम कुरान की, जो कभी मेरे मुँह से गालो का एक हरफ भी निकले।

धन्नासिह—कान पकडो।

दारोगा—कान पकडता हू।

धन्नासिह—जाओ बच्चा, भले का मुँह देखकर उठे थे, नही तो आज जान न बचती, यहाँ कौन कोई रोने वाला बैठा हुआ है।

चक्रधर—दारोगाजी, कही ऐसा न कीजिएगा कि जाकर वहाँ से सिपाहियों को चढा लाइए और इन गरीबों को भुनवा डालिए।

दारोगा—लाहौल विलाकूवत ! इतना कमीना नही हूँ।

दारोगाजी तो यहाँ मे जान बचाकर भागे, लेकिन दफ्तर में जाते ही गारद के सिपाहियों को ललकारा, हाकिम जिला को टेलीफोन किया और खुद बन्दूक लेकर समर के लिए तैयार हुए। दम-के-दम मे सिपाहियों का दल संगीने चढ़ाये आ पहुँचा और लपककर भीतर घुस पडा।

चक्रधर पर चारो ओर से बौछार पडने लगी। उन्होंने आगे बढ़कर कहा—दारोगाजी, आखिर आप क्या चाहते है ? इन गरीबो को क्यो घेर रखा है।

दारोगा ने सिपाहियो की आड से कहा—यही उन सब बदमाशो का सरगना है। इसे गिरफ्तार कर लो। बाकी जितने हैं उन्हें खूब मारो, मारते-मारते उनका हलुवा निकाल लो सुअर के बच्चों का !

चक्रधर—आपको कैदियों को मारने का कोई मजाज नही है ···

सिपाही कैदियों पर टूट पडे और उन्हें बन्दूकों के कुन्दों से मारना शुरू किया

कादियो में खलबली पड गयी कुछ इधर उधर से फावड कुदाल और पत्थर ला-ला कर लडने पर तैयार हो गये मौका नाजुक था चक्रधर ने बडी दीनता से कहा मैं आपको फिर समझाता हू।

दारोगा—चुप रह सुअर का बच्चा !

इतना सुनना था कि चक्रधर बाज की तरह लपककर दारोगाजी पर झपटे। कैदियो पर कुँदों की मार पडनी शुरू हो गई थी। चक्रधर को बढते देखकर उन सबो ने पत्थरों की वर्षा शुरू की। भीषण सग्राम होने लगा।

एकाएक चक्रधर ठिठक गये। ध्यान आ गया, स्थिति और भयकर हो जायगी, अभी सिपाही बन्दूके चलानी शुरू कर देंगे, लाशो के ढेर लग जायँगे। अगर हिंसक भावों को दवाने का कोई मौका हो सकता है, तो वह यही मौका है। ललकार कर बोले—पत्थर न फेको, पत्थर न फेंको ! सिपाहियो के हाथो से बन्दूक छीन लो।

सिपाहियो ने सगीनें चढ़ानी चाही; लेकिन उन्हे इसका मौका न मिल सका। एक-एक सिपाही पर दस-दस कैदी टूट पड़े और दम-के-दम में उनकी बन्दूके छीन ली। यह सब कुछ पाँच मिनट में हो गया। ऐसा दाँव पडा कि वही लोग जो जरा देर पहले हेकडी जताते थे, खडे दया-प्रार्थना कर रहे थे, घिघियाते थे, मत्थे टेकते थे और रोते थे, दारोगाजी की सूरत तस्वीर खीचने योग्य थी। चेहरा फक, हवाइयाँ उडी हुई, थर-थर काँप रहे थे कि देखे, जान बचती है या नही।

कैदियो ने देखा इस वक्त हमारा राज्य हैं, तो पुराने बदले चुकाने पर तैयार हो गये। धन्नासिह लपका हुआ दारोगा के पास आ गया और जोर से एक धक्का देकर बोला—क्यों साहब, उखाड़ लूँ डाढी का एक-एक बाल ?

चक्रधर—धन्नासिह, हट जाओ।

धन्नासिह—मरना तो है ही, अब इन्हे क्यो छोडें ?

चक्रधर—मेरे देखते तो यह अनर्थ न होने पायेगा। हाँ, मर जाऊँ तो जो चाहे करना !

धन्नासिह अगर ऐसे बडे धर्मात्मा हो तो इनको क्यो नही ? देखते नही हो कितनी सासत होती है

सशस्त्र पुलिस के सिपाहियो और अफसरो के साथ आ पहु चे थे दारोगाजी ने अन्दर आते वक्त किवाड ब द कर लिये थे जिसमें कोई कैदी भागने न पाये यह शोर सुनते ही चक्रधर समझ गये कि पुलिस आ गई । बोले अरे भाइ, क्यो अपनी जान के दुश्मन हुए हो ? बन्दूक रख दो और फौरन जाकर किवाड खोल दो । पुलिस आ गयी ।

धन्नासिह—कोई चिन्ता नही । हम भी इन लोगो का वारा न्यारा किये डालते है । मरते ही है, तो दो-चार को मार के मरे ।

कैदियो ने फौरन सगीने चढायी और सबसे पहले धन्नासिह दारोगाजी पर झपटा । करीब था कि सँगीन की नोक उनके सीने में चुभे कि चक्रधर यह कहते हुए 'धन्नासिह, ईश्वर के लिए' 'दारोगाजी के सामने आकर खड़े हो गये । धन्नासिह वार कर चुका था । चक्रधर के कन्धे पर सगीन का भरपूर हाथ पडा । आधी संगीन धस गयी । दाहिने हाथ से कन्धे को पकड़कर बैठ गये । कैदियो ने उन्हे गिरते देखा, तो होश उड गये । आ-आकर उनके चारो तरफ खड़े हो गये । घोर अनर्थ की आशंका ने उन्हे स्तँभित कर दिया । भगत को चोट आ गयी—ये शब्द उनकी पशु-वृत्तियो को दबा बैठे । । धन्नासिह ने बन्दूक फेक दी और फूट-फूटकर रोने लगा । ग्लानि के आवेश में बार-बार चाहता है कि वही सगीन अपनी छाती में चुभा ले; लेकिन कैदियों ने इतने जोर से उसे जकड रखा है कि उसका कुछ बस नहीं चलता ।

दारोगा ने मौका पाया तो सदर फाटक की तरफ दौड़े कि उसे खोल दूँ । धन्नासिह ने देखा तो एक ही झटके में वह कैदियो के हाथों से मुक्त हो गया और बन्दूक उठाकर उनके पीछे दौडा । करीब था कि दारोगाजी पर फिर वार पडे कि चक्रधर फिर सभलकर उठे और एक हाथ से अपना कधा पकडे, लड़खडाते हुए चले । धन्नासिह ने उन्हे आते देखा, तो उसके पाव रुक गये । भगत अभी जीते हैं, इसकी उसे इतनी खुशी हुई कि वह बन्दूक फेंककर पीछे की ओर चला और उनके चरणों पर सिर रखकर रोने लगा ।

चक्रधर ने कहा—सिपाहियों को छोड़ दो ।

धन्नासिह—बहुत अच्छा, भैया ! तुम्हारा जी कैसा है ?

सहसा मिस्टर जिम सशस्त्र पुलिस के साथ जेल में दाखिल हुए । उन्हे देखते ही सारे कैदी भय से भागे केवल दो आदमी चक्रधर के पास

खड़ रहे धन्नासिंह उनमें एक था सिपाहियों ने भी छूटते ही अपनी अपनी बंदूक सभाली और एक कतार में खड़े हो गये

जिम—वेल दारोगा, क्या हाल हैं ?

दारोगा—हुजूर के अकबाल से फतह हो गयी। कैदी भाग गये।

जिम—यह कौन आदमी पड़ा है ?

दारोगा—इसी ने हम लोगों की मदद की है, हुजूर। चक्रधर नाम है।

जिम—इसी ने कैदियों को भड़काया होगा ?

दारोगा—नही हुजूर, इसने तो कैदियों को समझा-बुझाकर शांत किया।

जिम—तुम कुछ नही समझता। यह लोग पहले कैदियो को भडकाता है, फिर उनकी तरफ से हाकिम लोगों से लड़ता है।

दारोगा—देखने में तो हुजूर, बहुत सीधा मालूम होता है, दिल का हाल खुदा जाने।

जिम—खुदा के जानने से कुछ नही होगा; तुमको जानना चाहिए। यह आदमी कैदियो से मजहब की बातचीत तो नही करता ?

दारोगा—मजहब की बातें तो बहुत करता है हुजूर !

जिम—ओह ! तब तो यह बहुत ही खतरनाक आदमी है। जब कोई पढा-लिखा आदमी मजहब की बातचीत करे, तो फौरन समझ लो कि वह कोई साजिश करना चाहता है। Religion (धर्म) के साथ Politics (राजनीति) बहुत खतरनाक हो जाता है। यह आदमी कैदियो से बड़ी हम-दर्दी करता होगा ? सरकारी हुक्म को खूब मानता होगा ? कड़े-से-कड़ा काम खुशी से करता होगा ?

दारोगा—जी हाँ।

जिम—ऐसा आदमी निहायत खौफनाक होता है। उस पर कभी एतबार नही करना चाहिए। हम इस पर मुकदमा चलायेगा। इसको बहुत कडी सजा देगा। सिपाहियों को दफ्तर में बुलाओ। हम सबका बयान लिखेगा।

दारोगा—हुजूर, पहले उसे डाक्टर साहब को दिखा लूँ। ऐसा न हो कि मर जाय, गुलाम को दाग लगे

जिम—वह मरेगा नही ऐसा खौफनाक आदमी कभी नही मरता और मर भी जायगा तो हमारा कोई नुकसान नही

यह कहकर साहब दफ्तर की ओर चले। धन्नासिंह अब तक इस इन्तजार में खड़ा था कि डाक्टर साहब आते होंगे। जब देखा कि जिम साहब इधर मुखातिब भी न हुए, तो उसने चक्रधर को गोद में उठाया और अस्पताल की ओर चला।

चक्रधर दो महीने अस्पताल में पड़े रहे। दवा-दर्पन तो जैसी हुई वही जानते होंगे, लेकिन जनता की दुआओं में जरूर असर था। हजारों आदमी नित्य उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना करते थे और मनोरमा को तो दान, व्रत और तप के सिवा और कोई काम न था। जिन बातों को वह पहले ढकोसला समझती थी, उन्ही बातों में अब उसकी आत्मा को शान्ति मिलती थी। कमजोरी ही में हम लकड़ी का सहारा लेते है।

चक्रधर तो अस्पताल में पड़े थे, इधर उन पर नया अभियोग चलाने की तैयारियाँ हो रही थीं। ज्योंही वह चलने-फिरने लगे, उन पर मुकदमा चलने लगा। जेल के भीतर ही इजलास होने लगा। ठाकुर गुरुसेवकसिंह आजकल डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे। उन्ही को यह मुकदमा सिपुर्द किया गया।

ठाकुर साहब सरकारी काम में जरा भी रू-रिआयत न करते थे, लेकिन यह मुकदमा पाकर वह धर्म-संकट में पड़ गये। अगर चक्रधर को सजा देते हैं, तो जनता में मुँह दिखाने लायक नही रहते। मनोरमा तो शायद उनका मुँह भी न देखे। छोड़ते है, तो अपने समाज में तिरस्कार होता है, क्यों कि वहाँ सभी चक्रधर से खार खाये बैठे थे।

मुकदमे को पेश हुए आज तीसरा दिन था। गुरुसेवक बरामदे में बैठे सावन की रिम-झिम वर्षा का आनन्द उठा रहे थे। सहसा मनोरमा मोटर से उतरकर उनके समीप ही कुर्सी पर बैठ गयी!

गुरुसेवक ने पूछा—कहाँ से आ रही हो।

मनोरमा—घर ही से आ रही हूं। जेलवाले मुकदमे में क्या हो रहा है?

गुरुसेवक—अभी तो कुछ नही हुआ। गवाहों के बयान हो रहे है।

मनोरमा—बाबूजी पर जुर्म साबित हो गया?

गुरुसेवक—जुर्म का साबित होना या न होना दोनो बराबर है और मुझे मुल्जिमो को सजा करनी पड़ेगी अगर बरी कर दू तो   अपील

करके उन्हें फिर सजा दिला दूँगा तो मैं बदनाम हो जाऊँगा। मेरे लिए यह आत्म बलिदान का प्रश्न है। सारी देवता मण्डली मुझ पर कुपित हो जायगी।

मनोरमा—बाबूजी के लिए सजा का दो-एक साल बढ़ जाना कोई बात नहीं, वह निरपराध है और यह विश्वास उन्हें तस्कीन देने को काफी है, लेकिन तुम कहीं के न रहोगे! तुम्हारे देवता तुमसे भले ही सन्तुष्ट हो जायँ, पर तुम्हारी आत्मा का सर्वनाश हो जायगा।

गुरुसेवक—चक्रधर बिल्कुल बेकसूर तो नहीं है। पहले-पहल जेल के दारोगा पर वही गर्म पड़े थे। वह उस वक्त जब्त कर जाते, तो यह फिसाद न खड़ा होता।

मनोरमा—उन्होंने जो कुछ किया, वही उनका धर्म था। आपको अपने फैसले में साफ-साफ लिखना चाहिए कि बाबूजी बेकसूर हैं। आपको सिफारिश करनी चाहिए कि वह महान् संकट में अपने प्राणों को हथेली पर लेकर, जेल के कर्मचारियों की जान बचाने के बदले में उनकी मीआद घटा दी जाय।

गुरुसेवक ने अपनी नीचता को मुस्कराहट से छिपाकर कहा—आग में कूद पड़ूँ?

मनोरमा—धर्म की रक्षा के लिए आग में कूद पड़ना कोई नयी बात नहीं है। आखिर आपको किस बात का डर है? यही न, कि आपसे आपके अफसर नाराज हो जायँगे। आप शायद डरते हो कि कहीं आप अलग न कर दिये जायँ। इसकी जरा भी चिन्ता न कीजिए।

गुरुसेवक अपनी स्वार्थपरता पर झेंपते हुए बोले—नौकरी की मुझे परवा नहीं है, मनोरमा! मैं इन लोगों के कमीनेपन से डरता हूं! इनका धर्म, इनकी राजनीति, इनका न्याय, इनकी सभ्यता केवल एक शब्द में आ जाती है, और वह शब्द है—'स्वार्थ।' जानता हूँ, यह मेरी कमजोरी है, पर क्या करूँ? मुझमें तो इतना साहस नहीं।

मनोरमा—भैयाजी, आपकी यह सारी शंकाएँ निर्मूल हैं। गवाहों के बयान हो गये कि नहीं?

गुरुसेवक—हाँ, हो गये। अब तो केवल फैसला सुनाना है।

मनोरमा—तो लिखिए, मैं बिना लिखवाये यहाँ से जाऊँगी ही नहीं। यही इरादा करके आज आयी हूँ।

सहसा दूसरी मोटर आ पहुँची स पर राजासाहब बैठ हुए थे गुरुसेवक बड़ तपाक स उठ ले लेने दौड़ राजा ने उनकी ओर विशेष ध्यान न दिया मनोरमा के पास आकर बोले तुम्हारे घर स चला आ रहा हूँ वहा पूछा तो मालूम हुआ—कही गयी हो, पर यह किसी को मालूम न था कि कहाँ। वहाँ से पार्क गया, पार्क से चौक पहुँचा, सारे जमाने की खाक छानता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। मैं कितनी बार कह चुका हूं कि घर से चला करो, तो जरा बतला दिया करो।

यह कहकर राजा साहब ने मनोरमा का हाथ आहिस्ता से पकड़ लिया और उसे मोटर की तरफ खींचा। मनोरमा ने एक झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और बोली - मैं न जाऊँगी।

राजा—आखिर क्यों ?

मनोरमा- अपनी इच्छा !

गुरुसेवक- हुजूर, यह मुझसे जबरदस्ती जेलवाले मुकदमें का फैसला लिखाने बैठी हुई है। कहती है—बिना लिखवाये न जाऊँगी।

गुरुसेवक ने तो यह बात दिल्लगी से कही थी, पर समयोचित बात उनके मुँह से कम निकलती थी। मनोरमा का मुँह लाल हो गया। समझी कि यह मुझे राजा साहब के सम्मुख गिराना चाहते हैं। तनकर बोली—हाँ, इसीलिए बैठी हूँ, तो फिर ? आपको यह कहते हुए शर्म आनी चाहिए थी। अगर मैं समझती कि आप निष्पक्ष होकर फैसला करेंगे, तो मेरे बैठने की क्यों जरूरत होती। आप मेरे भाई हैं, इसलिए मैं आपसे सत्याग्रह कर रही हूँ। आपकी जगह कोई दूसरा आदमी बाबूजी पर जान-बूझकर ऐसा घोर अन्याय करता, तो शायद मेरा वश चलता तो उसके हाथ कटवा लेती। चक्रधर की मेरे दिल में जितनी इज्जत है, उसका आप लोग अनुमान नहीं कर सकते।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। गुरुसेवक का मुँह नन्हा-सा हो गया, और राजा साहब तो मानो रो दिए। आखिर चुपचाप अपनी मोटर की ओर चले।

१४

हुक्काम के इशारों पर नाचने वाले गुरुसेवकसिंह ने जब चक्रधर को जेल के दंगे के इजलास से बरी कर दिया, तो अधिकारी मण्डल में सन-सनी फैल गयी। गुरुसेवक से ऐसे फैसले की किसी को आशा न थी। फैसला क्या था, मान-पत्र था, जिसका एक-एक शब्द वात्सल्य के रस में सराबोर था। जनता में धूम मच गयी। ऐसे न्याय-वीर और सत्यवादी प्राणी विरले ही होते हैं, सबके मुँह से यही बात निकलती थी। शहर के कितने ही आदमी तो गुरुसेवक के दर्शनों को आये और यह कहते हुए लौटे कि यह हाकिम नहीं, साक्षात् देवता है। अधिकारियों ने सोचा था, चक्रधर को ४-५ साल जेल में सड़ायेंगे, लेकिन अब तो खूँटा ही उखड़ गया, उछलें किस बिरते पर? चक्रधर इस इजलास से बरी ही न हुए, बल्कि उनकी पहली सजा भी एक साल घटा दी गयी। मिस्टर जिम तो ऐसा जामे से बाहर हुए कि बस चलता, तो गुरुसेवक को गोली मार देते। और कुछ न कर सके, तो चक्रधर को तीसरे ही दिन आगरे भेज दिया। कर्मचारियों को सख्त ताकीद कर दी गयी थी कि कोई कैदी उनसे बोलने तक न पाये, कोई उनके कमरे के द्वार तक भी न जाने पाये, यहाँ तक कि कर्मचारी भी उससे न बोलें। साल-भर में दस साल की कैद का मजा चखाने की हिकमत सोच निकाली गयी। मजा यह कि इस धुन में चक्रधर को कोई काम भी न दिया गया। बस, आठों पहर उसी चार हाथ लम्बी और तीन हाथ चौड़ी कोठरी में पड़े रहो।

चक्रधर के विचार और भाव इतनी जल्दी बदलते रहते थे कि कभी-कभी उन्हें भ्रम होने लगता था कि मैं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूँ। अन्त को इस अन्तर्द्वन्द्व में उनकी आत्मा ने विजय पायी। मन पर आत्मा का राज्य हो गया। मन अन्तर्जगत् की सैर करने लगा। वह किसी समाधिस्थ योगी की भाँति घण्टों इस अन्तर्लोक में विचरते रहते। शारीरिक कष्टों से अब उन्हें विराग-सा होने लगा। उनकी ओर [illegible]

समझते थे कभी कभी वह गाते मनोरञ्जन के लिए कई खेल निकाले अंधेरे में अपनी लुटिया लुढका देते और उसे एक ही खोज मे उठा ल ने की चेष्टा करते अगर उ हे किसी चीज की जरूरत मालूम होती तो वह प्रकाश था, इसलिए नही कि वह अन्धकार से ऊब गये थे, बल्कि इसलिए कि वह अपने मन में उमडने वाले भावो को लिखना चाहते थे। लिखने की सामग्रियों के लिए उनका मन तड़पकर रह जाता। धीरे-धीरे उन्हे प्रकाश की भी जरूरत न रही। उन्हे ऐसा विश्वास होने लगा कि मैं अँधेरे में भी लिख सकता हूँ। लेकिन लिखने का सामान कहाँ; बस, यही एक ऐसी चीज थी, जिसके लिए वह कभी-कभी विकल हो जाते थे।

चक्रधर के पास कभी-कभो एक बूढा वार्डर भोजन लाया करता था। वह बहुत ही हँसमुख आदमी था। चक्रधर को प्रसन्नमुख देखकर दो-चार बाते कर लेता था। उससे उन्हें बन्धुत्व-सा हो गया था। वह कई बार पूछ चुका था कि बाबूजी चरस-तम्बाखू की इच्छा हो, हमसे कहना। चक्रधर को ख्याल आया, क्यो न उससे एक पेंसिल और थोड़े से कागज के लिए कहूँ। कई दिनो तक तो वह इसी संकोच में पड़े रहे कि उससे कहूँ या नही। आखिर एक दिन उनसे न रहा गया, पूछ ही बैठे—क्यों जमादार, यहाँ कहीं कागज-पेंसिल तो मिलेगी ?

बूढे वार्डर ने सतर्क भाव से कहा—मिलने को तो मिल जायगा, पर किसी ने देख लिया, तो क्या होगा ?

इस वाक्य ने चक्रधर को सँभाल लिया। उनकी विवेक-बुद्धि, जो क्षणभर के लिए मोह में फँस गयी थी, जाग उठी। बोले—नही, मै यों ही पूछता था।

इसके बाद उस वार्डर ने फिर कई बार पूछा—कहो तो पिसन-कागद ला दूँ ? मगर चक्रधर ने हर दफा यही कहा—मुझे जरूरत नही।

बाबू यशोदानन्दन को ज्योंही मालूम हुआ कि चक्रधर आगरा जेल में आ गए है, वह उनसे मिलने की कई बार चेष्टा कर चुके थे; पर आज्ञा न मिलती थी। साधारणतः कैदियों को छठे महीने अपने घर के किसी प्राणी से मिलने की आज्ञा मिल जाती थी। चक्रधर के साथ इतनी रियायत भी न की गई थी पर अवसर पड़ने पर भी कर

ली अपने लिए नहीं अहल्या के लिए उस विरहिणी की दशा दिनो दिन खराब होती जाती थी। जब से चक्रधर ने जेल में कदम रखा, उसी दिन से वह भी कैदियो की-सी जिन्दगी बसर करने लगी। ईश्वर में पहले भी उसकी भक्ति कम न थी, अब तो उसकी धर्मनिष्ठा और बढ़ गयी। जब वह हाथ जोडकर आँखे बन्द करके ईश्वर से प्रार्थना करती, तो उसे ऐसा मालूम होता कि चक्रधर स्वयं मेरे सामने खड़े हैं। उसे अनुभव होता था कि मेरी प्रार्थनाएँ उस मातृ-स्नेह-पूर्ण अचल की भाँति, जो बालक को ढक लेता है, चक्रधर की रक्षा करती रहती है।

जिस दिन अहल्या को मालूम हुआ कि चक्रधर से मिलने की आज्ञा मिल गयी है उसे आनन्द के बदले भय होने लगा। यह भी शंका होती थी कि कही मुझे उनके सामने जाते ही मूर्छा न आ जाय, कहीं मैं चिल्ला-चिल्लाकर रोने न लगूँ।

प्रात काल उसने उठकर स्नान किया और बडी देर तक बैठी वन्दना करती रही। फिर यशोदानन्दन जी के साथ गाडी में बैठकर जेल चली।

जेल में पहुँचते ही एक औरत ने उसकी तलाशी ली और उसे पास के एक कमरे में ले गयी। अहल्या का कलेजा धड़क रहा था। उस स्त्री को अपने समीप बैठे देखकर उसे कुछ ढाढस हो रहा था, नही तो शायद वह चक्रधर को देखते ही उनके पैरों से लिपट जाती। सिर झुकाये बैठी थी कि चक्रधर दो चौकीदारों के साथ कमरे में आये। उनके सिर पर कनटोप था और देह पर एक आधी आस्तीन का कुरता, पर मुख पर आत्मबल की ज्योति झलक रही थी। उनका रंग पीला पड़ गया था; दाढी के बाल बढे हुए थे और आँखें भीतर को धुसी हुई थी, पर मुख पर एक हल्की-सी मुस्कराहट खेल रही थी। अहल्या उन्हे देखकर चौक पड़ी, उसी आँखो से बे-अख्तियार आँसू निकल आये। शायद कही और देखती तो पहचान भी न सकती। घबरायी-सी उठकर खड़ी हो गयी। अब दो-के-दोनों खड़े है, दोनों के मन में हजारों बाते हैं, उद्गार-पर-उद्गार उठते है, दोनो एक दूसरे को कनखियो में देखते है, पर किसी के मुँह से शब्द नहीं निकलता। अहल्या सोचती है, क्या पूछूँ, इनका एक-एक अग अपनी दशा आप सुना रहा है। चक्रधर भी यही सोचते हैं क्या पूछूँ इसका एक एक अंग इसकी तपस्या और वेदना की कथा सुना रहा है

इसी असमंजस और कण्ठावरोध की दशा में खड़े खड़े दोनों को १० मिनट हो गये यहाँ तक की उस लेडी को उनकी दशा पर दया आयी घड़ी देखकर बोली तुम लोग यों ही कब तक खड़े रहोगे ? दस मिनट गुजर गये, केवल दस मिनट और बाकी है।

चक्रधर मानो समाधि से जाग उठे। बोले—अहल्या, तुम इतनी दुबली क्यों हो ? बीमार हो क्या ?

अहल्या ने सिसकियों को दबाकर कहा—नही तो, मैं बिलकुल अच्छी हूँ। आप अलबत्ता इतने दुबले हो गये है कि पहचाने नही जाते।

चक्रधर—खैर, दुबले होने के तो कारण है, लेकिन तुम क्यो ऐसी घुली जा रही हो ? कम-से-कम अपने को इतना तो बनाए रखो कि जब मैं छूटकर आऊँ तो मेरी कुछ मदद कर सको। अपने लिए नही तो मेरे लिए तो तुम्हें अपनी रक्षा करनी चाहिए। बाबूजी तो कुशल से है ?

अहल्या—हाँ, आपको बराबर याद किया करते है। मेरे साथ वह भी आये हैं। पर यहाँ न आये। आजकल स्वास्थ्य भी बिगड़ गया है, पर आराम करने की उन्होंने कसम खा ली है। बूढ़े ख्वाजा महमूद से न जाने किस बात पर अनबन हो गयी है। आपके चले जाने के बाद कई महीने तक खूब मेल रहा; लेकिन अब फिर वही हाल है।

अहल्या ने ये बातें महत्त्व की समझकर न कही; बल्कि इसलिए कि वह चक्रधर का ध्यान अपनी तरफ से हटा देना चाहती थी। चक्रधर विरक्त होकर बोले—दोनों आदमी फिर धर्मान्धता के चक्कर में पड़ गये होंगे। जब तक हम सच्चे धर्म का अर्थ न समझेंगे, हमारी यही दशा रहेगी। घर का तो कोई समाचार न मिला होगा ?

अहल्या—मिला क्यों नहीं, बाबूजी हाल ही में काशी गये थे। जगदीशपुर के राजा साहब ने आपके पिताजी को ५०) मासिक बाँध दिया है, आपकी माताजी रोया करती है। छोटी रानी साहबा की आपके घर वालों पर विशेष कृपा दृष्टि है।

चक्रधर ने विस्मित होकर पूछा—छोटी रानी साहबा कौन ?

अहल्या—रानी मनोरमा अभी थोड़े ही दिन हुए, राजा साहब का विवाह हुआ है

चक्रधर—यह तो बड़ी दिल्लगी हुई मनोरमा का विवाह विशाल सिंह के साथ ? मुझे तो अब भी विश्वास नहीं आता। बाबूजी ने नाम बताने में गलती की होगी।

अहल्या—बाबूजी को स्वयं आश्चर्य हो रहा था। काशी में भी लोगों को बड़ा आश्चर्य है। मनोरमा ने अपनी खुशी से विवाह किया है, कोई दबाव न था। सुनती हूँ, राजा साहब बिलकुल उनकी मुट्ठी में है। जो कुछ वह कहती है, वही होता है। बाबूजी चन्दा माँगने गये थे, तो रानीजी ही ने पाँच हजार दिये। बहुत प्रसन्न मालूम होती थी।

सहसा लेडी ने कहा—वक्त पूरा हो गया। वार्डर, इन्हें अन्दर ले जाओ।

चक्रधर क्षण-भर भी और न ठहरे। अहल्या को तृष्णापूर्ण नेत्रों से देखते हुए चले गये। अहल्या ने सजल-नेत्रों से उन्हें प्रणाम किया और उनके जाते ही फूट-फूटकर रोने लगी।

१५

फागुन का महीना आया, ढोल-मजीरे की आवाजे कानों में आने लगी।

मुँशी वज्रधर की संगीत-सभा भी सजग हुई। यों तो कभी-कभी बारहो मास बैठक होती थी; पर फागुन आते ही बिला नागा मृदग पर थाप पड़ने लगी। उदार आदमी थे, फिक्र को कभी पास न आने देते। अपने शरीर को वह कभी कष्ट न देते थे। लड़का जेल में है, घर में स्त्री रोती-रोती अन्धी हुई जाती है, सयानी लडकी घर मैं बैठी हुई है; लेकिन मुँशीजी को कोई गम नही। पहले २५) मैं गुजर करते थे, अब ७५) भी पूरे नही पड़ते। जिससे मिलते हैं हँसकर, सबको मदद करने को तैयार। वादे सबसे करते हैं, किसी ने झुककर सलाम किया और प्रसन्न हो गये। दोनों हाथ से वरदान बाँटते फिरते हैं, चाहे पूरा एक भी न कर सकें। अपने मुहल्ले के कई बेफिक्रों को जिन्हे कोई टके को भी न पूछता था, रियासत मैं नौकर करा दिया—किसी को चौकीदार, किसी को मुहर्रिर, किसी को कारिन्दा। मगर नेकी करके दरिया में डालने की उनकी आदत नही। जिससे मिलते है, अपना ही यश गाना शुरू करते है और उसमें मनमानी अतिशयोक्ति भी करते है। मुँशीजी किसी को निराश नहीं करते, और न कुछ कर सकें, तो बातों से ही पेट भर देते हैं। जो काम पहुँच से बाहर होता है, उसके लिए भी 'हाँ-हाँ' कर देना, आँखें मारना, उड़नघाइया बताना, इन चालों मैं वह सिद्ध है। मनोरमा का राजा साहब से विवाह होना था कि मुँशीजी का भाग्य सूर्य चमक उठा। एक ठीकेदार को रियासत के कई मकानो का ठीका दिलाकर अपना मकान पक्का करा लिया, बनिया बोरों अनाज मुफ्त मैं भेज देता, धोबी कपड़ों की धुलाई नहीं लेता। सारांश यह कि तहसीलदार साहब के 'पौ बारह' है। तहसीलदारी में जो मजे न उड़ाये थे, वह अब उडा रहे है।

रात के ८ बज गये थे झिनकू अपने समाजियो के साथ आ बैठा

मुंशीजी मसनद पर बैठे पेचवान पी रहे थे गाना होने लगा इतने में रानी मनोरमा की मोटर आकर द्वार पर खड़ी हो गयी मुंशीजी नंगे सिर नंगे पाँव दौड़े जरा भी ठोकर खा जाते तो उठने का नाम न लेते मनोरमा ने हाथ उठाकर कहा—दौडिए नहीं, दौडिए नहीं। मैं आप ही के पास इस वक्त एक बडी खुशखबरी सुनाने आयी हूं। बाबूजी कल यहाँ आ जायेंगे।

मुंशी—क्या लल्लू ?

मनोरमा—जी हाँ, सरकार ने उनकी मियाद घटा दी है।

इतना सुनना था कि मुंशीजी बेतहाशा दौड़े और घर में जाकर हाँफते हुए निर्मला से बोले—सुनती हो, लल्लू कल आयेंगे। मनोरमा रानी दरवाजे पर खडी है।

यह कहकर उलटे पाँव फिर आ पहुँचे।

मनोरमा—अम्माजी क्या कर रही है, उनसे मिलती चलूँ।

मनोरमा घर में दाखिल हुई। निर्मला आँखों में प्रेम की नदी भरे, सिर झुकाए खडी थी। जी चाहता था, इसके पैरों के नीचे आँखे बिछा दूँ। मेरे धन्य भाग !

एकाएक मनोरमा ने झुककर निर्मला के पैरों पर शीश झुका दिया और पुलकित कण्ठ से बोली—माताजी, धन्य भाग कि आपके दर्शन हुए। जीवन सफल हो गया।

निर्मला सारा शिष्टाचार भूल गयी। बस, खडी रोती रही। मनोरमा के शील और विनय ने शिष्टाचार को तृण की भाँति मातृ-स्नेह की तरंग में बहा दिया।

जब मोटर चली गयी, तो निर्मला ने कहा—साक्षात् देवी है।

दस बज रहे थे। मुंशीजी भोजन करने बैठे। मारे खुशी के फूले न समाते थे। मारे खुशी के खाया भी न गया। जल्दी से दो-चार कौर खाकर बाहर भागे और अपने इष्ट मित्रों से चक्रधर के स्वागत के विषय में आधी रात तक बातें करते रहे। निश्चय किया गया कि प्रातःकाल शहर में नोटिस बाँटी जाय और सेवा-समिति के सेवक स्टेशन पर बैंड बजाते हुए उनका

हुई और एक क्षण में आकर वह एक कुरसी पर बैठ गये। मनोरमा ने पूछा रियासत का बैंड तैयार है न ?

हरिसेवक—हाँ, उसे पहले ही हुक्म दिया जा चुका है।

मनोरमा—जुलूस का प्रबन्ध ठीक है न ? मैं डरती हूँ, कहीं भद्द न हो जाय।

हरिसेवक—श्रीमान् राजा साहब की राय है कि शहर वालों को जुलूस निकालने दिया जाय, हमारे सम्मिलित होने की जरूरत नहीं।

मनोरमा ने रुष्ट होकर कहा—राजा साहब से मैंने पूछ लिया है। उनकी राय वही है, जो मेरी है। अगर सन्मार्ग पर चलने में रियासत जब्त भी हो जाय, तो भी मैं उस मार्ग से विचलित न हूँगी।

दीवान साहब ने सजल नेत्रों से मनोरमा को देखकर कहा—बेटी, मैं तुम्हारे ही भले की कहता हूँ। तुम नहीं जानतीं, जमाना कितना नाजुक है।

मनोरमा उत्तेजित होकर बोली—पिताजी, इस सदुपदेश के लिए मैं आपकी बहुत अनुगृहीत हूँ, लेकिन मेरी आत्मा उसे ग्रहण नहीं करती। अभी ७ बजे हैं। ८ बजते-बजते आपको स्टेशन पहुँच जाना चाहिए। मैं ठीक वक्त पर पहुँच जाऊँगी। जाइए।

दीवान साहब के जाने के बाद मनोरमा फिर मेज पर बैठकर लिखने लगी। यह वह भाषण था, जो वह चक्रधर के स्वागत के अवसर पर देना चाहती थी। वह लिखने में इतनी तल्लीन हो गयी थी कि उसे राजा साहब के आकर बैठ जाने की उस वक्त तक खबर न हुई, जब तक उन्हें उनके फेफड़ों ने खाँसने पर मजबूर न कर दिया।

मनोरमा ने चौंककर आँखें उठायीं, तो देखा कि राजा साहब बैठे हुए उसकी ओर प्रेम-विह्वल नेत्रों से ताक रहे हैं। बोली—क्षमा कीजियेगा, मुझे आपकी आहट ही न मिली। क्या आप देर से बैठे हैं ?

राजा—नहीं तो, अभी-अभी आया हूँ। तुम लिख रही थीं, मैंने छेड़ना उचित न समझा। मैं चाहता हूँ, जुलूस इतनी धूमधाम से निकले कि कम-से-कम इस शहर के इतिहास में अमर हो जाय।

मनोरमा—यही तो मैं भी चाहती हूँ।

राजा—मैं सैनिकों के आगे फौजी वर्दी में रहना चाहता हूँ।

मनोरमा ने चिन्तित होकर कहा—आपका जाना उचित नहीं जान पड़ता। आप यहीं उनका स्वागत कीजिएगा। अपनी मर्यादा का निर्वाह

तो करना ही पड़ेगा सरकार यों भी हम लोगों पर संदेह करती है तब तो वह सत्तू बाँधकर हमारे पीछे पड़ जायगी

मनोरमा फिर लिखने लगी और यह राजा साहब को वहाँ से चले जाने का संकेत था; पर राजा साहब ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। उनकी दृष्टि मकरन्द के प्यासे भ्रमर की भाँति मनोरमा के मुख-कमल का माधुर्य रसपान कर रही थी।

सहसा घड़ी में ९ बजे। मनोरमा कुरसी से उठ खड़ी हुई। राजा साहब भी किसी वृक्ष की छाया में विश्राम करने वाले पथिक की भाँति उठे और धीरे-धीरे द्वार की ओर चले। द्वार पर पहुँचकर वह फिर मुड़कर मनोरमा से बोले— मैं भी चलूँ, तो क्या हरज ?

मनोरमा ने करुण कोमल नेत्रों से देखकर कहा—अच्छी बात है, चलिए।

रेलवे-स्टेशन पर कहीं तिल रखने को जगह न थी। अन्दर का चबूतरा और बाहर का सहन सब आदमियों से खचाखच भरे थे। चबूतरे पर विद्यालयों के छात्र थे, रंग-बिरंग की वर्दियाँ पहने हुए, और सेवा-समितियों के सेवक, रंग-बिरंग की झण्डियाँ लिए हुए। मनोरमा नगर की कई महिलाओं के साथ सेवकों के बीच में खड़ी थी। बरामदे में राजा विशाल सिंह, उनके मुख्य कर्मचारी और शहर के रईस और नेता जमा थे। मुंशी वज्रधर इधर-उधर पैतरे बदलते और लोगों को सावधान रहने की ताकीद करते फिरते थे।

ठीक दस बजे गाड़ी दूर से धुआँ उड़ाती हुई दिखाई दी। अब तक लोग अपनी जगह पर कायदे के साथ खड़े थे; लेकिन गाड़ी के आते ही सारी व्यवस्था हवा हो गयी। गाड़ी आकर रुकी और चक्रधर उतर पड़े। मनोरमा भी अनुराग से उन्मत्त होकर चली; लेकिन तीन-चार पग चली थी कि ठिठक गयी और एक स्त्री की आड़ से चक्रधर को देखा। सेवा-समिति का मंगल-गान समाप्त हुआ, तो राजा साहब ने आगे बढ़कर नगर के नेताओं की ओर से उनका स्वागत किया। सब लोग उनसे गले मिले और यह जुलूस सजाया जाने लगा। चक्रधर स्टेशन के बाहर आये और तैयारियाँ देखीं, तो बोले—आप लोग मेरा इतना सम्मान करके मुझे लज्जित कर रहे हैं। मुझे तमाशा न बनाइये।

संयोग से मुँशीजी वहीं खड़े थे। ये बातें सुनीं, तो बिगड़कर बोले—तमाशा नहीं बनाना था तो दूसरों के लिए प्राण देने को क्यों तैयार हुए

ये तुम्ही अपनी इज्जत न करोगे तो दूसरे क्यों करने लगे आदमी कोई काम करता है तो रुपये के लिए या नाम के लिए अगर दो में एक भी हाथ न आये, तो वह काम करना ही व्यर्थ है।

यह कहकर उन्होंने चक्रधर को छाती से लगा लिया। चक्रधर का रक्तहीन मुख लज्जा से आरक्त हो गया था और कुछ आपत्ति करने का साहस न हुआ। चुपके से राजा साहब की टुकड़ी पर आ बैठे।

जुलूस नदेसर, चेतगज, दशाश्वमेध और चौक होता हुआ दोपहर होते-होते कबीर चौरे पर पहुँचा। यहाँ मुंशीजी के मकान के सामने एक बहुत बडा शामियाना तना हुआ था। निश्चय हुआ कि यही सभा हो और चक्रधर को अभिनन्दन-पत्र दिया जाय। मनोरमा स्वयं पत्र पढकर सुनाने वाली थी, लेकिन जब पढने को खडी हुई, तो उसके मुँह से एक शब्द न निकला।

मनोरमा को असमजस में देखकर राजा साहब खड़े हुए और उसे धीरे से कुर्सी पर बिठा कर बोले—सज्जनों, रानी जी के भाषण में आपको जो रस मिलता, वह मेरी बातों से कहाँ! कोयल के स्थान पर कौआ खडा हो गया है, शहनाई की जगह नृसिंहे ने ले ली है। आप लोगों को ज्ञात न होगा कि पूज्यवर बाबू चक्रधर रानी साहबा के गुरु रह चुके है, और वह उन्हे अब भी उसी भाव से देखती है। अपने गुरु का सम्मान करना शिष्य का धर्म है; किन्तु रानी साहबा का कोमल हृदय इस समय नाना प्रकार के आवेगों से इतना भरा हुआ है कि वाणी के लिए जगह ही नही रही। इसके लिए वह क्षम्य हैं। बाबू साहब ने जिस धैर्य और साहस से दीनों की रक्षा की, वह आप लोग जानते ही है। जेल में भी आपने निर्भीकता से अपने कर्त्तव्य का पालन किया। आपका मन दया और प्रेम का सागर है। जिस अवस्था में और युवक धन की उपासना करते है, आपने धर्म और जाति-प्रेम की उपासना की है। मैं भी आपका पुराना भक्त हूँ।

एक सज्जन ने टोका—आप ही ने तो उन्हे सजा दिलायी थी?

राजा—हाँ, मै इसे स्वीकार करता हूं। राज्य के मद में कुछ दिनों के लिए मै अपने को भूल गया था। कौन है, जो प्रभुता पाकर फूल न उठा हो। यह मानवीय स्वभाव है और आशा है आप लोग मुझे क्षमा करेंगे।

१६

आगरे के हिन्दुओ और मुसलमानों में आये-दिन जूतियाँ चलती रहती थी। जरा-जरा-सी बात पर दोनो दलों के सिर-फिरे जमा हो जाते और दो-चार के अग-भग हो जाते। कही वनिये ने डण्डी मार दी और मुसलमानो ने उसकी दूकान पर धावा कर दिया, कहीं किसी जुलाहे ने किसी हिन्दू का घड़ा छू लिया और मुहल्ले में फौजदारी हो गयी। निज के रगडे-झगड़े साम्प्रदायिक सग्राम के क्षेत्र में खीच लाये जाते थे। दोनों ही दल मजहब के नशे मे चूर थे।

होली के दिन थे। गलियों में गुलाब के छीटे उड रहे थे। इतने जोश से कभी होली न मनायी गयी थी। सयोग से एक मियां साहब मुर्गी हाथ में लटकाये कही से चले जा रहे थे। उनके कपड़े पर दो-चार छीटे पड गये। वस, गजव ही तो हो गया। सीधे जामे मसजिद पहुँचे और मीनार पर चढ-कर वाग दी—ये उम्मते रसूल! आज एक काफिर के हाथो से मेरे दीन का खून हुआ है। उसके छीटे मेरे कपड़ो पर पडे हुए हैं। या तो काफिरों से इस खून का वदला लो, या मै मीनार से गिरकर नवी की खिदमत में फरियाद सुनाने जाऊँ। वोलो मजूर है?

मुसलमानों ने यह ललकार सुनी और उनकी त्योरियाँ बदल गयीं। शाम होते दस हजार आदमी, तलवारे लिए, जामे मसजिद के सामने आकर जमा हो गये।

सारे शहर में तहलका मच गया। हिन्दुओ के होश उड़ गये। होली का नशा हिरन हो गया। पिचकारियाँ छोड़-छोड लोगों ने लाठियाँ सभाली; लेकिन यहाँ कोई जामे मसजिद न थी, न वह ललकार, न वह दीन का जोश। सवको अपनी-अपनी पडी हुई थी।

बाबू यशोदानन्दन कभी इस अफसर के पास जाते, कभी उस अफसर के। लखनऊ तार भेजे दिल्ली तार भेजे मुसलिम नेताओं के नाम तार भेजे लेकिन कोई फल न निकला और अन्त में जब वह निराश होकर

उठ तो मुसलिम वीर धावा बोल चुके थे वे अलो ! अलो ! का शोर मचाते चले जाते थे कि बाबू साहब ने पिस्तौल निकाली और शत्रुओ के सामने खड़ हो गये । सवाल-जवाब कौन करता । उन पर चारो तरफ से वार होने लगे ।

पिस्तौल चलाने की नौबत भी न आयी, यही सोचते खडे रह गये कि समझाने से ये लोग शान्त हो जायँ, तो क्यों किसी की जान लूँ। अहिंसा के आदर्श ने हिंसा का हथियार हाथ में होने पर भी उनका दामन न छोड़ा ।

बाबू यशोदानन्दन के मरने की खबर पाते ही सेवा-दल के युवको का खून खौल उठा । दो-सौ युवक तलवारे लेकर निकल पड़े और मुसलमान मुहल्लों में घुसे । हिन्दू मुहल्लो में जो कुछ मुसलमान कर रहे थे, मुसलमान मुहल्लों में वही हिन्दू करने लगे । अहिंसा ने हिंसा के आगे सिर झुका दिया ।

सहसा खबर उडी कि यशोदानन्दन के घर में आग लगा दी गयी है और दूसरे घरों में भी आग लगायी जा रही है । सेवा-दल वालो के कान खडे हुए । दो-ढाई हजार आदमियो का दल डबल मार्च करता हुआ उस स्थान को चला, जहाँ यह बडवानल दहक रहा था । वहाँ किसी मुसलमान का पता नहीं था, आग लगी थी; लेकिन बाहर की ओर । अन्दर जाकर देखा तो घर खाली पडा हुआ था । वागेश्वरी एक कोठरी में द्वार वन्द किये बैठी थी । इन्हे देखते ही वह रोती हुई बाहर निकल आयी और बोली—हाय ! मेरी अहल्या ! अरे दौड़ो, उसे ढूँढो, पापियो ने न-जाने उसकी क्या दुर्गति की ! हाय ! मेरी बच्ची !

एक युवक ने पूछा—क्या अहल्या को उठा ले गये ?

वागेश्वरी—हाँ भैया ! उठा ले गये । मना कर रही थी कि एरी बाहर मत निकल, अगर मरेंगे तो साथ ही मरेंगे, लेकिन न मानी । जाकर ख्वाजा महमूद से कहो, उसका पता लगाये । कहना, तुम्हें लाज नहीं आती ? जिस लड़की को बेटी बनाकर मेरी गोद में सौंपा था, जिसके विवाह में पाँच हजार खर्च करने वाले थे, उसकी उन्हीं के पिछलगुओ के हाथो यह दुर्गति ! हाय भगवान् ?

लोग ख्वाजा साहब के पास पहुँचे, तो देखते हैं कि मुंशी यशोदा-नन्दन की लाश रखी हुई है और ख्वाजा साहब बैठे रो रहे हैं इन लोगो

को देखते ही बोला तुम समझते होगे यह मेरा दुश्मन था खुदा जानता है मुझे अपने भाई और बेटा भी इससे ज्यादा अजीज नहीं फिर भी हम दोनों की जिन्दगी के आखिरी साल रकाबत में गुजरे आज उसका यह अंजाम हुआ। हम दोनों दिल से मेल करना चाहते थे; पर हमारी मरजी के खिलाफ कोई गैबी ताकत हमको लड़ाती रहती थी। आप लोग नहीं जानते हो, मेरी इससे कितनी गहरी दोस्ती थी। कौन जानता था, उस दोस्ती का यह अंजाम होगा।

एक युवक--हम लोग लाश को क्रिया-कर्म के लिए ले जाना चाहते हैं।

ख्वाजा--ले जाओ भाई, मैं भी साथ चलूँगा। मेरे कन्धा देने में कोई हरज है! इतनी रिआयत तो मेरे साथ करनी पड़ेगी। मैं पहले मरता, तो यशोदा सिर पर खाक उड़ाता हुआ मेरी मजार तक जरूर जाता।

युवक--अहल्या को भी उठा ले गये। माताजी ने आपसे ......

ख्वाजा--क्या अहल्या! मेरी अहल्या को! कब?

युवक--आज ही। घर में आग लगाने से पहले।

ख्वाजा--कलामे मजीद की कसम, जब तक अहल्या का पता न लगा लूँगा, मुझे दाना-पानी हराम है। तुम लोग लाश ले जाओ, मैं अभी आता हूँ। सारे शहर की खाक छान डालूँगा। भाभी से मेरी तरफ से अर्ज कर देना मुझसे मलाल न रखे। यशोदा नहीं है, लेकिन महमूद है। जब तक उसके दम-में-दम है, उन्हें कोई तकलीफ न होगी। कह देना, महमूद या तो अहल्या को खोज निकालेगा या मुँह में कालिख लगाकर डूब मरेगा।

यह कहकर ख्वाजा साहब उठ खड़े हुए, लकड़ी उठायी और बाहर निकल गये।

चक्रधर को आगरे के उपद्रव, बाबू यशोदानन्दन की हत्या और अहल्या के अपहरण का शोक-समाचार मिला, तो उन्होंने व्यग्रता में आकर पिता को वह पत्र सुना दिया और बोले--मेरा वहाँ जाना बहुत जरूरी है।

चक्रधर—कम-से-कम अहल्या का पता तो लगाना ही होगा।

वज्रधर—यह भी व्यर्थ है। पहले तो उसका पता लगाना ही मुश्किल है, और लग भी गया, तो तुम्हारा अब उससे क्या सम्बन्ध। अब वह मुसलमानों के साथ रह चुकी, तो कौन हिन्दू उसे पूछेगा?

चक्रधर—इसीलिए तो मेरा जाना और भी जरूरी है।

वज्रधर—ऐसी बहू के लिए हमारे घर में स्थान नहीं है।

चक्रधर ने निश्चयात्मक भाव से कहा—वह आपके घर में न आयेगी।

वज्रधर ने भी उतने ही निर्दय शब्द से उत्तर दिया—अगर तुम्हारा ख्याल हो कि पुत्र-स्नेह के वश होकर मैं उसे अंगीकार कर लूँगा, तो तुम्हारी भूल है। अहल्या कुल-देवी नहीं हो सकती, चाहे इसके लिए मुझे पुत्र-वियोग ही सहना पड़े।

चक्रधर पीछे घूमे ही थे कि निर्मला ने उसका हाथ पकड़ लिया और स्नेहपूर्ण तिरस्कार करती हुई बोली—बच्चा, तुमसे ऐसी आशा न थी। अब भी हमारा कहना मानो, हमारे कुल के मुँह में कालिख न लगाओ।

चक्रधर ने हाथ छुड़ाकर कहा—मैंने आपकी आज्ञा कभी भंग नहीं की लेकिन इस विषय में मजबूर हूँ।

वज्रधर—यह तुम्हारा अन्तिम निश्चय है?

चक्रधर—जी हाँ, अन्तिम!

यह कहते हुए चक्रधर बाहर निकल आये और कुछ कपड़े साथ लेकर स्टेशन की ओर चल लिये।

चक्रधर आगरे पहुँचे तो सबेरा हो गया था। एक क्षण तक वह खड़े सोचते रहे, कहाँ जाऊँ? बाबू यशोदानन्दन के घर जाना व्यर्थ था। अन्त को उन्होंने ख्वाजा महमूद के घर चलना निश्चय किया।

ख्वाजा साहब के द्वार पर पहुँचे, तो देखा कि हजारों आदमी एक लाश को घेरे खड़े हैं और उसे कब्रिस्तान ले चलने की तैयारी हो रही है। चक्रधर तुरन्त ताँगे से उतर पड़े और लाश के पास जाकर खड़े हो गये। कहीं ख्वाजा साहब तो नहीं कत्ल कर दिये गये। वह किसी से पूछने ही जाते थे कि सहसा ख्वाजा साहब ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और आँखों में आँसू भरकर बोले—खूब आये बेटा, तुम्हें आँखें ढूँढ रही थीं, जानते हो यह किसकी लाश है? यह मेरा इकलौता बेटा है जिस पर

जिन्दगी की सारी उम्मीद कायम थी लेकिन खुदा जानता है उसकी मौत पर मेरी आंखों से एक बूंद आंसू भी न निकला उसने वह फेल किया जो इन्सानियत के दर्जे से गिरा हुआ था तुम्हें अहल्या के बारे में तो खबर मिली होगी ?

चक्रधर– जी हाँ, शायद बदमाश लोग पकड़ ले गये।

ख्वाजा—यह वही बदमाश है, जिसकी लाश तुम्हारे सामने पड़ी हुई है। वह इसी की हरकत थी। मै तो सारे शहर में अहल्या को तलाश करता फिरता था, और वह मेरे ही घर में कैद थी। यह जालिम उस पर जब्र करना चाहता था। आज उसने मौका पाकर इसे जहन्नुम का रास्ता दिखा दिया– छुरी सीने में भोंक दी।

चक्रधर—मुझे यह सुनकर बहुत अफसोस हुआ। मुझे आपके साथ कामिल हमदर्दी है, आपका-सा इन्साफ-परवर, हकपरस्त आदमी इस वक्त दुनिया मे न होगा। अहल्या अब कहाँ है ?

ख्वाजा—इसी घर में। सुबह से कई बार कह चुका हूँ कि चल तुझे तेरे घर पहुँचा आऊँ, पर जाती ही नहीं। बस, बैठी रो रही है।

लाश उठायी गयी। शोक समाज पीछे-पीछे चला। चक्रधर भी ख्वाजा साहब के साथ कब्रिस्तान तक गये। जिस वक्त लाश कब्र में उतारी गयी, ख्वाजा साहब रो पड़े। यह क्षमा के आँसू थे। चक्रधर भी आँसुओं को न रोक सके।

दोपहर होते-होते लोग घर लौटे। ख्वाजा साहब जरा दम लेकर बोले—आओ बेटा तुम्हे अहल्या के पास ले चलूँ।

यह कहकर ख्वाजा साहब ने चक्रधर का हाथ पकड़ लिया और अन्दर चले। चक्रधर का हृदय बाँसों उछल रहा था। अहल्या के दर्शनों के लिए वह इतने उत्सुक कभी न थे। वह एक खिड़की के सामने खड़ी बगीचे की ओर ताक रही थी। सहसा चक्रधर को देखकर वह चौंक पड़ी और घूँघट में मुँह छिपा लिया। फिर एक ही क्षण के बाद वह उनके पैरों को पकड़कर अश्रु धारों से धोने लगी।

चक्रधर बोले—अहल्या ! मुझे तुम्हारे चरणों पर सिर झुकाना चाहिए, तुम बिलकुल उल्टी बात कर रही हो।

यह कहकर उन्होंने अहल्या का हाथ पकड़ लिया; लेकिन वह हाथ छुड़ा कर हट गयी और काँपते हुए स्वर में बोली—नहीं-नहीं, मेरे अंग को मत स्पर्श कीजिए सूँघा हुआ फूल देवताओं पर नहीं चढ़ाया जाता

ग्रापको सेवा करना मेरे भाग्य में न था म जन्म ही से अभागिनी हू आप जाकर अम्माँ को समझा दीजिए मेरे लिए अब दुःख न करें मैं निर्दोष हूँ लेकिन इस योग्य नहीं कि आपकी प्रेमपात्री बन सकूँ।

चक्रधर से अब न रहा गया। उन्होंने फिर अहल्या का हाथ पकड़ लिया और बोले—अहल्या, जिस देह में पवित्र और निष्कलंक आत्मा रहती है, वह देह भी पवित्र और निष्कलंक रहती है। मेरी आँखों में तुम आज उससे कहीं निर्मल और पवित्र हो, जितनी पहले थी।

अहल्या कई मिनट तक चक्रधर के कंधे पर सिर रखे रोती रही। फिर बोली—तुम केवल दया-भाव से और मेरा उद्धार करने के लिए यह कालिमा सिर चढ़ा रहे हो; या प्रेम-भाव से ?

चक्रधर का दिल बैठ गया। अहल्या की सरलता पर उन्हें दया आ गयी। यह अपने को ऐसी अभागिनी और दीन समझ रही है कि इसे विश्वास ही नहीं आता, मैं इससे शुद्ध प्रेम कर रहा हू। बोले—तुम्हें क्या जान पड़ता है, अहल्या ?

अहल्या—तुम्हारे मन में प्रेम से अधिक दया का भाव है।

चक्रधर—अहल्या, तुम मुझ पर अन्याय कर रही हो।

अहल्या—जिस वस्तु को लेने की सामर्थ्य ही मुझ में नहीं है, उस पर हाथ न बढ़ाउँगा। मेरे लिए वही बहुत है, जो आप दे रहे हैं, मैं इसे भी अपना धन्य भाग समझती हूँ।

फिर सहसा अहल्या ने कहा- मुझे भय है कि मुझे आश्रय देकर आप बदनाम हो जायँगे। कदाचित आपके माता-पिता आपका तिरस्कार करें। मेरे लिए इससे बड़ी सौभाग्य की बात नहीं हो सकती कि आपकी दासी बनूँ, लेकिन आपके तिरस्कार और अपमान का ख्याल करके जी में यही आता है कि क्यों न इस जीवन का अन्त कर दूँ।

चक्रधर की आँखे करुणार्द्र हो गयी। बोले—अहल्या, ऐसी बातें न न करो। अपनी आत्मा की अनुमति के सामने मैं माता-पिता के विरोध की परवा नहीं करता मैं तुमसे विनती करता हू कि ये बातें फिर जबान पर न लाना।

दृष्टि स्थिर हो गयी और चक्रधर की सौम्य मूर्ति प्रेम की आभा से प्रकाशमान आँखों के सामने खडी दिखाई दी

बाबू यशोदानन्दन के क्रिया-कर्म के तीसरे ही दिन चक्रधर का अहल्या से विवाह हो गया। चक्रधर तो अभी कुछ दिन टालना चाहते थे, लेकिन वागीश्वरी ने बडा आग्रह किया। विवाह में कुछ धूमधाम नहीं हुई।

जिस दिन चक्रधर अहल्या को विदा कराके काशी चले, हजारों आदमी स्टेशन पर पहुँचाने आये। वागीश्वरी का रोते-रोते बुरा हाल था। जब अहल्या आकर पालकी पर बैठी तो वह दुखिया पछाड़ खाकर गिर पडी। अहल्या भी रो रही थी; लेकिन शोक से नहीं; वियोग में। वागीश्वरी की गर्दन में उसके करपाश इतने सुदृढ हो गये कि दूसरी स्त्रियों ने बड़ी मुश्किल से छुडाया।

लेकिन चक्रधर के सामने एक दूसरी ही समस्या उपस्थित हो रही थी। वह घर तो जा रहे थे, पर उस घर के द्वार बन्द थे। पिता का क्रोध, माता का तिरस्कार, सम्बन्धियों की अवहेलना, उन सभी शंकाओं से चित्त उद्विग्न हो रहा था। सबसे विकट समस्या यह थी कि गाड़ी से उतरकर जाऊँगा कहाँ ? इन चिन्ताओं से उनकी मुख-मुद्रा इतनी मलिन हो गयी कि अहल्या ने उनसे कुछ कहने के लिए उनकी ओर देखा तो चौंक पडी। उसकी वियोग व्यथा अब शान्त हो गयी थी और हृदय में उल्लास का प्रवाह होने लगा था; लेकिन पति की उदास मुद्रा देखकर वह घबरा गयी, बोली—आप इतने उदास क्यों हैं ? क्या अभी से मेरी फिक्र सवार हो गयी ?

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—नहीं तो, उदास क्यों होने लगा ? यह उदास होने का समय है, या आनन्द मनाने का ?

मगर चक्रधर जितना ही अपनी चिन्ता को छिपाने का प्रयत्न करते थे, उतना ही वह और भी प्रत्यक्ष होती जाती थी, जैसे दरिद्र अपनी साख रखने की चेष्टा में और भी दरिद्र हो जाता है।

अहल्या ने गम्भीर भाव से कहा—तुम्हारी इच्छा है, न बताओ, लेकिन यही इसका आशय है कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं।

यह कहते-कहते अहल्या की आँखें सजल हो गयीं। चक्रधर से अब जब्त न हो सका। उन्होंने संक्षेप में सारी बातें कह सुनायीं और अन्त में प्रयाग उतर जाने का प्रस्ताव किया। अहल्या ने गर्व से कहा—अपना घर रहते प्रयाग क्यों उतरें ? मैं घर चलूँगी वे कितने ही नाराज हों, हैं तो

हमारे मान पिता ! आप इन चिंताओं को दिल से निकाल डालिए उनको प्रसन्न करने का भार मुझ पर छोड़ दे मुझे विश्वास है कि उन्हें मना लूँगी

चक्रधर ने अहल्या को गद्गद् नेत्रों से देखा और चुप हो रहे।

रात को दस बजते-बजते गाड़ी बनारस पहुँची। अहल्या के आश्वासन देने पर भी चक्रधर बहुत चिन्तित हो रहे थे कि कैसे क्या होगा। लेकिन उन्हें कितना आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने मुँशीजी को दो आदमियों के साथ स्टेशन पर उनकी राह देखते पाया। पिता के इस असीम, अपार अलौकिक वात्सल्य ने उन्हें इतना पुलकित किया कि वह जाकर पिता के पैरों पर गिर पड़े। मुँशीजी ने दौड़कर छाती से लगा लिया और उनके श्रद्धाश्रुओं को रूमाल से पोंछते हुए स्नेह-कोमल शब्दों में बोले—कम-से-कम एक तार तो दे देते कि मैं किस गाड़ी से आ रहा हूँ। खत तक न लिखा। यहाँ बराबर दस दिन से दो बार स्टेशन पर दौड़ा आता हूँ और एक आदमी हरदम तुम्हारे इन्तजार में बिठाये रहता हूँ कि न जाने कब, किस गाड़ी से आ जाओ। कहाँ है बहू ? चलो, उतार लाये। बहू के साथ यहीं ठहरो। स्टेशन-मास्टर से कहकर वेटिंग-रूम खुलवाये देता हूँ। मैं दौड़कर जरा बाजे-गाजे, रोशनी, सवारी की फिक्र करूँ। बहू का स्वागत तो करना ही होगा। यहाँ लोग क्या जानेंगे कि बहू आयी है। वहाँ की बात और थी, यहाँ की बात और है। भाई-बन्दों के साथ रस्म-रिवाज मानना ही पड़ता है।

यह कहकर मुँशीजी चक्रधर के साथ अहल्या की गाड़ी के द्वार पर खड़े हो गये। अहल्या ने धीरे से उतर कर उनके चरणों पर सिर रख दिया। उसकी आँखों से श्रद्धा और आनन्द के आँसू बहने लगे। मुँशीजी ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और दोनों प्राणियों को वेटिंग रूम में बैठाकर बोले—किसी को अन्दर मत आने देना। मैंने साहब से कह दिया है। मैं कोई घण्टे-भर में आऊँगा।

चक्रधर ने दबी जबान से कहा—इस वक्त धूमधाम करने की जरूरत नहीं। सवेरे तो सब को मालूम हो ही जायगा।

मुँशीजी ने लकड़ी सँभालते हुए कहा—सुनती हो बहू, इनकी बातें ? सवेरे लोग जानकर क्या करेंगे ? दुनिया क्या जानेगी कि बहू कब आई ?

मुँशीजी चले गये, तो अहल्या ने चक्रधर को आड़े हाथों लिया बोली ऐसे देवता-पुरुष के साथ तुम अकारण ही कितना अनर्थ कर रहे

थे मेरा तो जी चाहता था कि घण्टों उनके चरणों पर पड़ी हुई रोया करूँ

चक्रधर लज्जित हो गये इसका प्रतिवाद तो न किया पर उनका मन कह रहा था कि इस वक्त दुनिया को दिखाने के लिए पिताजी कितनी ही धूम-धाम क्यों न कर ले, घर में कोई-न-कोई गुल खिलेगा जरूर।

मुँशीजी को गये अभी आधा घण्टा भी न हुआ था कि मनोरमा कमरे के द्वार पर आकर खड़ी दिखायी दी।

उसने कहा—वाह बाबूजी, आप चुपके-चुपके बहू को उड़ा लाये और मुझे खबर तक न दी! मुँशीजी न कहते, तो मुझे मालूम ही न होता आपने तो अपना घर बसाया, मेरे लिए भी कोई सौगात लाये?

यह कहकर वह अहल्या के पास गयी और दोनो गले मिली। मनोरमा ने रूमाल से एक जड़ाऊँ कगन निकालकर अहल्या के हाथ में पहना दिया। अहल्या ने उसे कुर्सी पर बिठा दिया और पान-इलायची देते हुए बोली—आपको मेरे कारण बड़ी तकलीफ हुई। यह आपके आराम करने का समय था।

चक्रधर मौका देखकर बाहर चले गये थे। उनके रहने से दोनों ही में संकोच होता।

मनोरमा ने कहा—नहीं बहन, मुझे जरा भी तकलीफ नही हुई। मैं तो यों भी बारह एक के पहले नही सोती। तुमसे मिलने की बहुत दिनो से इच्छा थी। तुम बड़ी भाग्यवान हो, तुम्हारा पति मनुष्य में रत्न है, सर्वथा निर्दोष एवम् सर्वथा निष्कलंक।

अहल्या पति प्रशसा से गर्वोन्नत होकर बोली—आपके लिए कोई सौगात तो नही लाये!

मनोरमा—मेरे लिए तुमसे बढकर और क्या सौगात लाते। मैं ससार में अकेली थी। तुम्हें पाकर दुकेली हो जाऊँगी।

अहल्या—मै इसे अपना सौभाग्य समझूँगी।

इतने में बाजो की धों-धों पों-पों सुनायी दी। मुँशीजी बरात जमाये चले आ रहे थे।

अहल्या के हृदय में आनन्द की तरंगे उठ रही थीं। कभी उसका स्वागत इस ठाठ से होगा, कभी एक बड़ी रानी उसकी सहेली बनेगी, कभी उसका इतना आदर-सम्मान होगा, उसने कल्पना भी न की थी।

मनोरमा ने उसे धीरे-धीरे ले जाकर सुखपाल में बिठा दिया। बरात चली चक्रधर एक सुरग घोड़ पर सवार थे

राजा साहब विशालपुर आते; तो इस तरह भागते, मानो किसी शत्रु के घर आए हों। रोहिणी को राजा साहब की यह निष्ठुरता असह्य मालूम होती थी। वह उन पर दिल का गुबार निकालने के लिए अवसर ढूँढती रहती थी; पर राजा साहब भूलकर भी अन्दर न आते थे। आखिर एक दिन वह मनोरमा पर ही पिल पड़ी। बात कोई न थी! मनोरमा ने सरल भाव से कहा—यहाँ आप लोगों का जीवन बड़ी शान्ति से कटता होगा। शहर में तो रोज एक-न-एक झंझट सिर पर सवार रहता है।

रोहिणी तो भरी बैठी ही थी। ऐंठकर बोली—हाँ बहन, क्यों न हो! ऐसे प्राणी भी होते है, जिन्हें पड़ोसी के उपवास देखकर जलन होती है। तुम्हे पकवान बुरे मालूम होते हैं, हम अभागिनो के लिए सत्तू में भी बाधा।

मनोरमा ने फिर उसी सरल भाव से कहा—अगर तुम्हें वहाँ सुख-ही-सुख मालूम होता है, तो चली क्यों नही आतीं? अकेले मेरा भी जी घबराया करता है। तुम रहोगी, तो मजे से दिन कट जायगा।

रोहिणी नाक सिकोड़कर बोली—भला, मुझमें वह हाव-भाव कहाँ है कि इधर राजा साहब को मुट्ठी में किये रहूँ, उधर हाकिमों को मिलाये रखूँ। यह तो कुछ लिखी-पढी, शहरवालियों को ही आता है, हम गंवारिनें यह त्रियाचरित्र क्या जानें।

मनोरमा खड़ी सन्न रह गयी। ऐसा मालूम हुआ कि ज्वाला पैरों से उठी और सिर से निकल गयी। वह दस-बारह मिनट तक इसी भाँति स्तम्भित खड़ी रही। राजा साहब मोटर के पास खड़े उसकी राह देख रहे थे। जब उसे देर हुई तो स्वयं अन्दर आये। दूर ही से पुकारा—नोरा, क्या कर रही हो? चलो, देर हो रही है। मनोरमा ने इसका कुछ जवाब न दिया। तब राजा साहब ने मनोरमा के पास आकर हाथ पकड़ लिया और कुछ कहना ही चाहते थे कि उसका चेहरा देखकर चौंक पड़े वह सर्प-

दशित मनुष्य की भाँति निनिमेष नेत्रों से दीवार की ओर टकटकी लगाये ताक रही थी मानो आँखो की राह प्राण निकल रहे हो

राजा साहब ने घबराकर पूछा—नोरा, कैसी तबीयत है ?

मनोरमा ने सिसकते हुए कहा—अब मैं यही रहूँगी; आप जाइए। मेरी चीजे यही भिजवा दीजिएगा।

राजा साहब समझ गये कि रोहिणी ने अवश्य कोई व्यंग्य-शर चलाया है। उसकी ओर लाल आँखे करके बोले—तुम्हारे कारण यहाँ से जान लेकर भागा, फिर भी तुम पीछे पड़ी हुई हो। वहाँ भी शाँत नही रहने देती। मेरी खुशी है, जिससे जी चाहता है, बोलता हूँ; जिससे जी नही चाहता, नही बोलता। तुम्हे इसकी जलन क्यो होती है ?

रोहिणी—जलन होगी मेरी बला को। तुम यहाँ ही थे, तो कौन-सा फू ो की सेज पर सुला दिया था। यहाँ तो 'जैसे कन्ता घर रहे, वैसे रहे विदेश।' भाग्य में रोना बदा था, रोती हूँ।

राजा साहब का क्रोध बढता जाता था, पर मनोरमा के सामने वह अपना पैशाचिक रूप दिखाते हुए शर्माते थे। वह कोई लगती हुई बात कहना चाहते थे, जो रोहिणी की जबान बन्द कर दे, वह अवाक् रह जाय। मनोरमा को कटु वचन सुनाने के दण्डस्वरूप रोहिणी को कितनी ही कड़ी बात क्यों न कही जाय, वह क्षम्य थी। बोले—तुम्हें तो जहर खाकर मर जाना जाहिए। कम-से-कम तुम्हारी ये जली-कटी बातें तो न सुनने में आयेंगी।

रोहिणी ने आग्नेय नेत्रों से राजा साहब की ओर देखा, मानो वह उसकी ज्वाला से उन्हें भस्म कर देगी, मानो उसके शरों से उन्हें बेध डालेगी, और लपककर पानदान को ठुकराती, लोटे का पानी गिराती, वहाँ से चली गयी।

राजा साहब बहुत देर तक समझाया किये, पर मनोरमा ने एक न मानी। उसे शंका हुई कि ये भाव केवल रोहिणी के नही हैं, यहा सभी लोगों के मन में यही भाव होंगे। इस सन्देह और लांछन का निवारण यहाँ सबके सम्मुख रहने से ही हो सकता था और यही उसके सकल्प का कारण था। अन्त में राजा साहब ने हताश होकर कहा—तो फिर मैं भी काशी छोड़े देता हूँ। मुझसे अकेले वहाँ एक दिन भी न रहा जायगा।

एकाएक मुंशी वज्रधर लाठी टेकते आते दिखायी दिये। चेहरा उतरा हुआ था पाजामे का नीचे हुआ आँगन में खड़े होकर

बोल रानीजी आप कहा है ? जरा कृपा करके यहा आइएगा या हुक्म हो मैं ही आऊ

राजा साहब ने चिढकर कहा क्या है, यही चले आइए आपको इस वक्त आने की क्या जरूरत थी ? सब लोग यही चले आये, कोई वहाँ भी तो चाहिए।

मुंशीजी कमरे में आकर बड़े दीन भाव से बोले—क्या करूँ; हुजूर, घर तबाह हुआ जा रहा है। हुजूर से न रोऊँ, तो किससे रोऊँ! लल्लू न जाने क्या करने पर तुला है।

मनोरमा ने सशंक होकर पूछा—क्या बात है, मुँशीजी ? अभी तो आज बाबूजी वहाँ मेरे पास आये थे, कोई भी नयी बात नही कही।

मुँशी—वह अपनी बात किसी से कहता है कि आप से कहेगा। मुझसे भी कभी कुछ नहीं कहा, लेकिन आज प्रयाग जाने को तैयार बैठा हुआ है। बहू को भी साथ लिये जाता है।

मनोरमा—आपने पूछा नही कि क्यों जा रहे हो ? जरूर उन्हें किसी बात से रंज पहुँचा होगा नही तो बहू को लेकर न जाते। घर में किसी ने ताना तो नहीं मारा ?

मुंशी—इल्म की कसम खाकर कहता हूँ, जो किसी ने चूँ तक की हो। ताना उसे दिया जाता है, जो टर्राये। वह तो सेवा और शील की देवी है; उसे कौन ताना दे सकता है ? हाँ, इतना जरूर है कि की हम दोनों आदमी उसका छुआ नही खाते ?

मनोरमा ने सिर हिलाकर कहा—अच्छा, यह बात है! भला, बाबूजी यह कब बर्दाश्त करने लगे। मैं अहल्या की जगह होती, तो उस घर में एक क्षण भी न रहती। वह न-जाने कैसे इतने दिन तक रह गयी।

मुँशी—आप जरा चलकर उसे समझा दें। मुझ पर इतनी दया करें। सनतान से जिन बातों को मानते आये है, वे अब छोड़ी नही जाती।

मनोरमा—तो न छोड़िए, आपको कोई मजबूर नही करता। आपको अपना धर्म प्यारा है और होना भी चाहिए। उन्हें भी अपना सम्मान प्यारा है और होना चाहिए। मैं जैसे आपको बहू के हाथ का भोजन ग्रहण करने को मजबूर नहीं कर सकती उस भाँति उन्हें भी यह अपमान सहने के लिए नही दबा सकती आप जानें और वह जानें मझ बीच में न

मुंशीजी बड़ी आशा बाँधकर यहाँ दौड़ आये थे यह फैसला सुना तो कमर टूट-सी गयी। फर्श पर बैठ गये और अनाथ भाव से माथे पर हाथ रखकर सोचने लगे—अब क्या करूँ ?

मनोरमा वहाँ से चली गयी। अभी उसे अपने लिए कोई स्थान ठीक करना था, शहर से अपनी आवश्यक वस्तुएँ मंगवानी थी।

रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी, पर मनोरमा की आँखों में नींद न आयी थी। उसे ख्याल आया कि चक्रधर बिलकुल खाली हाथ हैं। पत्नी साथ, खाली हाथ, नयी जगह, न किसी से राह, न रस्म, संकोची प्रकृति, उदार-हृदय, उन्हें प्रयाग में कितना कष्ट होगा ? मैंने बड़ी भूल की। मुंशीजी के साथ मुझे चली जाना चाहिए था। बाबूजी मेरा इन्तजार कर रहे होंगे।

उसने घड़ी की ओर देखा। एक बज गया था। उसके मन में प्रश्न उठा—क्यों न इसी वक्त चलूँ ? घण्टे-भर में पहुँच जाऊँगी।

लेकिन फिर ख्याल आया, इस वक्त जाऊँगी, तो लोग क्या कहेंगे। वह फिर आकर लेट रही और सो जाने की चेष्टा करने लगी। उसे नींद आ गयी। लेकिन देर से सोकर भी मनोरमा को उठने में देर नहीं लगी। अभी सब लोग सोते ही थे कि वह उठ बैठी और तुरंत मोटर तैयार करने का हुक्म दिया। फिर अपने हैंडबेग में कुछ चीजें रखकर वह रवाना हो गयी।

चक्रधर भी प्रातःकाल उठे और चलने की तैयारियाँ करने लगे। उन्हें माता-पिता को छोड़कर जाने का दुःख हो रहा था, पर उस घर में अहल्या की जो दशा थी, वह उनके लिए असह्य थी। गाड़ी सात बजे छूटती थी। वह अपना बिस्तर और पुस्तकें बाहर निकाल रहे थे। भीतर अहल्या अपनी सास और ननद के गले मिलकर रो रही थी, कि इतने में मनोरमा की मोटर आती हुई दिखायी दी। चक्रधर मारे शर्म के गड़ गये।

मनोरमा ने मोटर से उतरते हुए कहा—बाबूजी, अभी जरा ठहर जाइए। यह उतावली क्यों ? जब तक मुझे मालूम न हो जायेगा कि आप किस कारण से और वहाँ क्या करने के इरादे से जाते हैं मैं आपको न जाने दूंगी।

मनोरमा तो सुनिये मुझे आपके घर की दशा थोड़ी बहुत मालूम है ये लोग अपने संस्कारों से मजबूर हैं न तो आप ही उन्हें दबाना पसन्द करेंगे क्यों न अहल्या को कुछ दिनों के लिए मेरे साथ रहने दें ? मैंने जगदीशपुर में ही रहने का निश्चय किया है। आप वहाँ रह सकते हैं। मेरी बहुत दिनों से इच्छा है कि कुछ दिन आप मेरे मेहमान हों। वह भी तो आप ही का घर है। मैं इसे अपना सौभाग्य समझूँगी।

चक्रधर—नहीं मनोरमा मुझे जाने दो।

मनोरमा—अच्छी बात है, जाइए, लेकिन एक बात आपको माननी पड़ेगी। मेरी यह भेंट स्वीकार कीजिए।

यह कहकर उसने अपना हैंडबेग चक्रधर की तरफ बढ़ाया।

चक्रधर—अगर न लूँ तो ?

मनोरमा—तो अपने हाथों से आपका बोरिया-बंधना उठाकर घर में रख आऊँगी।

चक्रधर—आपको इतना कष्ट उठाना पड़ेगा। मैं इसे लिये लेता हूँ। शायद वहाँ भी मुझे कोई काम करने की जरूरत न पड़ेगी। इस बेग का वजन ही बतला रहा है।

मनोरमा घर में गयी, तो निर्मला बोली—माना कि नहीं, बेटी ?

मनोरमा—नहीं मानते। मनाकर हार गयी।

मुँशी—जब आपके कहने से न माना तो फिर किसके कहने से मानेगा ?

तांगा आ गया। चक्रधर और अहल्या उस पर जा बैठे, तो मनोरमा भी अपनी मोटर पर बैठकर चली गयी। घर के बाकी तीनों प्राणी द्वार पर खड़े रह गये।

१८

सार्वजनिक काम करने के लिए कहीं भी क्षेत्र की कमी नहीं, केवल मन में नि स्वार्थ सेवा का भाव होना चाहिए। चक्रधर प्रयाग में अभी अच्छी तरह जमने भी न पाये थे कि चारों ओर से उनके लिए खींचतान होने लगी। थोड़े ही दिन में वह नेताओं की श्रेणी में आ गये। उनमें देश का अनुराग था, काम करने का उत्साह था और सगठन करने की योग्यता थी। सारे शहर में एक भी ऐसा प्राणी न था, जो उनकी भाँति निस्पृह हो। और लोग अपना फालतू समय ही सेवाकार्य के लिए दे सकते थे। द्रव्योपार्जन उनका मुख्य उद्देश्य था। चक्रधर के लिए इस काम के सिवा और कोई फिक्र न थी। उन्होंने शहर के निकास पर एक छोटा-सा मकान किराये पर ले लिया था और बड़ी किफायत से गुजर करते थे। वहां रुपये का नित्य अभाव रहता था। चक्रधर को अब ज्ञात होने लगा कि गृहस्थी में पड़कर कुछ-न-कुछ स्थायी आमदनी होनी ही चाहिए। अपने लिए उन्हें कोई चिन्ता न थी; लेकिन अहल्या को वह दरिद्रता की परीक्षा में डालना न चाहते थे।

अगर चक्रधर को अपना ही खर्च संभालना होता, तो शायद उन्हें बहुत कष्ट न होता; क्योंकि उनके लेख बहुत अच्छे होते थे और दो-तीन समाचार-पत्रों में लिख कर वह अपनी जरूरत भर को पैदा कर लेते थे। पर मुँशी वज्रधर के तकाजों के मारे उनकी नाक में दम था। चक्रधर को बार-बार तग करते, और उन्हें विवश होकर पिता की सहायता करनी पड़ती।

अगहन का महीना था। खासी सरदी पड़ रही थी; मगर अभी तक चक्रधर जाड़े के कपड़े न बनवा पाये थे। अहल्या के पास तो पुराने कपड़े थे, पर चक्रधर के पुराने कपड़े मुंशीजी के मारे बचने ही न पाते। या तो खुद पहन डालते या किसी को दे देते। वह इसी फिक्र में थे कि कहीं से रुपये आ जायें तो एक कम्बल ले लूं आज बड़े   के बाद

के एक मासिक-पत्र के कार्यालय से २५) का मनीआर्डर आया था और वह अहल्या के पास बैठे हुए कपड़ों का प्रोग्राम बना रहे थे।

इतने में डाकिए ने पुकारा। चक्रधर ने जाकर खत ले लिया और उसे पढ़ते हुए अन्दर आये। अहल्या ने पूछा—लालाजी का खत है न? लोग अच्छी तरह है न?

चक्रधर—मेरे आते ही न-जाने उन लोगों पर क्या साढ़ेसाती सवार हो गयी है कि जब देखो, एक-न-एक विपत्ति सवार ही रहती है। अभी मंगला बीमार थी, अब अम्माँ बीमार है। बाबूजी को खाँसी आ रही है। रानी साहबा के यहाँ से अब वजीफा नहीं मिलता है। लिखा है कि इस वक्त ५०) अवश्य भेजो।

अहल्या—क्या अम्माँजी बहुत बीमार हैं?

चक्रधर—हाँ, लिखा तो है।

अहल्या—तो जाकर देख ही क्यों न आओ?

चक्रधर—मुझे बाबूजी पर बड़ा क्रोध आता है। व्यर्थ मुझे तंग करते हैं। अम्माँ की बीमारी तो बहाना है, सरासर बहाना।

अहल्या—यह बहाना हो या सच हो, ये पचीसों रुपए भेज दो। बाकी के लिए लिख दो कोई फिक्र करके जल्द ही भेज दूँगा। तुम्हारी तकदीर में इस साल जड़ावल नहीं लिखा है।

पूस का महीना लग गया। जोरों की सरदी पड़ने लगी। स्नान करने समय ऐसा मालूम होता था कि पानी काट खाएगा, पर अभी तक चक्रधर जड़ावल न बनवा सके। एक दिन बादल हो आये और ठण्डी हवा चलने लगी। सरदी के मारे चक्रधर को नींद न आती थी, एक बार उन्होंने अहल्या की ओर देखा। वह हाथ-पाँव सिकोड़े, चादर सिर से ओढ़े एक गठरी की तरह पड़ी हुई थी। उसका स्नेह-करुण हृदय रो पड़ा। उनकी अन्तरात्मा सहस्रों जिह्वाओं से उनका तिरस्कार करने लगी। तेरी लोक-सेवा केवल भ्रम है; कोरा प्रमाद। जब तू इस रमणी की रक्षा नहीं कर सकता, जो तुझ पर अपने प्राण तक अर्पण कर सकती है, तो तू जनता का उपकार क्या करेगा?

दूसरे दिन वह नाश्ता करते ही कहीं बाहर न गये; बल्कि अपने कमरे में जाकर कुछ लिखते-पढ़ते रहे। शाम को सात बजते-बजते वह फिर लौट आये और दस बजे तक कुछ लिखते रहे आज से यही उनका नियम हो

गया नाकरो ता वह कर न सकते थे चित्त को इससे घृणा होती थी लेकिन अधिकाश समय पुस्तक और लेख लिखने मे बिताते उनकी विद्या और बुद्धि अब सेवा के अधीन नही स्वार्थ के अधीन हो गयी पहले ऊपर की खेती करते थे, जहा न धन था, न कीर्ति। अब धन भी मिलता था और कीर्ति भी। पत्रों के सम्पादक उनसे आग्रह करके उनसे लेख लिखवाते थे। लोग इन लेखों को बडे चाव से पढते थे। भाषा भी अलंकृत होती थी, भाव भी सुन्दर, विषय भी उपयुक्त। दर्शन से उन्हे विशेप रुचि थी। उनके लेख भी अधिकांश दार्शनिक होते थे।

पर चक्रधर को अब अपने कृत्यों पर गर्व न था। उन्हें काफी धन मिलता था। योरप और अमेरिका के पत्रो मैं भी उनके लेख छपते थे। समाज में उनका आदर भी कम न था; पर सेवा-कार्य में जो सन्तोप और शाति मिलती थी वह अब मयस्सर न थी। अपने दीन, दुखी एव पीडित बन्धुओं की सेवा करने में जो गौरव-युक्त आनन्द मिलता था, वह अब सभ्य समाज की दावतों में न प्राप्त होता था। मगर अहल्या सुखी थी। वह अब सरल बालिका नहीं, गौरवशील युवती थी—गृह प्रबन्ध में कुशल, पति सेवा में प्रवीरण, उदार, दयालु और नीति-चतुर। मजाल न थी कि नौकर उसकी आँख बचाकर एक पैसा भी खा जाय। उसकी सभी अभिलाषाएँ पूरी होती जाती थी। ईश्वर ने उसे एक सुन्दर बालक भी दे दिया। रही-सही कसर भी पूरी हो गयी।

इस प्रकार पाँच साल गुजर गये।

एक दिन काशी से राजा विशालसिंह का तार आया। लिखा था—"मनोरमा बहुत बीमार है। तुरन्त आइए। बचने की कम आशा है।"

अहल्या—यह हो क्या गया है ? अभी तो लालाजी ने लिखा था कि यहाँ सब कुशल है।

चक्रधर—क्या कहा जाय ? कुछ नहीं, यह सब गृह-कलह का फल है। मनोरमा ने राजा साहब से विवाह करके बड़ी भूल की। सौतों ने तानो से छेद-छेदकर उनकी जान ले ली।

अहल्या—कहो तो मैं भी चलूँ ? देखने को जी चाहता है, उनका शील और स्नेह कभी न भूलेगा।

चक्रधर—योगेन्द्र बाबू को साथ लेते चलें। इनसे अच्छा तो यहाँ और कोई नहीं है

दस बजते-बजते वे लोग यहाँ से डाक पर चले। अहल्या खिड़की से

पावस का मनोहर दृश्य देखता थो चक्रधर व्यग्र हो होकर घड़ी देखते थे कि पहुँचने मे कितनी देर है और मुन्नू खिडकी से कूद पडने के लिए जोर लगा रहा था।

चक्रधर जगदीशपुर पहुँचे, तो रात के आठ बज गए। राजभवन के द्वार पर हजारों आदमियों की भीड थी। अन्न-दान किया जा रहा था। और कंगले एक-पर-एक टूट पड़ते थे।

सहसा मोटर की आवाज सुनकर मुंशी वज्रधर ने बाहर आकर देखा, तो भीड को हटाकर दौड़े और चक्रधर को गले लगा लिया।

अहल्या पति के पीछे खड़ी थी। मुन्नू उसकी गोद में बैठा बड़े कुतूहल से दोनों आदमियों का रोना देख रहा था।

अभी दोनों आदमियों में कोई बात न होने पायी थी कि राजा साहब दौडते हुए भीतर से आते दिखायी दिये। सूरत से नैराश्य और चिंता झलक रही थी। शरीर भी दुर्बल था। आते-ही-आते उन्होने चक्रधर को गले से लगाकर पूछा—मेरा तार कब मिल गया था।

चक्रधर—कोई आठ बजे मिला होगा। पढ़ते ही मेरे होश उड़ गये। रानीजी की क्या हालत है ?

राजा—वह तो अपनी आँखों से देखोगे, मैं क्या कहूँ। भगवान् ही का भरोसा है। आह ! यह शंखधर महाशय हैं।

यह कहकर उन्होने बालक को गोद मे ले लिया और स्नेहपूर्ण नेत्रो से देखकर बोले—मेरी सुखदा बिलकुल ऐसी ही थी। ऐसा जान पड़ता है, यह उसका छोटा भाई है। उसकी सूरत अभी तक मेरी आँखों में है। मुख से बिलकुल ऐसी ही थी।

अन्दर जाकर चक्रधर ने मनोरमा को देखा। वह मोटे गद्दों में ऐसी समा गयी थी कि मालूम होता था कि पलंग खाली है, केवल चादर पड़ी हुई है। चक्रधर की आहट पाकर उसने मुँह चादर से निकाला। दीपक के क्षीण प्रकाश में किसी दुर्बल की आह असहाय नेत्रों से आकाश की ओर ताक रही थी !

राजा साहब ने आहिस्ता से कहा—नोरा, तुम्हारे बाबूजी आ गए।

मनोरमा ने तकिये का सहारा लेकर कहा—मेरे धन्य भाग ! आइए बाबूजी आपके दर्शन भी हो गए तार न जाता तो आप क्यो आते ?

चक्रधर मुझे तो बिलकुल खबर ही न थी। तार पहुँचने पर हाल मालूम हुआ।

मनोरमा बालक को देखकर) अच्छा अहल्यादेवी भी आयी हैं? जरा यहाँ तो लाना, अहल्या! इसे छाती से लगा लूँ।

राजा—इसकी सूरत सुखदा से बहुत मिलती है, नोरा! बिल्कुल उसका छोटा भाई मालूम होता है।

'सुखदा' का नाम सुनकर अहल्या पहले भी चौंकी थी। अब की वही शब्द सुनकर फिर चौंकी! बाल-स्मृति किसी भूले हुए स्वप्न की भाँति चेतना क्षेत्र में आ गयी। उसने घुँघट की आड़ से राजा साहब की ओर देखा। उसे अपने स्मृति-पट पर ऐसा ही आकार खिंचा हुआ मालूम पड़ा।

बालक को स्पर्श करते ही मनोरमा के जर्जर शरीर में एक स्फूर्ति-सी दौड़ गयी। मानो किसी ने बुझते हुए दीपक की बत्ती उकसा दी हो। बालक को छाती से लगाये हुए उसे अपूर्व आनन्द मिल रहा था, मानो बरसों के तृषित कण्ठ को शीतल जल मिल गया हो, और उसकी प्यास न बुझती हो। वह बालक को लिए हुए बैठी और बोली—अहल्या, मैं अब यह लाल तुम्हें न दूँगी। यह मेरा है। तुमने इतने दिनों तक मेरी सुध न ली, यह उसी की सजा है।

राजा साहब ने मनोरमा को सँभालकर कहा—लेट जाओ। देह में हवा लग रही है। क्या करती हो····

किन्तु मनोरमा बालक को लिए हुए कमरे के बाहर निकल गयी। राजा साहब भी उसके पीछे-पीछे दौड़े कि कहीं वह गिर न पड़े। कमरे में केवल चक्रधर और अहल्या रह गए। अहल्या धीरे से बोली—मुझे अब याद आ रहा है कि मेरा नाम सुखदा था। जब मैं बहुत छोटी थी, तो मुझे लोग सुखदा कहते थे।

चक्रधर ने कहा—चुपचाप बैठो, तुम इतनी भाग्यवान नहीं हो। राजा साहब की सुखदा कहीं खोयी नहीं, मर गयी होगी।

राजा साहब इसी वक्त बालक को गोद में लिए मनोरमा के साथ कमरे में आए। चक्रधर के अन्तिम शब्द उनके कान में पड़ गए। बोले—नहीं बाबूजी, मेरी सुखदा मरी, नहीं, त्रिवेणी के मेले में गयी थी। आज बीस साल हुए, जब मैं पत्नी के साथ त्रिवेणी स्नान करने प्रयाग गया था वहीं सुखदा खो गयी थी उसकी उम्र कोई चार साल की रही होगी।

बहुत ढूँढा पर कुछ पता न चला उसकी माता उसके वियोग में स्वर्ग सिधारी मैं भी बरसों तक पागल बना रहा अन्त में सब्र करके बैठ रहा

अहल्या ने सामने आकर निस्संकोच भाव से कहा—मैं भी तो त्रिवेणी के स्नान में खो गयी थी। आगरा की सेवा-समिति वालों ने मुझे कहीं रोते पाया, और मुझे आगरे ले गये। बाबू यशोदानन्दन ने मेरा पालन-पोषण किया।

राजा—तुम्हारी क्या उम्र होगी, बेटी ?

अहल्या—चौबीसवाँ लगा है।

राजा तुम्हें अपने घर की कुछ याद है ? तुम्हारे द्वार पर किस चीज का पेड़ था।

अहल्या—शायद बरगद का पेड़ था। मुझे याद आता है कि मैं उसके गोदे चुनकर खाया करती थी।

राजा—अच्छा, तुम्हारी माता कैसी थीं ? कुछ याद आता है ?

अहल्या—हाँ, याद क्यों नही आता ! उनका साँवला रंग था, दुबली-पतली, लेकिन बहुत लम्बी थीं। दिन-भर पान खाती रहती थी।

राजा—घर में कौन-कौन लोग थे ?

अहल्या—मेरी एक बुढ़िया दादी थी, जो मुझे गोद में लेकर कहानी सुनाया करती थीं। एक बूढ़ा नौकर था, जिसके कन्धे पर मैं रोज सवार हुआ करती थी। द्वार पर एक बडा-सा घोड़ा बँधा रहता था। मेरे द्वार पर एक कुआँ था और पिछवाड़े एक बुढ़िया चमारिन का मकान था।

राजा ने सजल नेत्र होकर कहा—बस-बस, बेटी आ; तुझे छाती से लगा लूँ। तू ही मेरी सुखदा है। मैं बालक को देखते ही ताड़ गया था। मेरी सुखदा मिल गयी ! मेरी सुखदा मिल गयी !

चक्रधर—अभी शोर न कीजिए। सम्भव है कि आपको भ्रम हो रहा हो।

राजा—जरा भी नहीं, जो-भर भी नहीं, मेरी सुखदा यही है। इसने जितनी बातें बतायी, सभी ठीक है। मुझे लेश-मात्र भी सन्देह नहीं। आह ! आज तेरी माता होती, तो उसे कितना आनन्द होता। क्या लीला है भगवान् की ! मेरी सुखदा घर बैठे मेरी गोद में आ गयी। जरा-सी गयी थी, बडी-सी आयी। अरे ! मेरा शोक-सन्ताप हरने को एक नन्हा-मुन्ना

बालक भी लाया आओ भया चक्रधर तुम्हे छाती से लगा लूँ आज तक तुम मेरे मित्र थे अब मेरे पुत्र हो याद है मैने तुम्हे जेल भिजवाया था ? नोरा, ईश्वर की लीला देखी ? सुखदा घर मे थी और मै उसके नाम को रो बैठा—अब मेरी अभिलाषा पूरी हो गयी। जिस बात की आशा तक मिट गयी थी, वह आज पूरी हो गयी।

यह कहते हुए राजा साहब उसी आवेश में दीवानखाने में जा पहुँचे। द्वार पर अभी तक कगालो की भीड लगी हुई थी। दो-चार अमले अभी तक बैठे दफ्तर में काम कर रहे थे। राजा साहब ने बालक को कन्धे पर बिठाकर उच्च-स्वर से कहा—मित्रो ! यह देखो; ईश्वर की असीम कृपा से मेरा निवासा घर-बैठे मेरे पास आ गया। तुम लोग जानते हो कि बीस साल हुए, मेरी पुत्री सुखदा त्रिवेणी के स्नान में खो गयी थी ? वही सुखदा आज मुझे मिल गयी है और यह बालक उसी का पुत्र है। आज से तुम लोग इसे अपना युवराज समझो। मेरे बाद यही मेरी रियासत का स्वामी होगा। गारद से कह दो, अपने युवराज को सलामी दे। नौबतखाने में कह दो, नौबत बजे ! आज के सातवे दिन राजकुमार का अभिषेक होगा। अभी से उसकी तैयारी शुरू करो।

यह हुक्म देकर राजा साहब बालक को गोद में लिये ठाकुरद्वारे में जा पहुँचे। वहाँ इस समय ठाकुरजी के भोग की तैयारियाँ हो रही थी। साधुसन्तो की मण्डली जमा थी।

पुजारीजी ने कहा—भगवान् राजकुँवर को चिरंजीव करें !

राजा ने अपनी हीरे की अँगूठी उसे दे दी। एक बाबाजी को इसी आशीर्वाद के लिए १०० बीघे जमीन मिल गयी।

ठाकुरद्वारे से जब वह घर में आये, तो देखा कि चक्रधर आसन पर बैठे भोजन कर रहे है, और मनोरमा सामने खड़ी खाना परस रही है। उसके मुखमण्डल पर हार्दिक उल्लास की कान्ति झलक रही थी। कोई यह अनुमान ही न कर सकता था कि यह वही मनोरमा है, जो अभी दस मिनट पहले मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई थी।

१६

राजा विशालसिंह ने इधर कई साल से राज-काज छोड-सा रखा था। मुँशी वज्रधर और दीवान साहब की चढ बनी थी। प्रजा के सुख-दु ख की चिन्ता अगर किसी को थी, तो वह मनोरमा थी। राजा साहब के सत्य और न्याय का उत्साह ठण्डा पड़ गया था। मनोरमा को पाकर उन्हे किसी चीज की सुधि न थी।

लेकिन इस बालक ने आकर राजा साहब के जीवन में एक नवीन उत्साह का संचार कर दिया। अब तक उनके जीवन का कोई लक्ष्य न था। मन में प्रश्न होता था, किसके लिए करूँ ? अब जीवन का लक्ष्य मिल गया था। फिर वह राज-काज से क्यों विरक्त रहते ? मुँशीजी अब तक तो दीवान साहब से मिलकर अपना स्वार्थ साधते रहते थे; पर अब वह कब किसी को गिनने लगे थे ! ऐसा मालूम होता था कि अब वही राजा है। दीवान साहब अगर मनोरमा के पिता थे, तो मुँशीजी राजकुमार के दादा थे। फिर दोनो में कौन दबता ? कर्मचारियों पर कभी ऐसी फटकारे न पडी थीं। मुँशीजी को देखते ही बेचारे थर-थर काँपने लगते थे। अगर कोई अमला उनके हुक्म की तामील करने में देर करता, तो जामे से बाहर हो जाते। बात पीछे करते, निकालने की धमकी पहले देते।

सुनने वालों को ये बाते जरूर बुरी मालूम होती थी। चक्रधर के कानों में कभी ये बातें पड़ जातीं, तो वह जमीन में गड-से जाते थे। वह आजकल मुँशीजी से बहुत कम बोलते थे। अपने घर भी केवल एक बार गये थे। वहाँ माता की बाते सुनकर उनकी फिर आने की इच्छा न होती थी। मित्रों से मिलना-जुलना उन्होंने बहुत कम कर दिया था। वास्तव में यहां का जीवन उनके लिए असह्य हो गया था। वह फिर अपने शांति-कुटीर को लौट जाना चाहते थे। यहाँ आये दिन कोई-न-कोई बात हो ही जाती थी, जो दिन-भर उनके चित्त को व्यग्र रखने को काफी होती थी। कहीं कर्मचारियो में जूतो पैजार होती थी कही गरीब आसामियो पर डाँट

कहीं रानिवास में रगड़ झगड़ होती थी तो कहीं इलाके में दंगा फिसाद उन्हें स्वयं कभी कभी कर्मचारियों को तम्बीह करनी पड़ती इस बार उन्हें विवश होकर नौकरों को मारना भी पड़ा था सब मे कठिन समस्या यही थी कि उनके पुराने सिद्धान्त भंग होते चले जाते थे। वह बहुत चेष्टा करते थे कि मुँह से एक भी अशिष्ट शब्द न निकले, पर प्राय. नित्य ही ऐसे अवसर आ पड़ते कि उन्हें विवश होकर दण्ड-नीति का आश्रय लेना ही पड़ता था।

लेकिन अहल्या इस जीवन का चरम सुख भोग कर रही थी। बहुत दिनों तक दुःख झेलने के बाद उसे यह सुख मिला था और वह उनमें मग्न थी। अपने पुराने दिन उसे बहुत जल्द भूल गये थे और उनकी याद दिलाने से उसे दुःख होता था। उसका रहन-सहन बिल्कुल बदल गया था। वह अच्छी-खासी अमीरजादी बन गयी थी। सारे दिन आमोद-प्रमोद के सिवा उसे दूसरा काम न था।

अब चक्रधर अहल्या से अपने मन की बातें कभी न कहते थे। यह सम्पदा उनका सर्वनाश किये डालती थी। क्या अहल्या यह सुख-विलास छोड़कर मेरे साथ चलने पर राजी होगी? उन्हें शंका होती थी कि कहीं वह इस प्रस्ताव को हँसी में न उड़ा दे, या मुझे रुकने के लिए मजबूर न करे। इसी प्रकार के प्रश्न चक्रधर के मन में उठते रहते थे और वह किसी भाँति अपने कर्त्तव्य का निश्चय न कर सकते थे। केवल एक बात निश्चित थी—वह इन बन्धनों में पड़कर अपना जीवन नष्ट न करना चाहते थे, सम्पत्ति पर अपने सिद्धान्तों को भेंट न कर सकते थे।

एक दिन चक्रधर मोटर पर हवा खाने निकले। गरमी के दिन थे। जी बेचैन था? हवा लगी, तो देहात की तरफ जाने का जी चाहा। बढ़ते ही गये, यहाँ तक कि अँधेरा हो गया। शोफर को साथ न लिया था। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, सड़क खराब आती-जाती थी। सहसा उन्हें रास्ते में एक बड़ा साँड दिखायी दिया। उन्होंने बहुत शोर मचाया, पर साँड न हटा। जब समीप आने पर भी साँड राह में खड़ा ही रहा, तो उन्होंने कतराकर निकल जाना चाहा, पर साँड सिर झुकाये फों-फों करता फिर सामने आ खड़ा हुआ। चक्रधर छड़ी हाथ में लेकर उतरे कि उसे भगा दें, पर वह भागने के बदले उनके पीछे दौड़ा। कुशल यह हुई कि सड़क के किनारे एक पेड़ मिल गया। जी छोड़कर भागे और छड़ी फेंक, पेड़ की एक शाखा पकड़ कर लटक गये साँड एक मिनट तक तो पेड़ से टक्कर लेता रहा पर जब

चक्रधर न मिले तो वह मोटर के पास लौट गया और उसे सींगों से पीछे को ठेलता हुआ दौड़ा कुछ दूर के बाद मोटर सड़क से हटकर एक वृक्ष से टकरा गयी। अब साँड उठा उठाकर कितना ही जोर लगाता है पीछे हट-हटकर उसमें टक्कर मारता है, पर वह जगह से नहीं हिलती। तब उसने बगल में जाकर इतनी जोर से टक्कर लगायी कि मोटर उलट गयी। फिर भी साँड ने उसका पिंड न छोड़ा। कभी उसके पहियों से टक्कर लेता, कभी पीछे की तरफ जोर लगाता। मोटर के पहिये फट गये, कई पुरजे टूट गये; पर साँड बराबर उस पर आघात किये जाता था।

साँड ने जब देखा कि शत्रु की धज्जियाँ उड़ गयी और अब वह शायद फिर न उठे, तो डकारता हुआ एक तरफ को चला गया। तब चक्रधर नीचे उतरे और मोटर के समीप जाकर देखा, तो वह उलटी पड़ी हुई थी। जब तक सीधी न हो जाय, यह पता कैसे चले कि क्या-क्या चीजे टूट गयी है, और अब वह चलने योग्य है या नही। अकेले मोटर को सीधी करना एक आदमी का काम न था। पूर्व की ओर थोड़ी ही दूर पर एक गाँव था। चक्रधर उसी तरफ चले। वह बहुत छोटा-सा 'पुरवा' था। किसान लोग अभी थोड़ी ही देर पहले ऊख की सिंचाई करके आये थे। कोई बैलो को सानी-पानी दे रहा था, कोई खाने जा रहा था, कोई गाय दुह रहा था। सहसा चक्रधर ने जाकर पूछा—यह कौन गाँव है?

एक आदमी ने जवाब दिया—भैंसौर।

चक्रधर—किसका गाँव है?

किसान—महाराज का। कहाँ से आते हो?

चक्रधर—हम महाराज ही के यहाँ से आते है। वह बदमाश साँड किसका है, जो इस वक्त सड़क पर घूमा करता है?

किसान—यह तो नहीं जानते साहब; पर उसके मारे नाकोंदम है।

चक्रधर ने साँड के आक्रमण का जिक्र करके कहा—तुम लोग मेरे साथ चलकर मोटर उठा दो।

इस पर दूसरा किसान अपने द्वार पर बोला—सरकार, भला रात को मोटर उठाकर क्या कीजिएगा? वह चलने लायक तो होगी नहीं।

चक्रधर— तो तुम लोगों को उसे ठेलकर ले चलना पड़ेगा।

पहला किसान सरकार रात भर यही ठहरे सबेरे चलेंगे चलने लायक होगी तो गाड़ी पर लादकर पहुंचा देंगे

चक्रधर ने कहा कैसी बातें करते हो जी मै रात भर यहाँ पड़ा रहूँगा ! तुम लोगो को इसी वक्त चलना होगा।

चक्रधर को उन आदमियो में कोई न पहचानता था। समझे, राजाओं के यहाँ सभी तरह के लोग आते-जाते हैं, होंगे कोई। फिर वे सभी जाति के ठाकुर थे, और ठाकुर से सहायता के नाम से जो काम चाहे ले लो, बेगार के नाम से उनकी त्योरियाँ बदल जाती है। किसान ने कहा—साहब, इस बखत तो हमारा जाना न होगा। अगर बेगार चाहते हो, तो वह उत्तर की ओर दूसरा गाँव है, वहाँ चले जाइए। बहुत चमार मिल जायँगे।

यह कहकर वह घर में जाने लगा।

चक्रधर को ऐसा क्रोध आया कि उसका हाथ पकड़कर घसीट लूँ और ठोकर मारते हुए ले चलूँ, मगर उन्होंने जब्त करके कहा—मैं सीधे से कहता हूँ, तो तुम लोग उडनघाइयाँ बताते हो। अभी कोई चपरासी आकर दो घुड़कियाँ जमा देता, तो सारा गाँव भेड़ की भाँति उसके पीछे चला जाता।

किसान वहीं खड़ा हो गया और बोला—सिपाही क्यों घुड़कियाँ जमायेगा, कोई चोर हैं ? हमारी खुशी, नहीं जाते। आपको जो करना हो, कर लीजिएगा।

चक्रधर से जब्त न हो सका। छडी हाथ में थी ही। वह बाज की तरह किसान पर टूट पडे और एक धक्का देकर कहा—चलता है या जमाऊँ दो-चार हाथ ? तुम लात के आदमी बात से क्यों मानने लगे !

चक्रधर कसरती आदमी थे। किसान धक्का खाकर गिर पड़ा। यों वह भी करारा आदमी था। उलझ पडता, तो चक्रधर आसानी से उसे न गिरा सकते; पर वह रौब में आ गया। सोचा, कोई हाकिम है, नही तो उसकी हिम्मत न पडती कि हाथ उठाये। संभलकर उठने लगा। चक्रधर ने समझा, शायद यह उठकर मुझ पर वार करेगा। लपककर फिर एक धक्का दिया। सहसा सामने वाले घर में से एक आदमी लालटेन लिये बाहर निकल आया और चक्रधर को देखकर बोला—अरे भगतजी ! तुमने यह भेष कब से धारण किया ? मुझे पहचानते हो हम भी तुम्हारे साथ जेहल में थे

था चक्रधर का सारा क्रोध हवा हो गया। लजाते हुए बोले—क्या तुम्हारा घर इसी गाँव में है भला ?

धन्नासिंह—हाँ साहब, यह आदमी, जिसे आप ठोकरें मार रहे हैं, मेरा सगा भाई है। खाना खा रहा था। खाना छोड़कर जब तक उठूँ, तब तक तो गरमा ही गए। तुम्हारा मिजाज इतना कड़ा कब से हो गया ? कहाँ तो दारोगा को बचाने के लिए अपनी छाती पर सगीन रोक ली थी, कहाँ आज जरा-सी बात पर इतने तेज पड़ गए।

चक्रधर पर घड़ो पानी पड गया। वह अपनी सफाई में एक शब्द भी न बोल सके। उनके जीवन की सारी कमाई, जो उन्होंने न जाने कौन-कौन से कष्ट सहकर बटोरी थी, यहाँ लुट गयी :

धन्नासिंह ने अपने भाई का हाथ पकड़कर बैठाना चाहा, तो वह जोर से 'हाय ! हाय !' करके चिल्ला उठा। दूसरी बार गिरते समय उसका दाहिना हाथ उखड गया था। धन्नासिंह ने समझा उसका हाथ टूट गया है। चक्रधर के प्रति उसकी रही-सही भक्ति भी गायब हो गयी। उनकी ओर आरक्त नेत्रों से देखकर बोला—सरकार, आपने तो इसका हाथ ही तोड़ दिया। (ओठ चबाकर) क्या कहे, अपने द्वार पर आए हो और कुछ पुरानी बातों का ख्याल है, नही तो इस समय क्रोध तो ऐसा आ रहा है कि इसी तरह तुम्हारे हाथ भी तोड़ दूं। अभी जाकर महाराज के द्वार पर फरियाद करें, तो तुम खड़े-खड़े बँध जाओ। बाबू चक्रधरसिंह का नाम तो तुमने सुना ही होगा ? अब किसी सरकारी आदमी की मजाल नहीं कि बेगार ले सके, तुम बेचारे किस गिनती में हो ? तुम्हारे ही उपदेश से मेरी पुरानी आदत छूट गयी। गाँजा और चरस तभी से छोड़ दिया, जुए के नगीच नही जाता। जिस लाठी से सैकड़ों सिर फोड़ डाले होंगे, अब वह टूटी हुई पड़ी है। मुझे तो तुमने यह उपदेश दिया और आप लगे गरीबो को कुचलने। मन्नासिह ने इतना ही कहा था कि रात को यही ठहर जाओ, सबेरे हम चलकर तुम्हारी मोटर पहुँचा देगे। इसमे क्या बुराई थी ?

चक्रधर ने ग्लानि-वेदना से व्यथित स्वर में कहा—धन्नासिंह, मैं बहुत लज्जित हूं, मुझे क्षमा करो। जो दण्ड चाहो, दो; सिर झुकाये हुए हूँ; जरा भी सिर न हटाऊँगा, एक शब्द भी मुँह से न निकालूँगा।

यह कहते-कहते उनका गला फँस गया। धन्नासिंह भी गद्गद् हो गया बोला अरे भगतजी ऐसी बातें न कहो भैया भाई का नाता बड़ा

गहरा होता है भाई चाहे अपना शत्रु भी हो लेकिन कौन आदमी है जो भाई को मार खाते देखकर क्रोध को रोक सके ? मुझे अपना वैसा ही दास समझो जैसे जेहल में समझते थे। तुम्हारी मोटर कहाँ है ? चलो मैं उसे उठाये देता हूँ, या हुक्म हो तो गाड़ा जोत लूँ ?

चक्रधर ने रोककर कहा—जब तक इसका हाथ अच्छा न हो जाएगा, तब तक मैं कहीं न जाऊँगा, धन्नासिंह ! हाँ, कोई आदमी ऐसा मिले, जो यहाँ से जगदीशपुर जा सके, तो उसे मेरी एक चिट्ठी दे दो।

धन्नासिंह—जगदीशपुर में तुम्हारा कौन है, भैया ? क्या रियासत में नौकर हो गये हो ?

चक्रधर—नौकर नहीं हूँ। मैं मुंशी वज्रधर का लड़का हूँ।

धन्नासिंह ने विस्मित होकर कहा—सरकार ही बाबू चक्रधरसिंह है। धन्य भाग थे कि सरकार के आज दरसन हुए।

यह कहते हुए वह दौड़कर घर में गया और एक चारपाई लाकर द्वार पर डाल दी। फिर लपककर गाँव में खबर दे आया। एक क्षण में गाँव के सब आदमी आकर चक्रधर को नजरें देने लगे। चारों ओर हलचल सी मच गयी। सब-के-सब उनके यश गाने लगे। जब से सरकार आये है, हमारे दिन फिर गए है, आपका शील-स्वभाव जैसा सुनते थे, वैसा ही पाया। आप साक्षात् भगवान हैं।

धन्नासिंह ने कहा—मैंने तो पहचाना ही नहीं। क्रोध में न जाने क्या-क्या बक गया।

दूसरा ठाकुर बोला—सरकार अपने को खोल देते, तो हम मोटर को कन्धों पर लादकर ले चलते।

चक्रधर को इन ठकुरसुहाती बातों में जरा भी आनन्द न आता था। उन्हें उन पर दया आ रही थी। वही प्राणी, जिसे उन्होंने अपने कोप का लक्ष्य बनाया था, उनके शौर्य और शक्ति की प्रशंसा कर रहा था। अपमान को निगल जाना चरित्र-पतन की अन्तिम सीमा है। और यही खुशामद सुनकर हम लट्टू हो जाते है। जिस वस्तु से घृणा होनी चाहिए, उस पर हम फूले नहीं समाते। चक्रधर को अब आश्चर्य हो रहा था कि मुझे इतना क्रोध आया कैसे ? आज उन्हें अनुभव हुआ कि रियासत की बू कितनी गुप्त और अलक्षित-रूप से उनमे समाती जाती है। कितने गुप्त और अलक्षित रूप में उनकी मनुष्यता चरित्र और सिद्धान्त का ह्रास हो रहा है।

चक्रधर को रात भर नींद न आया उन्हे बार बार पश्चाताप होता था कि मै क्रोध के आवेग मे क्यो आ गया जीवन मे यह पहला ही अवसर था कि उन्होने एक निबल प्राणी पर हाथ उठाया था जिसका समस्त जीवन दीनजनो की सहायता मे गुजरा हो, उसकी यह कायापलट नैतिक पतन से कम न थी।

चक्रधर तो इस विचार में पडे हुए थे, और अहल्या अपने सजे हुए शयनागार में मखमली गद्दों पर लेटी अँगड़ाइयाँ ले रही थी। जब चक्रधर ने कमरे में कदम रखा तो अहल्या त्योरियाँ चढ़ाकर बोली—अब तो रात रात भर आपके दर्शन ही नही होते।

चक्रधर—कुछ तुम्हें खबर भी है। आध घण्टे तक जगाता रहा, जब तुम न जागी, तो चला गया। यहाँ आकर तुम सोने मे कुशल हो गयीं!

अहल्या—क्या मैं सचमुच बहुत सोती हूँ?

चक्रधर—अच्छा, अभी तुम्हें उसमें सन्देह भी है! घड़ी में देखो! आठ बज गये है। तुम पाँच बजे उठकर घर का धन्धा करने लगती थीं।

अहल्या- तब की बातें जाने तो। अब उतने सबेरे उठने की जरूरत ही क्या है?

चक्रधर—तो क्या तुम उम्र-भर यहाँ मेहमानी खाओगी?

अहल्या ने विस्मित होकर कहा—इसका क्या मतलब?

चक्रधर—इसका मतलब यही है कि हमें यहाँ आए हुए बहुत दिन गुजर गये। अब अपने घर चलना चाहिए।

अहल्या—अपना घर कहाँ है?

चक्रधर—अपना घर वहीं है, जहाँ अपने हाथों की कमाई है। ससुराल की रोटियाँ बहुत खा चुका। खाने में तो वह बहुत मीठी मालूम होती हैं, पर उनसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इतने ही दिनों में हम दोनों कुछ-के-कुछ हो गये। यहाँ कुछ दिन और रहा, तो कम-से-कम मैं तो कहीं का न रहूँगा। कल मैंने एक गरीब किसान को मारते-मारते अधमुआ कर दिया उसका कसूर केवल यह था कि वह मेरे साथ आने पर राजी न होता था।

हूँ मगर मुझे तो कभी यह खयाल ही नहीं आया कि घर छोड़कर भाग जाऊँ

चक्रधर—तुम्हारा घर है, तुम रह सकती हो, लेकिन मैंने तो जाने का निश्चय कर लिया।

अहल्या ने अभिमान से सिर उठाकर कहा—तुम न रहोगे, तो मुझे यहाँ रहकर क्या लेना है। मेरे राज-पाट तो तुम हो, जब तुम्हीं न रहोगे, तो अकेली पड़ी-पड़ी मैं क्या करूँगी? जब चाहे, चलो। हाँ, पिताजी से पूछ लो। उनसे बिना पूछे तो जाना उचित नहीं, मगर एक बात अवश्य कहूँगी। हम लोगों के जाते ही यहाँ का सारा कारोबार चौपट हो जायगा। रियासत जेरबार हो जाएगी और एक दिन बेचारे लल्लू को ये सब पापड़ बेलने पड़ेंगे।

चक्रधर समझ गए कि अगर मैं आग्रह करूँ, तो यह मेरे साथ जाने पर राजी हो जायगी। जब ऐश्वर्य और पति-प्रेम दो में से एक को लेने और दूसरे को त्याग करने की समस्या पड़ जायगी, तो अहल्या किस ओर झुकेगी, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं था; लेकिन वह उसे कठोर धर्म-संकट में डालना उचित न समझते थे। आग्रह से विवश होकर वह उनके साथ चली ही गयी तो क्या? जब उसे कोई कष्ट होगा, मन-ही-मन झुँझलाएगी और बात-बात पर कुढ़ेगी। और लल्लू को यहाँ छोड़ना ही पड़ेगा। मनोरमा उसे एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ सकती। राजा साहब तो शायद उसके वियोग में प्राण त्याग दें। पुत्र को छोड़कर अहल्या कभी जाने पर तैयार न होगी और गयी भी, तो बहुत जल्द लौट आयगी।

चक्रधर बड़ी देर तक इन्हीं विचारों में मग्न बैठे रहे। अन्त में उन्होंने बिना किसी से कुछ कहे-सुने चले जाने का संकल्प किया। इसके सिवा गला छुड़ाने का कोई उपाय ही न सूझता था।

चक्रधर ने अपने कमरे में जाकर दो-चार कपड़े और किताबें समेटकर रख दीं। कुल इतना ही सामान था, जिसे एक आदमी आसानी से हाथ में लटकाये लिये जा सकता था। उन्होंने रात को चुपके से बकुचा उठाकर चले जाने का निश्चय किया।

यात्रा की तैयारी करके और अपने मन को अच्छी तरह समझाकर अपने में नींद का बहाना करने लगे वह चाहते थे कि यह सो जाय तो मैं चुपके से अपना बकुचा उठाऊँ और लम्बा हो जाऊँ

मगर निद्रा विलासिनी अहल्या की आँखों से आज नींद कोसों दूर थी वह कोई-न कोई प्रसंग छेड़कर बात करती जाती थी यहाँ तक कि जब आधी रात से अधिक बीत गयी तो चक्रधर ने कहा भाई अब मुझे सोने दो आज तुम्हारी नींद कहाँ भाग गयी ?

उन्होंने चादर ओढ ली और मुँह फेर लिया। गरमी के दिन थे। कमरे में पंखा चल रहा था। फिर भी गरमी मालूम होती थी। रोज किवाड खुले रहते थे। जब अहल्या को विश्वास हो गया कि चक्रधर सो गये, तो उसने दरवाजे अन्दर से बन्द कर दिये और बिजली की बत्ती ठण्डी करके सोयी। आज वह न-जाने क्यों इतनी सावधान हो गयी थी। पगली। जाने वालो को किसने रोका है ?

रात भीग हो चुकी थी। अहल्या को नींद आते देर न लगी। चक्रधर का प्रेमकातर हृदय अहल्या के यों सावधान होने पर एक बार विचलित हो उठा। वह अपने आँसुओं के वेग को न रोक सके। यह सोचकर उनका कलेजा फटा जाता था कि जब प्रातःकाल वह मुझे न पायेगी, तो क्या दशा होगी।

चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। सारा राज-भवन शांति में विलीन हो रहा था। चक्रधर ने उठकर द्वारों को टटोलना शुरू किया; पर ऐसा दिशा-भ्रम हो गया था कि द्वार का ज्ञान न हुआ। आखिर उन्होंने दीवालों को टटोल-टटोलकर बिजली का बटन खोज निकाला और बत्ती जला दी। चुपके से बाहर के कमरे में आये, अपना हैंडबेग उठाया और बाहर निकले।

बाहर आकर चक्रधर ने राज-भवन की ओर देखा। असंख्य खिडकियों और दरीचों से बिजली का दिव्य प्रकाश दिखाई दे रहा था। उन्हें वह दिव्य भवन सहस्र नेत्रों वाले पिशाच की भाँति जान पड़ा, जिसने उनका सर्वनाश कर दिया था। वह कदम बढ़ाते हुए आगे चले। वह दिन निकलने के पहले इतनी दूर निकल जाना चाहते थे कि फिर उन्हें कोई पा न सके। दिन निकलने में अब बहुत देर भी न थी। तारों की ज्योति मन्द पड चली चक्रधर ने और तेजी से कदम बढाया

है ? धन्नासिंह को आवाज पहचानकर वह सड़क ही पर ठिठक गये इसने पहचान लिया तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी

धन्नासिंह कह रहा था—कजा आ गयी, तो कोई क्या कर सकता है ? बाबूजी के हाथ में कोई डण्डा भी तो न था। दो-चार घूँसे मारे होंगे और क्या ? मगर उस दिन से फिर बेचारा उठा नहीं।

दूसरे आदमी ने कहा—ठाँव—कुठाँव की बात है। मन्ना को कुठाँव चोट लग गयी।

धन्नासिंह—बाबूजी सुनेंगे, तो उन्हें बहुत रंज होगा। जेहल में हम लोग उन्हें भगतजी कहा करते थे।

एक बूढ़ा आदमी बोला—भैया, जेहल की बात दूसरी थी। तब दयावान रहे होंगे। राज पाकर दयावान रहें, तो जानो।

धन्नासिंह—दादा, वह राज पाकर फूल उठने वाले आदमी नहीं है। तुमने देखा, यहाँ से जाते-ही-जाते माफी दिला दी।

बूढ़ा—अरे पागल, जान का बदला कहीं माफी से चुकता है ? तुम बाबूजी को दयावान कहते हो, मैं उन्हें सौ हत्यारों का एक हत्यारा कहता हूँ। राजा हैं, इससे बचे जाते हैं; दूसरा होता तो फाँसी पर लटकाया जाता।

चक्रधर वहाँ एक क्षण भी और खड़े न रह सके। उन आदमियों के सामने जाने की हिम्मत न पड़ी।

पाँच साल गुजर गये; पर चक्रधर का कुछ पता नहीं। फिर वही गर्मी के दिन है, दिन को लू चलती है, रात को अंगारे बरसते हैं, मगर अहल्या को न अब पंखे की जरूरत है, न खस की टट्टियों की। उस वियोगिनी को अब रोने के सिवा दूसरा काम नहीं है। वह अपने को बार-बार धिक्कारती है कि वह चक्रधर के साथ क्यों न चली गयी ?

शंखधर उससे पूछता रहता है—अम्माँ, बाबूजी कब आयेंगे ? वह क्यों चले गये, अम्माँजी ? रानी अम्माँ कहती हैं, वह आदमी नहीं, देवता हैं। क्यों अम्माँजी, क्या वह देवता है ? फिर तो लोग उनकी पूजा करते होंगे। अहल्या के पास इन प्रश्नों का उत्तर रोने के सिवा और कुछ नहीं है। शंखधर कभी-कभी अकेले बैठकर रोता है ! कभी-कभी अकेले सोचा करता है कि पिताजी कैसे आयेंगे।

का जी अपने पिता की कीर्ति सुनने से कभी नहीं भरता।

वह रोज अपनी दादी के पास जाता है और वहाँ उनकी गोद में बैठा हुआ घंटों उनकी बात सुना करता है निर्मला दिन भर उसकी राह देखा करती है। उसे देखते ही निहाल हो जाती है। शंखधर ही अब उसके जीवन का आधार है। अहल्या का मुँह भी वह नहीं देखना चाहती।

मुंशीजी को अब रियासत से एक हजार रुपया महीना वसीका मिलता है। राजा साहब ने उन्हें रियासत के कामों से मुक्त कर दिया है। इसलिए मुंशीजी अब अधिकांश घर पर ही रहते है। शराब की मात्रा तो धन के साथ नही बढी, बल्कि और घट गयी हैं; लेकिन संगीत-प्रेम बढ़ गया है। उनके लिए सबसे आनन्द का समय वह होता है, जब वह शंखधर को गोद में लिये मुहल्ले-भर के बालकों को मिठाइयाँ और पैसे बाँटने लगते है। इससे बड़ी खुशी की वह कल्पना ही नही कर सकते।

एक दिन शँखधर ६ बजे ही पहुँचा। निर्मला उस समय स्नान करके तुलसी को जल चढा रही थी। जब जल चढ़ाकर आयी, तो शंखधर ने पूछा—दादीजी, तुम पूजा क्यों करती हो ?

निर्मला ने शंखधर को गोद मे लेकर कहा—बेटा, भगवान् से मनाती हूं कि मेरी मनोकामना पूरी करें।

शंखधर—भगवान् सबके मन की बात जानते हैं ?

निर्मला—हाँ बेटा भगवान् सब कुछ जानते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल शंखधर ने स्नान किया; लेकिन स्नान करके वह जलपान करने न आया। न जाने कहाँ चला गया। अहल्या इधर-उधर देखने लगी, कहाँ चला गया। मनोरमा के पास आकर देखा, वहाँ भी न था। अपने कमरे मे भी न था। छत पर भी नही। दोनों रमणियाँ घबरायी कि स्नान करके कहाँ चला गया। लौंडियों से पूछा तो उन सबो ने भी कहा, हमने तो उन्हें नहाकर आते देखा। फिर कहाँ चले गये, यह हमें नहीं मालूम। चारों ओर तलाश होने लगी। दोनो बगीचे की ओर दौड़ी गयी। वहां भी वह न दिखायी दिया। सहसा बगीचे के पल्ले सिरे पर, जहाँ दिन को भी सन्नाटा रहता था, उसकी झलक दिखायी दी। दोनो चुपके-चुपके वहाँ गयी और एक पेड की आड में खड़ी होकर देखने लगी। शँखधर तुलसी के चबूतरे के सामने आसन मारे, आँखे बन्द किये ध्यान-सा लगाये बैठा था। उसके सामने कुछ फूल पड़े हुए थे। एक क्षण के बाद उसने आँखे खोली, कई बार चबूतरे की परिक्रमा और तुलसी की वन्दना करके धीरे से उठा।

दोनों महिलाएं आड़ से निकल कर उसके सामने खड़ी हो गयी शंखधर उन्हें देखकर कुछ लज्जित हो गया और बिना कुछ बोले आगे बढ़ा।

मनोरमा—वहाँ क्या करते थे, बटा ?

शंखधर—कुछ तो नहीं। ऐसे हीं घूमता था।

मनोरमा—नही, कुछ तो कर रहे थे।

शखधर—जाइए, आपसे क्या मतलब ?

अहल्या—तुम्हें न बतायेंगे। मैं इसकी अम्माँ हूं, मुझे बता देगा। मेरा लाल मेरी कोई बात नहीं टालता। हाँ बेटे बताओ क्या कर रहे थे ? मेरे कान में कह दो। मैं किसी से न कहूँगी।

शंखधर ने आँखो में आँसू भर कर कहा—कुछ नहीं, मैं बाबूजी के जल्दी से लौट आने की प्रार्थना कर रहा था। भगवान् पूजा करने से सबकी मनोकामना पूरी करते है।

सरल बालक की यह पितृभक्ति और श्रद्धा देखकर दोनों महिलाएँ रोने लगी। इस बेचारे को कितना दुःख है। शंखधर ने फिर पूछा—अम्माँ, तुम बाबूजी के पास कोई चिट्ठी क्यों नही लिखती ?

अहल्या ने कहा—कहाँ लिखूँ बेटा, उनका पता भी तो नहीं जानती !

२०

इधर कुछ दिनो से लौंगी तीर्थ करने चली गयी थी। गुरुसेवक सिंह ही के कारण उसके मन में यह धर्मोत्साह हुआ था। जबसे वह गयी थी, दीवान साहब दीवाने हो गये थे। यहाँ तक कि गुरुसेवक को भी कभी-कभी यह मानना पडता था कि लौंगी का घर में होना पिताजी की रक्षा के लिए जरूरी है। घर में अब कोई नौकर एक सप्ताह से ज्यादा न टिकता था, कितने ही पहली ही फटकार में छोड़कर भागते थे। शराब की मात्रा भी दिनोदिन बढती जाती थी, जिससे भय होता था कि कोई भयंकर रोग न खडा हो जाय, भोजन वह अव बहुत थोडा करते थे। लौंगी दिन-भर में दो ढाई सेर दूध उनके पेट में भर दिया करती थी, आध पाव के लगभग घी भी किसी-न-किसी तरह पहुँचा ही देती थी। इस कला में वह निपुण थी। पति-सेवा का वह अमर सिद्धान्त, जो चालीस साल की अवस्था के बाद भोजन की योजना ही पर विशेष आग्रह करता है, सदैव उसकी आँखों के सामने रहता था। ठाकुर साहब लौंगी की अब सूरत भी नही देखना चाहते थे, इसी आशय के पत्र उसको लिखा करते हैं। हर एक पत्र में वह अपने स्वास्थ्य का विवरण अवश्य करते थे। उनकी पाचन-शक्ति अब बहुत अच्छी हो गयी थी, रुधिर के बढ़ जाने से जितने रोग उत्पन्न होते हैं, उनकी अब कोई सम्भावना न थी।

दीवान साहब की पाचन-शक्ति अच्छी हो गई हो; पर विचार-शक्ति तो जरूर क्षीण हो गयी थी। निश्चय करने की अब उनमें सामर्थ्य ही न थी। ऐसी-ऐसी गलतियाँ करते थे कि राजा साहब को उनका बहुत लिहाज करने पर भी बार-बार एतराज करना पडता था। वह कार्यदक्षता, वह तत्परता, वह विचारशीलता, जिसने उन्हें चपरासी से दीवान बनाया था, अब उनका साथ छोड़ गयी थी। लोगों को आश्चर्य होता था इन्हें क्या हो गया है। गुरुसेवक को भी शायद मालूम होने लगा कि पिताजी की आड़ में कोई दूसरी ही शक्ति रियासत का संचालन करती थी।

एक दिन उन्होने पिताजी से कहा लौंगी कब तक आयेगी ?

दीवान साहब ने उदासीनता से कहा उसका दिल जाने यहा आने की तो कोई खास जरूरत नही मालूम होती अच्छा है अपने कर्मों का प्रायश्चित ही कर ले। यहाँ आकर क्या करेगी ?

उसी दिन भाई-बहन में भी इसी विषय पर बाते हुई। मनोरमा ने कहा—भैया, क्या तुमने लौंगी अम्माँ को भुला ही दिया ? दादाजी की दशा देख रहे हो कि नहीं ? सूखकर काँटा हो गये हैं। जब से अम्माँजी का स्वर्गवास हुआ, दादाजी ने अपने को उसके हाथों बेच दिया। लौंगी ने न सभाला होता, तो अम्माँजी के शोक में दादाजी प्राण दे देते। मैंने किसी विवाहिता स्त्री मे इतनी पति-भक्ति नही देखी। अगर दादाजी को बचाना चाहते हो, तो जाकर लौंगी अम्माँ को अपने साथ लाओ !

गुरुसेवक—मेरा जाना तो बहुत मुश्किल है, नोरा ?

मनोरमा—क्यों ? इसमें आपका अपमान होगा ?

गुरुसेवक— वह समझेगी, आखिर इन्हीं को गरज पड़ी। आकर और भी सिर चढ़ जायगी। उसका मिजाज और भी आसमान पर जा पहुँचेगा।

मनोरमा—अच्छी बात है, तुम न जाओ; लेकिन मेरे जाने में तुम्हे कोई आपत्ति नही हैं ?

गुरुसेवक—तुम जाओगी ?

मनोरमा—क्यों, मैं क्या हूँ ! क्या भूल गई हूँ कि लौंगी अम्माँ ही ने मुझे गोद में लेकर पाला है ? जब मै बीमार पड़ी थी, तो वह रात-की-रात मेरे सिरहाने बैठी रहती थी। क्या मै इन बातों को कभी भूल सकती हूँ ? माता के ऋण से उऋण होना चाहे सम्भव हो, उसके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती, चाहे ऐसे-ऐसे दस जन्म लूँ।

गुरुसेवक लज्जित हुए। घर आकर उन्होंने देखा कि दीवान साहब लिहाफ ओढ़े पड़े हुए हैं। पूछा—आपका जी कैसा है ?

दीवान साहब की लाल आँखें चढ़ी हुई थी। बोले—कुछ नहीं जी, जरा सरदी लग रही थी।

गुरुसेवक—आपकी इच्छा हो तो मैं जाकर लौंगी को बुला लाऊँ ?

हरिसेवक—तुम नहीं तुम उसे बुलाने क्या जाओगे कोई जरूरत नहीं उसका जी चाहे, आये या न आये हुँह ! उसे बुलाने जाओगे ! ऐसी कहाँ की अमीरजादी है ?

दूसरे दिन दीवान साहब को ज्वर हो आया। गुरुसेवक ने तापमान लगाकर देखा, तो ज्वर १०४ डिग्री का था। घबराकर डाक्टर को बुलाया मनोरमा यह खबर पाते ही दौड़ी आई। उसने आते-ही-आते गुरुसेवक से कहा—मैंने आपसे कल ही कहा था, जाकर लौंगी अम्माँ को बुला लाइये; लेकिन आप न गये। अब तक तो आप हरिद्वार से लौटते होते। अब भी मौका है। मैं इनकी देख-भाल करती रहूँगी, तुम इसी गाड़ी से चले जाओ और उन्हें साथ लाओ। इनकी बीमारी की खबर सुनकर एक क्षण भी न रुकेगी। वह केवल तुम्हारे भय से नहीं आ रही हैं।

दीवान साहब मनोरमा को देखकर बोले—आओ नोरा, मुझे तो आज ज्वर आ गया। गुरुसेवक कह रहा था कि तुम लौंगी को बुलाने जा रही हो। बेटी, इसमें तुम्हारा अपमान है। भला दुनिया क्या कहेगी ? सोचो, कितनी बदनामी की बात है !

मनोरमा—दुनिया जो चाहे कहे मैंने भैया जी को भेज दिया है।

हरिसेवक—सच ! यह तुमने क्या किया ! लौंगी कभी न आयेगी।

मनोरमा—आयेगी क्यों नहीं। न आयेगी, तो मैं जाऊँगी और उसे मना लाऊँगी।

हरिसेवक—तुम उसे मनाने जाओगी ? रानी मनोरमा लोंगी कहारिन को मनाने जाएगी।

मनोरमा—लौंगी कहारिन का दूध पीकर बड़ी न होती, तो आज रानी मनोरमा कैसे होती ?

हरिसेवक का मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठा, बुझी हुई आँखें जगमगा उठीं, प्रसन्नमुख होकर बोले—नोरा, तुम सचमुच दया की देवी हो। देखो, अगर लौंगी आये और मैं न रहूँ, तो उसकी खबर लेती रहना। उसने बड़ी सेवा की है। मैं कभी उसके एहसानों का बदला नहीं चुका सकता। गुरुसेवक उसे सतायेगा, उसे घर से निकालेगा; लेकिन तुम उस दुखिया की रक्षा करना। मै चाहूँ, तो अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम लिख सकता । लेकिन लौंगी कुछ न लेगी। वह दुष्ट मेरी जायदाद का एक पैसा भी न छुएगी वह अपने गहने-पाते भी काम पड़ने पर इस घर में लगा देगी

बस वह सम्मान चाहती है कोई उससे आदर के साथ बोले और उसे लूट ले वह घर की स्वामिनी बनकर भूखो मर जायगी लेकिन दासी बनकर सोने का कौर भी न खायगी नोरा जिस दिन से वह गयी है मैं कुछ और ही हो गया हूँ। जान पड़ता है, मेरी आत्मा कही चली गयी है। तुम्हें अपने बचपन की याद आती है, नोरा ?

मनोरमा—बहुत पहले की बातें तो नहीं याद हैं; लेकिन लौंगी अम्माँ का मुझे गोद में खिलाना खूब याद है; अपनी बीमारी भी याद आती है, जब लौंगी अम्माँ मुझे पंखा झला करती थीं।

हरिसेवक ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—उससे पहले की बात है नोरा, जब गुरुसेवक तीन वर्ष का था और तुम्हें तुम्हारी माता साल-भर का छोड़कर चल बसी थी। मैं पागल हो गया था। यही जी में आता था कि आत्म-हत्या कर लूँ। उस दशा में इसी लौंगी ने मेरी रक्षा की। उसकी सेवा ने मुझे मुग्ध कर दिया। उसे तुम लोगों पर प्राण देते देखकर उस पर मेरा प्रेम हो गया। तुम्हारी माता भी तुम लोगों का लालन-पालन इतना तन्मय होकर न कर सकती थी। गुरुसेवक को न-जाने कौन-सा रोग हो गया था। खून के दस्त आते थे और तिल-तिल पर। इसके बचने की कोई आशा न थी। गलकर काँटा हो गया था। यह लौंगी ही थी, जिसने उसे मौत के मुँह से निकाल लिया। और आज गुरुसेवक उसे घर से निकाल रहा है, समझता है कि लौंगी मेरे धन के लोभ से मुझे घेरे हुए है। मूर्ख नही सोचता कि जिस समय लौंगी उसका पञ्जर गोद में लेकर रोया करती थी, उस समय धन कहाँ था। सच पूछो, तो यहाँ लक्ष्मी भी लौंगी के समय ही आयी। क्यों नोरा, मेरे सिरहाने कौन खड़ा है ? कोई बाहरी आदमी है ? कह दो, यहाँ से जाय।

मनोरमा—यहाँ तो मेरे सिवा और कोई नही है। आपको कोई कष्ट हो रहा है ? डाक्टर को बुलाऊँ ?

हरिसेवक—मेरी दवा लौंगी के पास है। उस सती का कैसा प्रताप था ! जब तक वह रही, मेरे सिर में कभी दर्द नहीं हुआ। मेरी मूर्खता देखो कि जब उसने तीर्थयात्रा की बात कही, तो मेरे मुंह से एक बार भी न निकला—तुम मुझे किस पर छोड़कर जाती हो ? अगर मैं यह कह सकता, तो वह कभी न जाती

आशंकित नेत्रों से देखकर बोले यह कौन अन्दर आया नोरा ? ये लोग क्यों मुझे घेरे हुए हैं ? मुझे कुछ नहीं हुआ है लेटा हुआ बात कर रहा हूं

मनोरमा ने धड़कते हुए हृदय से उमड़ने वाले आँसुओं को दबाकर पूछा—क्या आपका जी फिर घबरा रहा है ?

हरिसेवक—वह कुछ नहीं था, नोरा ! मैंने अपने जीवन में अच्छे काम कम किये; बुरे काम बहुत किये। अच्छे काम जितने किये, वे लौंगी ने किये। बुरे काम जितने किये, वे मेरे हैं। उनके दंड का भागी मैं हूँ। लौंगी के कहने पर चलता, तो आज मेरी आत्मा शान्त होती।

मनोरमा आँसुओं के वेग को रोके हुए थी। उसे उस चिर-परिचित स्थान में आज एक विचित्र शंका का आभास हो रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि सूर्य-प्रकाश कुछ क्षीण हो गया, मानो सन्ध्या हो गयी है। दीवान साहब के मुख की ओर ताकने की हिम्मत न पड़ती थी।

दीवान साहब छत की ओर टकटकी लगाये हुए थे, मानो उनकी दृष्टि अनन्त के उस पार पहुँच जाना चाहती हो। सहसा उन्होंने क्षीण-स्वर में पुकारा—नोरा !

मनोरमा ने उनकी ओर करुण नेत्रों से देखकर कहा—खड़ी हूँ, दादाजी !

दीवान—जरा कलम-दवात लेकर मेरे समीप आ जाओ। कोई और तो यहाँ नहीं है ? मेरा दान-पत्र लिख लो। गुरुसेवक लौंगी से न पटेगी। मेरे पीछे उसे बहुत कष्ट होगा। मैं अपनी सब जायदाद लौंगी को देता हूँ। जायदाद के लोभ से गुरुसेवक उससे दबेगा। तुम यह लिख लो और तुम्हीं इसकी साक्षी देना। यह वसीयत तुम अपने ही पास रखना।

मनोरमा अन्दर जाकर रोने लगी। अब आँसुओं का वेग उसके रोके न रुका।

थोड़ी देर में राजा साहब आ पहुँचे। अहल्या भी उनके साथ थी। मुंशी वज्रधर को भी उड़ती हुई खबर मिली। दौड़े आये। रियासत के सैकड़ों कर्मचारी जमा हो गये। डाक्टर भी आ पहुँचा। किन्तु दीवान साहब ने आँखें न खोलीं। अचेत पड़े हुए थे किन्तु आँखों से आँसू की धारें बह-बहकर गालों पर आ रही थीं

एकाएक द्वार पर एक बग्घी आकर रुकी और उसमें से एक स्त्री उतरकर घर में दाखिल हुई। शोर मच गया—आ गयी, आ गयी ! यह लौंगी थी।

लौंगी आज ही हरिद्वार से चली थी। गुरुसेवक से उसकी भेंट न हुई थी। इतने आदमियों को जमा देखकर उसका हृदय दहल उठा। उसके कमरे मे आते ही और लोग हट गए। केवल मनोरमा, उसकी भाभी और अहल्या रह गयी।

लौंगी ने दीवान साहब के सिर पर हाथ रखकर भर्रायी हुई आवाज में कहा—प्राणनाथ ! क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे ?

दीवान सहाब की आँखें खुल गयी। उन आँखों में कितनी अपार वेदना थी, किन्तु कितना प्रेम !

उन्होंने दोनों हाथ फैलाकर कहा—लौंगी, और पहले क्यों न आयी ?

लौंगी ने दोनों फैले हुए हाथ के बीच में अपना सिर रख दिया और उस अन्तिम प्रेमालिंगन के आनन्द में विह्वल हो गयी। आज उसे मालूम हुआ कि जिसके चरणों पर मैंने अपने को समर्पित किया था, वह अन्त तक मेरा रहा। यह शोकमय कल्पना भी कितनी मधुर और शान्तिदायिनी थी।

वह इसी विस्मृति की दशा में थी कि मनोरमा का रोना सुनकर चौक पड़ी और दीवान साहब के मुख की ओर देखा। तब उसने स्वामी के चरणों पर सिर रख दिया और फूट-फूटकर रोने लगी। एक क्षण में सारे घर में कुहराम मच गया।

ठाकुर हरिसेवकसिंह का क्रिया-कर्म हो जाने के बाद एक दिन लौंगी ने अपना कपड़ा-लत्ता बाँधना शुरू किया। उसके पास रुपये-पैसे जो कुछ थे, सब गुरुसेवक को सौंपकर बोली--भैया, मैं अब किसी गाँव में जाकर रहूँगी, यहाँ मुझसे नहीं रहा जाता।

वास्तव में लौंगी से अब इस घर में न रहा जाता था। घर की एक-एक चीज उसे काटने दौड़ती थी। २५ वर्ष तक इस घर की स्वामिनी बनी रहने के बाद वह किसी की आश्रिता न बन सकती थी। वैधव्य के शोक साथ यह भाव कि मैं किसी दूसरे की रोटियो पर पड़ी हूँ उसके लिए

असह्य था। हालाँकि गुरुसेवक पहले से अब कहीं ज्यादा उसका लिहाज करते थे, और कोई ऐसी बात न होने देते थे जिससे उसे रंज हो फिर भी कभी कभी ऐसी बात हो ही जाती थी जो उसकी पराधीनता की याद दिला देती थी। इसीलिए अब वह यहां से जाकर किसी देहात में रहना चाहती है। आखिर जब ठाकुर साहब ने उसके नाम कुछ नहीं लिखा, उसे दूध की मक्खी की भाँति निकाल कर फेंक दिया, तो वह यहां क्यों पड़ी दूसरों का मुँह जोहे? उसे अब एक टूटे-फूटे झोंपड़े और एक टुकड़े रोटी के सिवा और कुछ नहीं चाहिए।

गुरुसेवक ने कहा—आखिर सुनें तो, कहाँ जाने का विचार कर रही हो?

लौंगी—जहाँ भगवान् ले जायेंगे, वहाँ चली जाऊँगी; कोई नैहर या दूसरी ससुराल है, जिसका नाम बता दूँ?

गुरुसेवक—सोचती हो, तुम चली जाओगी तो मेरी कितनी बदनामी होगी? दुनिया यही कहेगी कि इनसे एक बेवा का पालन न हो सका। मेरे लिए कहीं मुँह दिखाने की भी जगह न रहेगी। तुम्हें इस घर में जो शिकायत हो वह मुझसे कहो, जिस बात की जरूरत हो, मुझसे बतला दो। अगर मेरी तरफ से उसमें जरा भी कोर-कसर देखो, तो फिर तुम्हें अख्तियार रहे, जो चाहे करना। यों मैं कभी न जाने दूँगा।

लौंगी—क्या बाँधकर रखोगे?

गुरुसेवक—हाँ, बांधकर रखेंगे।

अगर उम्र भर में लौंगी को गुरुसेवक की कोई बात पसन्द आयी, तो उनका यही दुराग्रह-पूर्ण वाक्य था। लौंगी का हृदय पुलकित हो गया। इस वाक्य में उसे आत्मीयता जान पड़ी। उसने जरा तेज होकर कहा—बाँधकर क्यों रखोगे? क्या तुम्हारी बेसाही हूं?

गुरुसेवक—हाँ, बेसाही हो! मैंने नहीं बेसाहा, मेरे बाप ने तो बेसाहा है। बेसाही न होतीं, तो तुम तीस साल यहाँ रहतीं कैसे? मैं तुम्हारे पैर तोड़कर रख दूँगा। क्या तुम अपने मन की हो कि जो चाहोगी करोगी और जहाँ चाहोगी, जाओगी, और कोई न बोलेगा? तुम्हारे नाम के साथ मेरी और मेरे पूज्य बाप की इज्जत बँधी हुई है।

लौंगी के जी में आया कि गुरुसेवक के चरणों पर सिर रखकर रोऊँ और छाती से कहूँ मैंने तो तुझे गोद खेलाया है, तुझे

छोड़कर भला मैं कहां जा सकती हूं ' लेकिन उसने क्रुद्ध भाव से कहा यह तो अच्छी दिल्लगी हुई यह मुझे बाँधकर रखेंगे

गुरुसेवक तो झल्लाये हुए बाहर चले गये और लौंगी अपने कमरे में जाकर खूब रोई। गुरुसेवक किसी महरी से क्या कह सकते थे—हम तुम्हें बाँधकर रखेंगे ? कभी नहीं, लेकिन अपनी स्त्री से वह यह बात कह सकते है; क्योंकि उसके साथ उनकी इज्जत बँधी हुई है। थोड़ी देर के बाद वह उठकर एक महरी से आकर बोली—सुनती है रे, मेरे सिर में दर्द हो रहा है! जरा आकर दबा दे।

सहसा मनोरमा ने कमरे में प्रवेश किया और लौंगी को सिर मे तेल डलवाते देखकर बोली—कैसा जी है अम्मा ? सिर में दर्द है क्या ?

लौंगी—नही बेटा, जी तो अच्छा है। आओ, बैठो।

मनोरमा ने महरी से कहा—तुम जाओ मैं दबाये देती हूँ।

महरी चली गयी। मनोरमा सिर दबाने बैठी, तो लौंगी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—नहीं बेटा; तुम रहने दो। दर्द नही था, यों ही बुला लिया था। कोई देखे तो कहे कि बुढ़िया पगला गई है, रानी से सिर दबवाती है।

मनोरमा ने सिर दबाते हुए कहा—रानी जहाँ हूँ, वहाँ हूँ, यहाँ तो तुम्हारी गोद की खेलायी नोरा हूँ। आज तो भैया जी यहाँ से जाकर तुम्हारे ऊपर बहुत बिगड़ते रहे। मैं उसकी टाँग तोड़ दूँगा, गर्दन काट लूँगा। कितना पूछा—कुछ बताओ तो, बात क्या है ? पर गुस्से में कुछ सुने ही न। भाई हैं तो क्या, पर उनका अन्याय मुझसे भी नही देखा जाता। दादाजी उनकी नीयत को पहले ही ताड़ गए थे। मैने अब तक तुमसे नहीं कहा अम्माँजी, पर आज उनकी बातें सुनकर कहती हूँ कि पिताजी ने अपनी सारी जायदाद तुम्हारे नाम लिख दी है।

लौंगी पर इस सूचना का जरा भी असर न हुआ। किसी प्रकार का उल्लास, उत्सुकता या गर्व उसके चेहरे पर न दिखायी दिया। वह उदासीन भाव से चारपाई पर पड़ी रही।

मनोरमा ने फिर कहा—मेरे पास उनकी लिखायी हुई वसीयत रखी है। और मुझी को उन्होंने उसका साक्षी बनाया है। जब यह महाशय वसीयत देखेंगे तो आंखें खुलेंगी

लौंगी ने ... मैं ... ...

[illegible] तुम्हारे दादाजी ने व्यर्थ ही वसीयत लिखायी । मैं उनकी जायदाद की भूखी नही थी, उनके प्रेम की भूखी थी और ईश्वर को साक्षी देकर कहती हू बेटी कि इस विषय में मेरा जैसा भाग्य बहुत कम स्त्रियो का होगा . मैं उनका प्रेम धन पाकर ही सन्तुष्ट हूँ । इसके सिवा अब मुझे और किसी धन की इच्छा नहीं है। गुरुसेवक को मैंने गोद में खिलाया है, उसे पाला-पोसा है । वह मेरे स्वामी का बेटा है । उसका हक मैं किस तरह छीन सकती हूँ ? उसके सामने की थाली किस तरह खीच सकती हूँ ? वह कागज फाड़कर फेंक दो । यह कागज लिखकर उन्होने अपने साथ और गुरुसेवक के साथ अन्याय किया है । गुरुसेवक अपने बाप का बेटा है, तो मुझे उसी आदर से रखेगा । वह मुझे माने या न माने, मैं उसे अपना ही समझती हूँ । तुम सिरहाने बैठी मेरा सिर दबा रही हो, क्या धन में इतना सुख कभी मिल सकता है । गुरुसेवक के मुँह से अम्माँ सुनकर मुझे वह खुशी होगी, जो संसार की रानी बनकर भी नही हो सकती, तुम उनसे इतना ही कह देना ।

यह कहते-कहते लौंगी की आँखें सजल हो गयी । मनोरमा उसकी ओर प्रेम, श्रद्धा, गर्व और आश्चर्य से ताक रही थी, मानो वह कोई देवी हो ।

२१

जगदीशपुर के ठाकुरद्वारे में नित्य साधु महात्मा आते रहते थे। शंखधर उनके पास जा बैठता और उनकी बाते बड़े ध्यान से सुनता। उसके पास चक्रधर की तस्वीर थी, उससे मन-ही-मन साधुओं की सूरत का मिलान करता; पर उस सूरत का साधु उसे न दिखायी देता था। किसी की भी बातचीत से चक्रधर की टोह न मिलती थी।

एक दिन मनोरमा के साथ शंखधर भी लौगी के पास गया। लौगी बड़ी देर तक अपनी तीर्थ-यात्रा की चर्चा करती रही। शंखधर उसकी बाते गौर से सुनने के बाद बोला—क्यो दाई, तो तुम्हे साधु-संन्यासी बहुत मिले होंगे?

लौगी ने कहा—हाँ बेटा, मिले क्यो नही। एक संन्यासी तो ऐसा मिला था कि हूबहू तुम्हारे बाबूजी से सूरत मिलती थी। बदले हुए भेस मे ठीक तो न पहचान सकी, लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता था कि वही है।

शंखधर ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—जटा बड़ी-बड़ी थी?

लौगी—नहीं, जटा-सटा तो नही थी, न वस्त्र ही गेरुआ रंग के थे। हाँ, कमण्डल अवश्य लिये हुए थे। जितने दिन मैं जगन्नाथपुरी में रही, वह एक बार रोज मेरे पास आकर पूछ जाते—क्यों माताजी, आपको किसी बात का कष्ट तो नहीं है? और यात्रियों से भी वह यही बात पूछते थे।

शंखधर बोला—दाई, तुमने यहाँ तार क्यों न दिया? हम लोग फौरन पहुँच जाते।

लौगी—अरे, तो कोई बात भी तो हो बेटा, न जाने कौन था, कौन नही था। बिना जाने-बूझे क्यों तार देती?

शंखधर मैं यदि उन्हे एक बार देख पाऊँ तो फिर कभी साथ छ

मनोरमा—अब दाई यह क्या जाने ? संन्यासी कहीं एक जगह रहते हैं, जो वह बता दे ?

शंखधर—अच्छा दाई, तुम्हारे ख्याल में संन्यासीजी की उम्र क्या रही होगी ?

लौंगी—मैं समझती हूँ, उनकी उम्र ४० वर्ष की रही होगी।

शंखधर ने कुछ हिसाब करके कहा—रानी अम्माँ, यही तो बाबूजी की भी उम्र होगी।

मनोरमा ने बनावटी क्रोध से कहा—हाँ-हाँ, वही संन्यासी तुम्हारे बाबूजी हैं, बस, अब माना। अभी उम्र ४० वर्ष की कैसे हो जायगी ?

शंखधर समझ गया कि मनोरमा को यह जिक्र बुरा लगता है। इस विषय में फिर मुँह से एक शब्द भी न निकला; लेकिन वहाँ रहना अब उसके लिए असम्भव था। पुरी का हाल तो उसने भूगोल में पढ़ा था; लेकिन अब उस अल्पज्ञान से उसे सन्तोष न हो सकता था। वह जानना चाहता था कि पुरी को कौन रेल जाती है, वहाँ जाकर लोग ठहरते कहाँ हैं ? घर के पुस्तकालय में शायद कोई ऐसा ग्रन्थ मिल जाय, यह सोचकर वह बाहर आया और शोफर से बोला—मुझे घर पहुँचा दो।

घर आकर पुस्तकालय में जा ही रहा था कि गुरुसेवक सिंह मिल गये। शंखधर उन्हें देखते ही बोला—गुरुजी, जरा कृपा करके मुझे पुस्तकालय से कोई ऐसी चीज निकाल दीजिये, जिसमें तीर्थ-स्थानों का पूरा-पूरा हाल लिखा हो।

गुरुसेवक ने कहा—ऐसी तो कोई किताब पुस्तकालय में नहीं है।

शंखधर—अच्छा, तो मेरे लिये कोई ऐसी किताब मँगवा दीजिये।

यह कहकर वह लौटा ही था कि कुछ सोचकर बाहर चला गया और एक मोटर तैयार कराके शहर चला। अभी उसका तेरहवाँ ही साल था; लेकिन चरित्र में इतनी दृढ़ता थी कि जो बात मन में ठान लेता, उसे पूरा करके छोड़ता। शहर जाकर उसने अँग्रेजी पुस्तकों की कई दूकानों में तीर्थ यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें देखीं और किताबों का एक बण्डल लेकर घर आया।

राजा साहब भोजन करने बैठे, तो शंखधर वहाँ न था। अहल्या ने जाकर देखा तो वह अपने कमरे में बैठा कोई किताब देख रहा था

अहल्या ने कहा चलकर खाना खा लो, दादाजी बुला रहे हैं।

शंखधर अम्माँजी आज मुझे बिल्कुल भूख नहीं है।

अहल्या—कोई नयी किताब लाये हो क्या? अभी भूख नहीं है कौन-सी किताब है!

अहल्या ने उसके सामने से खुली हुई किताब उठा ली और दो-चार पंक्तियाँ पढ़कर बोली—इसमें तो तीर्थों का हाल लिखा हुआ है—जगन्नाथ, बदरीनाथ, काशी और रामेश्वर। यह किताब कहाँ से लाये?

शंखधर—आज ही तो बाजार से लाया हूँ। दाई कहती थी कि बाबूजी की सूरत का एक सन्यासी उन्हें जगन्नाथ में मिला था।

अहल्या ने शंखधर को दया-सजल नेत्रों से देखा; पर उसके मुख से कोई बात न निकली। आह! मेरे लाल। तुझमें इतनी पितृ-भक्ति क्यों है? तू पिता के वियोग में क्यों इतना पागल हो गया है? तुझे तो पिता की सूरत भी याद नहीं। तुझे तो इतना भी याद नहीं कि कब पिता की गोद में बैठा था, कब उनकी प्यार की बातें सुनी थीं। फिर भी तुझे उन पर इतना प्रेम है? और वह इतने निर्दयी हैं। आँसुओं के वेग को दबाती हुई वह बोली—बेटा, तुम्हारा उठने का जी न चाहता हो, तो यहीं लाऊँ।

शंखधर—अच्छा खा लूँगा अम्माँ, किसी से खाना भेजवा दो, तुम क्यों लाओगी।

अहल्या एक क्षण में छोटी-सी थाली में भोजन लेकर आयी और शंखधर के सामने रखकर बैठ गयी।

शंखधर को इस समय खाने की रुचि न थी, यह बात नहीं थी। उसे अब तक निश्चित रूप से अपने पिता के विषय में कुछ न मालूम था। वह जानता था कि वह किसी दूसरी जगह आराम से होंगे। आज उसे यह मालूम हुआ कि वह सन्यासी हो गये हैं, अब वह राजसी भोजन कैसे करता? इसीलिए उसने अहल्या से कहा था कि भोजन किसी के हाथ भेज देना, तुम न आना। अब यह थाल देखकर वह बड़े धर्म-संकट में पड़ा। अगर नहीं खाता; तो अहल्या दुखी होती है और खाता है तो कौर मुँह में नहीं जाता। उसे ख्याल आया, मैं यहाँ चाँदी के थाल में मोहन-भोग उड़ाने बैठा हूँ और बाबूजी पर इस समय न जाने क्या गुजर रही होगी। बेचारे किसी पेड़ के नीचे पड़े होंगे न जाने आज कुछ खाया भी है या नहीं वह

थाली पर बैठा लेकिन कौर उठाते ही फूट-फूटकर रोने लगा। अहल्या उसके मन का भाव ताड़ गयी और स्वयं रोने लगी। कौन किसे समझाता ?

आज से अहल्या को हरदम यही संशय रहने लगा कि शंखधर पिता की खोज में कहीं भाग न जाय। उसने सबको मना कर दिया कि शंखधर के सामने उसके पिता की चर्चा न करें। कहीं शंखधर अपने पिता के गृह-त्याग का कारण न जान ले, कही वह यह न जान जाय कि बाबूजी को राज-पाट से घृणा है, नही तो फिर इसे कौन रोकेगा ?

उसे अब हरदम यही पछतावा होता रहता कि मैं शंखधर को लेकर स्वामी के साथ क्यों न चली गयी ? राज्य के लोभ मे वह पति तो पहले ही खो बैठी थी, कही पुत्र को भी तो न खो बैठेगी।

शंखधर का नाम स्कूल मे लिखा दिया गया है। स्कूल से छुट्टी पाकर वह सीधे लौंगी के पास जाता है और उससे तीर्थयात्रा की बाते पूछता है। यात्री लोग कहाँ ठहरते हैं, क्या खाते है, जहाँ रेलें नही है, वहाँ लोग कैसे जाते हैं, चोर तो नही मिलते ? लौंगी उसके मनोभाव को ताडती है; लेकिन इच्छा न होते हुए भी उसे सारी बाते बतानी पड़ती है। वह झुँझ-लाती है, धुड़क बैठती है, लेकिन जब वह किशोर आग्रह करके उसकी गोद में बैठ जाता है तो उसे दया आ जाती है।

छुट्टियों के दिन शंखधर पितृगृह के दर्शन करने अवश्य जाता है। वह घर उसके लिए तीर्थ है। निर्मला की आँखे उसे देखने से तृप्त ही नही होतीं। दादा और दादी दोनो उसकी बालोत्साह से भरी बाते सुनकर मुग्ध हो जाते है; उनके हृदय पुलकित हो उठते है, ऐसा जान पड़ता है, मानो चक्रधर स्वयं बालरूप धारण करके उनका मन हरने आ गया है।

एक दिन निर्मला ने कहा—बेटा, तुम यहीं आके क्यो नही रहते ? तुम चले जाते हो, तो यह घर काटने दौड़ता है।

शंखधर ने कुछ सोचकर गम्भीर भाव से कहा—"अम्माँजी तो आती ही नहीं। वह क्यों कभी यहाँ नही आती, दादीजी ?

निर्मला—क्या जाने बेटा, मै उनके मन की बात क्या जानूँ ? तुम कभी कहते नहीं आज कहना। देखो क्या कहती हैं ?

जब वह चलने लगा तो निर्मला द्वार पर खडी हो गयी।

सहसा शखधर ड्योढी मे खडा हो गया और बोला दादीजी आपसे कुछ माँगना चाहता हूँ।

निर्मला ने विस्मृत होकर सजल नेत्रों से उसे देखा और गद्गद् होकर बोली—क्या माँगते हो, बेटा ?

शंखधर—मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मेरी मनोकामना पूरी हो !

निर्मला ने पोते को कण्ठ से लगाकर कहा—भैया, मेरा तो रोयाँ-रोयाँ तुम्हें आशीर्वाद दिया करता है। ईश्वर तुम्हारी मनोकामनाएँ पूरी करे !

शंखधर घर पहुँचा तो अहल्या ने पूछा— आज इतनी देर कहाँ लगाई बेटा ? मैं कब से तुम्हारी राह देख रही हूँ।

शंखधर—अभी तो ऐसी बहुत देर नहीं हुई, अम्माँ ! जरा दादीजी के पास चला गया था। उन्होने तुम्हे आज एक सन्देशा कहला भेजा है।

अहल्या—क्या सन्देशा है, सुनूँ ? कुछ तुम्हारे बाबूजी की खबर तो नहीं मिली है।

शंखधर - नहीं। बाबूजी की खबर नहीं मिली। तुम कभी-कभी वहाँ क्यों नही चली जाती ?

अहल्या ने ऊपरी मन से हाँ तो कह दिया, लेकिन भाव से साफ मालूम होता था कि वह वहाँ जाना उचित नहीं समझती। शायद वह कह सकती, तो कहती—वहाँ से तो एक बार निकाल दी गयी, अब कौन मुँह लेकर जाऊँ ? क्या अब कोई दूसरी हो गयी हूँ !

अहल्या तश्तरी में मिठाइयाँ और मेवे लायी और एक लौंडी से पानी लाने को कहकर बेटे से बोली—वहाँ तो कुछ जलपान न किया होगा, खा लो। आज तुम इतने उदास क्यों हो ?

शंखधर ने तश्तरी की ओर बिना देखे ही कहा—इस वक्त तो खाने का जी नहीं चाहता, अम्माँ !

एक क्षण के बाद उसने कहा—क्यों अम्माँ जी, बाबूजी को हम लोगो की याद भी कभी आती होगी ?

अहल्या ने सजल नेत्र होकर कहा—क्या जाने बेटा याद आती तो काले कोसो बैठ रहते

शंखधर—क्या वह बड़े निष्ठुर हैं, अम्माँ ?

अहल्या रो रही थी, कुछ न बोल सकी। उसका कण्ठ-स्वर अश्रु-प्रवाह में डूबा जा रहा था।

शंखधर ने फिर कहा—मुझे तो मालूम होता है अम्माँजी कि वह बहुत ही निर्दयी है, इसी से उन्हे हम लोगो का दु:ख नही जान पडता। मेरा तो कभी-कभी ऐसा चित्त होता है कि देखूं तो प्रणाम तक न करूँ, कह दूं--आप मेरे होते कौन है, आप ही ने तो हम लोगो को त्याग दिया है।

अब अहल्या चुप न रह सकी, काँपते हुए स्वर में बोली—बेटा, उन्होने हमें त्याग नही दिया है। वहाँ उनकी जो दशा हो रही होगी, उसे मै ही जानती हूँ। हम लोगों की याद एक क्षण के लिए भी उनके चित्त से न उतरती होगी। खाने-पीने का ध्यान भी न रहता होगा। हाय ! यह सब मेरा ही दोष है, बेटा ! उनका कोई दोष नही।

शंखधर ने कुछ लज्जित होकर कहा—अच्छा अम्माँजी, यदि मुझे देखें, तो पहचान जाएँ कि नही ?

अहल्या—तुझे ? मैं तो जानती हूँ, न पहचान सके। तब तू बिलकुल जरा-सा बच्चा था। आज उनको गये दसवाँ साल है। न-जाने कैसे होगे। भगवान् करे जहाँ रहें, कुशल से रहें। बदा होगा, तो कभी भेंट हो ही जायगी।

शंखधर अपनी ही धुन में मस्त था। उसने यह बातें सुनी ही नही। बोला—लेकिन अम्माँ जी, मैं तो उन्हें देखकर फौरन पहचान जाऊँ। वह चाहे किसी वेष में हों, मैं पहचान लूँगा।

अहल्या—नही बेटा, तुम भी उन्हें न पहचान सकोगे। तुमने उनकी तस्वीरे ही तो देखी है। ये तस्वीरें बारह साल पहले की है। फिर, उन्होने केश भी बढ़ा लिए होंगे।

शंखधर ने कुछ जवाब न दिया ! बगीचे में जाकर दीवारों को देखता रहा फिर अपने कमरे मे आया और   बैठकर कुछ सोचने

एकाएक उसे ख्याल आया ऐसा न हो कि लोग मेरी तलाश में निकलें थाने मे हुलिया लिखाय, खुद भी परेशान हो, मुझ भी परेशान कर इसलिए उन्हे इतना बतला देना चाहिए कि मैं कहा और किस काम के लिए जा रहा हूं। अगर किसी ने मुझ जबरदस्ती लाना चाहा, तो अच्छा न होगा। हमारी खुशी है; जब चाहेगे आयेंगे; हमारा राज्य तो कोई नही उठा ले जाएगा। उसने एक कागज पर पत्र लिखा और अपने बिस्तर पर रख दिया।

आधी रात बीत चुकी थी। शंखधर एक कुर्त्ता पहने हुए कमरे से निकला। बगल के कमरे में राजा साहब आराम कर रहे थे। वह पिछवाड़े की तरफ बाग में गया और एक अमरूद के पेड पर चढकर बाहर की तरफ कूद पड़ा। अब उसके सिर पर तारिकामण्डित नीला आकाश था, सामने विस्तृत मैदान और छाती में उल्लास, शंका और आशा से धडकता हुआ हृदय। वह बड़ी तेजी से कदम वढाता हुआ चला, कुछ नहीं मालूम कि किधर जा रहा है, तकदीर कहाँ लिए जाती है।

२२

पाँच वर्ष व्यतीत हो गए ! पर न शंखधर का कहीं पता चला न चक्रधर का। राजा विशालसिंह ने दया और धर्म को तिलाञ्जली दे दी है और खूब दिल खोलकर अत्याचार कर रहे हैं। दया और धर्म से जो कुछ होता है, उसका अनुभव करके अब वह यह अनुभव करना चाहते हैं कि अधर्म और अविचार से क्या होता है। प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार किये जा रहे है। उनकी फरियाद कोई नही सुनता। राजा साहब को किसी पर दया नहीं आती। अब क्या रह गया है, जिसके लिए वह धर्म का दामन पकड़ें ? वह किशोर अब कहाँ है, जिसके दर्शन-मात्र से हृदय मे प्रकाश का उदय हो जाता था ? वह जीवन और मृत्यु की सभी आशाओ का आधार कहाँ चला गया ? कुछ पता नही। इतने प्राणियों में केवल एक मनोरमा है, जिसने अभी तक धैर्य का दामन नहीं छोडा; लेकिन उसकी अब कोई नहीं सुनता। राजा साहव अब उसकी सूरत भी नही देखना चाहते। वह उसी को सारी विपत्ति का मूल कारण समझते हैं। वही मनोरमा जो उनकी हृदयेश्वरी थी, जिसके इशारे पर रियासत चलती थी, अब भवन में भिखारिनी की भाँति रहती है, कोई उसकी बात तक नही पूछता। वह इस भीषण अन्धकार मे अब दीपक की भाँति जल रही है। पर उसका प्रकाश केवल अपने ही तक रह जाता है। अन्धकार में प्रसारित नहीं होता।

संध्या हो गयी है। सूर्यदेव पहाड़ियों की आड़ मे छिप गये हैं। रमणियाँ जल भरने के लिए कुएँ पर आ गयी हैं। इसी समय एक युवक हाथ में एक खंजरी लिए आकर कुएँ की जगत पर बैठ गया। यही शंखधर है। उसके वर्ण, रूप और वेष मे इतना परिवर्तन हो गया है कि शायद अहल्या भी उसे देखकर चौक पडती। यह वह तेजस्वी किशोर नही, उसकी छाया मात्र है। उसका मांस गल गया है केवल अस्थि-पंजर मात्र रह गया है मानो किसी भयकर रोग से ग्रस्त रहने के बाद उठा हो

एक रमणी ने उसकी ओर देखकर पूछा—कहाँ से आते हो परदेसी बीमार मालूम होते हो ?

शंखधर ने आकाश की ओर अनिमेष नेत्रों से देखते हुए कहा—बीमार तो नही हूँ माता, दूर से आते-आते थक गया हूँ।

यह कहकर उसने अपनी खंजरी उठा ली और उसे बजाकर गाने लगा।

इस क्षीणकाय युवक के कण्ठ मे इतना स्वर-लालित्य, इतना विकल अनुराग था कि रमणियाँ चित्रवत् खडी रह गयी।

एक युवती ने पूछा—बाबाजी, अब तो बहुत देर हो गयी है, यही ठहर जाओ न। आगे तो बहुत दूर तक कोई नहीं है।

शंखधर—आपकी इच्छा है माता, तो यही ठहर जाऊँगा। भला, माताजी यहां कोई महात्मा तो नही रहते ?

दूसरी रमणी ने कहा—अभी कई दिन हुए, एक महात्मा आकर टिके थे, पर वह साधुओं के भेष में न थे। वह यहाँ एक महीने-भर रहे। तुम एक दिन पहले यहाँ आ जाते, तो उनके दर्शन हो जाते।

एक वृद्धा बोली—साधु-सन्त तो बहुत देखे; पर ऐसा उपकारी जीव नही देखा। तुम्हारा घर कहाँ है बेटा ?

शंखधर—कहाँ बताऊँ माता, यों ही घूमता-फिरता हूँ।

वृद्धा—अभी तुम्हारे माता-पिता है न बेटा ?

शंखधर—कुछ मालूम नहीं माता ! पिताजी तो बहुत दिन हुए, कहीं चले गये ! मैं तब दो-तीन वर्ष का था। माताजी का हाल नही मालूम।

वृद्धा—तुम्हारे पिता क्यो चले गये ? तुम्हारी माता से कोई झगड़ा हुआ था ?

शंखधर—नही माताजी, झगड़ा तो नहीं हुआ। गृहस्थी के माया-मोह में नही पडना चाहते थे।

वृद्धा—तो तुम्हें घर छोड़े कितने दिन हुए ?

शंखधर—पाँच साल हो गये, माता ! पिताजी को खोजने निकल पडा था, पर अब तक कही पता न चला

एक युवती ने वृद्धा से कहा—अम्मा इनकी सूरत महात्माजी से मिलती है कि नहीं, कुछ तुम्हे दिखायी देता है ?

वृद्धा—हाँ रे, कुछ-कुछ मालूम तो होता है। क्यों बेटा, तुम्हारे पिताजी की क्या अवस्था होगी ?

शंखधर—४० वर्ष के लगभग होगी।

वृद्धा—आँखे खूब बड़ी-बड़ी है ?

शंखधर—हाँ माताजी, उतनी बडी आँखें तो मैंने किसी की देखी ही नहीं।

वृद्धा—लम्बे-लम्बे गोरे आदमी है ?

शंखधर का हृदय धक-धक करने लगा। बोला—हाँ माताजी, उनका रंग बहुत गोरा है।

वृद्धा—बेटा, जिन महात्मा की मैंने तुमसे चर्चा की हैं, उनकी सूरत तुमसे बहुत मिलती है।

शंखधर—माता, कुछ बता सकती हो, वह यहाँ से किधर गये ?

वृद्धा—यह तो कुछ नही कह सकती, पर वह उत्तर ही की ओर गये हैं।

शंखधर ने काँपते हुए हृदय से पूछा—उनका नाम क्या था माताजी ?

वृद्धा—नाम तो उनका था भगवानदास, पर यह उनका असली नाम नहीं मालूम होता था; असली नाम कुछ और ही था।

एक युवती ने कहा—यहाँ उनकी एक तस्वीर भी तो रखी हुई है !

शंखधर का हृदय शतगुण वेग से धड़क रहा था। बोला—जरा वह तस्वीर मुझे दिखा दीजिये, आपकी बड़ी कृपा होगी।

युवती लपकी हुई घर गयी और एक क्षण में तस्वीर लिये हुये लौटी।

आशा, भय चिन्ता और अस्थिरता से व्यग्र होकर वह हतबुद्धि-सा खड़ा रह गया, मानो किसी पुरानी बात को याद कर रहा हो।

सहसा उसने निद्रा से जगे हुए मनुष्य की भाँति पूछा—वह इधर उत्तर ही की ओर गये है न ? आगे कोई गाँव पड़ेगा ?

वृद्धा—हाँ बेटा, पाँच कोस पर गाँव है ! भला-सा उसका नाम है, हाँ साईंगंज, लेकिन आज तो तुम यहीं रहोगे ?

शंखधर ने केवल इतना कहा—नहीं माता, आज्ञा दीजिये। और खजरी उठाकर चल खड़ा हुआ।

रात्रि के उस अगम्य अन्धकार में शंखधर भागा चला जा रहा था। उसके पैर पत्थर के टुकडो से चलनी हो गये थे। सारी देह थककर चूर हो गयी थी, भूख के मारे आँखो के सामने अँधेरा छाया जाता था, प्यास के मारे कण्ठ में काँटे पड रहे थे, पैर कहीं रखता था, पडते कहीं थे; पर वह गिरता पड़ता भागा चला जाता था। अगर वह प्रात:काल तक साईंगंज पहुँचा, तो सम्भव है, चक्रधर कहीं चले जायँ और फिर उस अनाथ की पाँच साल की मेहनत और दौड़-धूप पर पानी न फिर जाय।

हिंस्र पशुओं का भयंकर गर्जन सुनाई देता था, अँधेरे में खड्ड और खाई का पता न चलता था, पर उसे अपने प्राणों की चिंता न थी। उसे केवल यह धुन थी—'मुझे सूर्योदय से पहले साईंगंज पहुँच जाना चाहिये।'

गगन-मण्डल पर उषा का लोहित प्रकाश छा गया। तारागण किसी थके हुए पथिक की भाँति अपनी उज्ज्वल आँखे बन्द करके विश्राम करने लगे। पक्षीगण वृक्षों पर चहकने लगे, पर साईंगंज का कहीं पता न चला।

सहसा एक बहुत दूर की पहाड़ी पर कुछ छोटे-छोटे मकान बालिकाओं के घरौंदे की तरह दिखायी दिये। यह साईंगंज आ गया। शंखधर का कलेजा धक-धक करने लगा। उसके जीर्ण शरीर में अद्भुत स्फूर्ति का संचार हो गया, पैरो में न जाने कहाँ से दुगना बल आ गया।

पहाड़ी की चढाई कठिन थी। शंखधर को ऊपर चढने का रास्ता न मालूम था, न कोई आदमी ही दिखाई देता था, जिससे रास्ता पूछ सके। वह कमर बाँध कर चढने लगा।

गाँव के आदमी ने ऊपर से

भाई ? रास्ता तो पश्चिमी ओर से है कहीं पर फिसल जाय तो २०० हाथ नीचे जाओ

लेकिन शंखधर को इन बातों के सुनने की फ़ुरसत कहाँ थी ? दम-के-दम में वह ऊपर पहुँच गया और पूछा—बाबा भगवानदास अभी यहीं हैं न ?

किसान—कौन बाबा भगवानदास ?

शंखधर—बाबा भगवानदास को नहीं जानते ? वह इसी गाँव में तो आये हैं ? साईंगंज यही है न ?

किसान—साईंगंज ! अ-र-र ! साईंगंज तो तुम पूरब छोड़ आये। इस गाँव का नाम बेंदो है।

शंखधर ने हताश होकर कहा—तो साईंगंज यहाँ से कितनी दूर है ?

किसान—साईंगंज तो पड़ेगा यहाँ से कोई पाँच कोस; मगर रास्ता बहुत बीहड़ है।

शंखधर कलेजा थामकर बैठ गया। पाँच कोस की मंजिल, उस पर रास्ता बीहड़ ! उसने आकाश की ओर एक बार नैराश्य में डूबी हुई आँखों से देखा और सिर झुकाकर सोचने लगा—यह अवसर फिर हाथ न आयेगा ? अगर आराध्यदेव के दर्शन आज न किये, तो फिर न कर सकूँगा।

बैठने का समय फिर आयेगा। आज या तो इस तपस्या का अन्त हो जायगा, या इस जीवन का हो ! वह उठ खड़ा हुआ।

किसान ने कहा—क्या चल दिये भाई ? चिलम-विलम तो पी लो।

लेकिन शंखधर इसके पहले ही चल चुका था। वह कुछ नहीं देखता, कुछ नहीं सुनता, चुपचाप किसी अन्य शक्ति की भाँति चला जा रहा है। रास्ते में जो मिलता, उससे वह पूछता, साईंगंज कितनी दूर है ? जवाब मिलता—बस, आगे साईंगंज ही है। लेकिन जब आगे वाली बस्ती में पहुँच कर पूछता—क्या यही साईंगंज है, तो फिर यही जवाब मिलता—बस, आगे साईंगंज है। आखिर दोपहर होते-होते उसे दूर से एक मन्दिर का कलश दिखायी दिया। एक चरवाहे से पूछा—यह कौन गाँव है ? उसने कहा—साईंगंज आ गया !

लेकिन ज्यों ज्यों गाँव निकट आता था शंखधर के पाँव सुस्त पड़ते जाते थे। उसे यह शंका होने लगी कि वह यहाँ से चले न गये हों अब उनसे भेंट न होगी वह इस शंका को कितना ही दिल से निकालना चाहता था, पर वह अपना आसन न छोड़ती थी।

साईंगंज दिखायी देने लगा। स्त्री-पुरुष खेतों में अनाज काटते नजर आने लगे। अब वह गाँव के डाँड़ पर पहुँच गया। कई आदमी उसके सामने से होकर निकल भी गये; पर उसने किसी से कुछ नहीं पूछा। अगर किसी ने कह दिया—बाबा जी हैं, तो वह क्या करेगा? इसी असमंजस में पड़ा हुआ वह मन्दिर के सामने के चबूतरे पर बैठ गया। सहसा मन्दिर में से आदमी को निकलते देखकर वह चौंक पड़ा, अनिमेष नेत्रों से उसकी ओर एक क्षण देखा, फिर उठा कि उस पुरुष के चरणों पर गिर पडे, पर पैर थरथरा गये, मालूम हुआ, कोई नदी उसकी ओर बही चली आती है—वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

शंखधर को होश आया, तो अपने को मन्दिर के बरामदे में चक्रधर की गोद में पड़ा हुआ पाया। चक्रधर चिन्तित नेत्रों से उसके मुँह की ओर ताक रहे थे। गाँव के कई आदमी आस-पास खड़े पंखा झल रहे थे। आह! आज कितने दिनों के बाद शंखधर को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है! वह पिता की गोद में लेटा हुआ है!

शंखधर ने फिर आँखे बन्द कर लीं।

चक्रधर ने स्नेह-मधुर स्वर में पूछा—क्यों बेटा, अब कैसी तबीयत है?

कितने स्नेह-मधुर शब्द थे! किसी के कानों ने कभी इतने कोमल शब्द सुने है? उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसका जी चाहा, इन चरणों पर सिर रखकर खूब रोये। इससे बढ़कर और किसी सुख की वह कल्पना ही न कर सकता था।

ने फिर पूछा क्यों बेटा कैसी तबीयत है?

शखधर मैं आप ही के दशनो के लिए आया हू आपके दशन हुए, मै कृताथ हो गया। अब मेरे सकट कट जायगे आप ही मेरा उद्धार कर सकते है

चक्रधर का चित्त अस्थिर हो गया। उस युवक के रूप और वाणी मे न-जाने कौन-सी बात थी, जो उनके मन में उससे बात-चीत करने की प्रबल इच्छा हो रही थी। जरा पूछना चाहिए कि यह युवक कौन है ? क्यों मुझसे मिलने के लिए इतना उत्सुक है ? कितना सुशील बालक है ! इसकी वाणी में कितना विनय है और स्वरूप देवकुमारों का-सा है।

एक आदमी पानी लाया। शखधर ने मुँह-हाथ धोया और चाहता था कि खाली पेट पानी पी ले; लेकिन चक्रधर ने मना किया—हाँ-हाँ, यह क्या ? अभी पानी न पियो। आओ, कुछ भोजन कर लो।

शखधर—बड़ी प्यास लगी है।

चक्रधर—पानी कहीं भागा तो नहीं जाता। कुछ खाकर पीना, और वह भी इतना नहीं कि पेट में पानी डोलने लगे।

शंखधर—दो ही घूँट पीलूँ, नही रहा जाता।

चक्रधर ने आकर उसके हाथ से लोटा छीन लिया और कठोर स्वर में कहा—अभी तुम एक बूँद पानी नहीं पी सकते। क्या जान देने पर उतारू हो गये हो !

शंखधर को इस भर्त्सना में जो आनन्द मिल रहा था, वह कभी माता की प्रेम-भरी बातो में भी न मिला था।

मन्दिर के पीछे छोटा-सा बाग और कुआँ था। वहीं एक वृक्ष के नीचे चक्रधर की रसोई बनी थी। चक्रधर अपना भोजन आप पकाते थे, बर्तन भी आप ही धोते थे, पानी भी खुद खींचते थे। शंखधर उनके साथ भोजन करने गया, तो देखा कि रसोई में पूरी, मिठाई, दूध, दही, घी सब कुछ है। उसे कितना आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा कि ये सारे पदार्थ उसी के लिए मँगवाये गये है। चक्रधर ने उसके लिए खाना पत्तल में रख दिया और आप कुछ रोटियाँ और भाजी लेकर बैठे, जो खुद उन्होंने बनायी थी।

शखधर ने कहा आप तो सब मुझी को दिये जाते है अपने लिए कुछ रखा ही नही

चक्रधर मैं तो बेटा रोटियों के सिवा और कुछ नहीं खाता मेरी पाचन शक्ति अच्छी नहीं है। दिन में एक बार खा लिया करता हूँ।

शंखधर—अगर आप न खायेंगे, तो मैं भी न खाऊँगा।

आखिर शंखधर के आग्रह से चक्रधर को अपना सोलह वर्षों का पाला हुआ नियम तोड़ना पड़ा। उन्होंने झुँझलाकर कहा—भाई, तुम बड़े जिद्दी मालूम होते हो। अच्छा, लो, मैं भी खाता हूँ।

उन्होंने सब चीजों में से जरा-जरा सा निकालकर अपनी पत्तल में रख लिया और बाकी चीजें शंखधर के आगे रख दी।

शंखधर—आपने तो केवल उलाहना छुड़ाया है। लाइए मैं परस दूँ।

चक्रधर—अगर तुम इस तरह जिद करोगे, तो मैं तुम्हारी दवा न करूँगा।

शंखधर—मुझे क्या, न दवा कीजिएगा, तो यहीं पड़ा-पड़ा मर जाऊँगा। कौन कोई रोने वाला बैठा हुआ है?

यह कहते-कहते शंखधर की आँखें सजल हो गयी। चक्रधर ने विकल होकर कहा—अच्छा लाओ, तुम्हीं अपने हाथ से दे दो। अपशब्द क्यों मुँह से निकालते हो?

शंखधर ने सभी चीजों में से आधी से अधिक उनके सामने रख दी, और आप एक पंखा लेकर उन्हें झलने लगा। चक्रधर ने वात्सल्यपूर्ण कठोरता से कहा—मालूम होता है, आज तुम मुझे बीमार करोगे। भला, इतनी चीजें मैं खा सकूँगा?

शंखधर—इसीलिए तो मैंने थोड़ी-थोड़ी दी है।

चक्रधर—यह थोड़ी-थोड़ी है। तो क्या तुम सब की सब मेरे ही पेट में ठूँस देना चाहते हो? अब भी बैठोगे या नहीं? मुझे पंखे की जरूरत नहीं

शंखधर मेरी बहुत दिनों से यही आकांक्षा थी। जब से आपकी कीर्ति सुनी तभी से यह अवसर खोज रहा था

चक्रधर को फिर हार माननी पड़ी। वह एकान्तवासी, संयमी, व्रतधारी योगी आज इस अपरिचित दीन बालक के दुराग्रहों को किसी भाँति न टाल सकता था।

चक्रधर जब भोजन करके उठ गये, तो उसने उसी पत्तल में अपनी पत्तल की चीजें डाल ली और भोजन करने बैठा। ओह! इस भोजन मे कितना स्वाद था! क्या सुधा में इतना स्वाद हो सकता है!

चक्रधर हाथ-मुँह धोकर गद्‌गद् कण्ठ से बोले तुमने आज मेरे दो नियम भंग कर दिये। बिना जाने बूझे किसी को मेहमान बना लेने का यही फल होता है। मैं ऐसे जिद्दी लड़के को अपने साथ और न रखूँगा। तुम्हारा घर कहाँ है? यहाँ से कितनी दूर है?

शंखधर—मेरे तो कोई घर ही नही।

चक्रधर—माता-पिता तो होंगे? वह किस गाँव में रहते हैं?

शंखधर—यह मुझे कुछ नही मालूम। पिताजी तो मेरे बचपन ही में घर से चले गये थे और माताजी का पाँच साल से मुझे कोई समाचार नहीं मिला।

चक्रधर को ऐसा मालूम हुआ, मानो पृथ्वी नीचे खिसकी जा रही है, मानो वह जल मे बहे जा रहे है। पिता बचपन ही में घर से चले गये और माताजी का पाँच साल से कुछ समाचार नहीं मिला? भगवान, क्या यह वही नन्हा-सा बालक है जिसे अपने हृदय से निकालने की चेष्टा करते हुए आज १६ वर्षों से अधिक हो गये!

उन्होंने हृदय को सँभालते हुए पूछा—तुम पाँच साल तक कहाँ रहे बेटा, जो घर नहीं गये?

शंखधर—पिताजी को खोजने निकला था और जब तक वह न मिलेंगे, लौटकर घर न जाऊँगा।

चक्रधर को ऐसा मालूम हुआ, मानो पृथ्वी डगमगा रही है, मानो समस्त ब्रह्माण्ड एक प्रलयंकारी भूचाल से आन्दोलित हो रहा है। वह सायबान के स्तम्भ के सहारे बैठ गये और ऐसे स्वर में बोले जो आशा और भय के वेगों को दबाने के कारण क्षीण हो गया था यह प्रश्न न था

बल्कि एक जानी हुई बात का समर्थन मात्र था तुम्हारा नाम क्या है बेटा ? वह धड़कते हुए हृदय से उत्तर की ओर कान लगाये थे जैसे कोई अपराधी अपना कर्मदण्ड सुनने के लिए न्यायाधीश की ओर कान लगाये खड़ा हो।

शंखधर ने जवाब दिया—मेरा नाम तो शंखधरसिंह है।

चक्रधर—और तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

शंखधर—उन्हें मुंशी चक्रधरसिंह कहते है।

चक्रधर—घर कहाँ है ?

शंखधर—जगदीशपुर !

सर्वनाश ! चक्रधर को ऐसा ज्ञात हुआ कि उनकी देह से प्राण निकल गये है, मानो उनके चारों ओर शून्य है। 'शंखधर !' बस, यही एक शब्द उस प्रशस्त शून्य में किसी पक्षी की भाँति चक्कर लगा रहा था। 'शंखधर !' यही एक स्मृति थी, जो उस प्राण-शून्य दशा में चेतना को संस्कारों में बाँधे हुए थी।

शंखधर को अपने पिता के साथ रहते एक महीना हो गया। न वह जाने का नाम लेता है, न चक्रधर ही जाने को कहते है। शंखधर इतना प्रसन्न चित्त रहता है मानो अब उसके लिए संसार में कोई दु:ख, कोई बाधा नही है। इतने ही दिनों में उसका रंग-रूप कुछ और हो गया है। मुख पर यौवन का तेज झलकने लगा और जीर्ण शरीर भर आया है। मालूम होता है, कोई अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारी ऋषिकुमार है।

चक्रधर को अपने हाथो कोई काम नहीं करना पड़ता। शंखधर कभी उन्हे अपनी धोती भी नही छाँटने देता। दोनो प्राणियो के जीवन का वह समय सबसे आनन्दमय होता है, जब एक प्रश्न करता है और दूसरा उत्तर देता है। बाबाजी अपने जीवन के सारे अनुभव, दर्शन, धर्म, इतिहास की सारी बातें घोलकर पिला देना चाहते है। दूसरों से उसकी सज्जनता और सहनशीलता का बखान सुनकर उन्हे कितना गर्व होता है ! वह मारे आनन्द से गद्‌गद् हो जाते है, उनकी आँखे सजल हो जाती हैं। सब जगह यह बात खुल गयी है कि यह युवक उनका पुत्र है। दोनों सूरते इतनी मिलती है कि चक्रधर के इन्कार करने पर भी किसी को विश्वास नहीं आता जो बात सब जानते हैं, उसे वह स्वयं नहीं जानते और न जानना

शंखधर को कभी कभी प्रबल इच्छा होती थी कि पिताजी के चरणों पर गिर पड़ूं और साफ-साफ कह दूं। उसी के मन में यह इच्छा नहीं थी चक्रधर भी कभी कभी पुत्र प्रेम से विकल हो जाते और चाहते कि उसे गले लगाकर कहूं—बेटा, तुम मेरी ही आंखों के तारे हो; तुम मेरे ही जिगर के टुकड़े हो। वह शंखधर के मुख से उसकी माता की विरह-व्यथा दादी के शोक और दादा के क्रोध की कथाएँ सुनते कभी न थकते थे। रानी जी उससे कितना प्रेम करती थीं; यह चर्चा सुनकर चक्रधर बहुत दुखी हो जाते थे।

इस तरह एक महीना गुजर गया और अब शंखधर को यह फिक्र हुई कि इन्हें किस बहाने से घर ले चलूँ। अहा, कैसे आनन्द का समय होगा, जब मैं इनके साथ घर पहुँचूंगा!

लेकिन बहुत सोचने पर भी उसे कोई बहाना न मिला। तब उसने निश्चय किया कि माता जी को पत्र लिखकर यहीं क्यों न बुला लूँ? माता जी पत्र पाते ही सिर के बल दौड़ी आयेंगी। वह पछताया कि मैंने व्यर्थ ही इतनी देर लगायी। उसी रात को उसने अपनी माता के नाम पत्र डाल दिया। वहाँ का पता-ठिकाना, रेल का स्टेशन सभी बातें स्पष्ट करके लिख दीं!

एक महीना पूरा गुजर गया और न अहल्या ही आयी, और न कोई दूसरा ही। शंखधर दिन-भर उसकी बाट जोहता रहता। रेल का स्टेशन वहाँ से पाँच मील पर था। रास्ता भी साफ था। फिर भी कोई नहीं आया। चक्रधर जब कहीं चले जाते, तो वह चुपके से स्टेशन की राह लेता और निराश लौट आता। आखिर एक महीने के बाद तीसरे दिन उसे एक पत्र मिला; जिसे पढ़कर उसके शोक की सीमा न रही। अहल्या ने लिखा था—मैं बड़ी अभागिनी हूँ। तुम इतनी कठिन तपस्या करके जिस देवता के दर्शन कर पाये, उसके दर्शन करने की परम अभिलाषा होने पर भी मैं हिल नहीं सकती। एक महीना से बीमार हूँ, जीने की आशा नहीं। अगर तुम आ जाओ, तो तुम्हें देख लूँ, नहीं तो यह अभिलाषा भी साथ जायगी। मैं कई महीने हुए, आगरे में पड़ी हूँ। जी घबराया करता है। अगर किसी तरह स्वामीजी को ला सको, तो अन्त समय उनके चरणों के दर्शन भी कर लूँ। मैं जानती हूँ, वह न आयेंगे। व्यर्थ ही उनसे आग्रह न करना, मगर तुम आने में एक क्षण का भी विलम्ब न करना।

शंखधर डाकखाने के सामने खड़ा देर तक रोता रहा।

उसका मुख उतरा हुआ देखकर चक्रधर ने पूछा क्यों बेटा आज उदास क्यों मालूम होते हो ?

शंखधर—माता जी का पत्र आया है, वह बहुत बीमार है। मैं पिता जी को खोजने निकला था। वह तो न मिले, माताजी भी चली जा रही है। आपके पास बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर आया था, पर आपने भी अनाथ पर दया न की। आपको परमात्मा ने योगबल दिया है, आप चाहते, तो पिताजी की टोह लगा देते।

चक्रधर ने गम्भीर स्वर मे कहा—बेटा, मै योगी नहीं हूँ, पर तुम्हारे पिताजी की टोह लगा चुका हूँ, उनसे मिल भी चुका हूँ। वह गुप्त रीति से तुम्हें देख भी चुके है।

शंखधर आपने पिताजी से भेट की और मुझसे कुछ न कहा। इससे तो यह प्रकट होता है कि आपको मुझ पर दया नही आती।

चक्रधर ने कुछ जवाब न दिया। वह अत्यन्त कठिन परीक्षा में पड़े हुए थे। बहुत दिनो के बाद, अनायास ही उन्हे पुत्र का मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हो गया था। वे सारी भावनाएँ, जिन्हे वह दिल से निकाल चुके थे, जाग उठी और इस समय वियोग के भय से आर्तनाद कर रही थी। वह मोह-बन्धन, जिसे वे बडी मुश्किल से ढीला कर पाये थे, अब उन्हे शतगुण वेग से अपनी ओर खींच रहा था।

सहसा शखधर ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—तो मै निराश हो जाऊँ ?

चक्रधर ने हृदय से निकलते उच्छ्वास को दबाते हुए कहा—नहीं बेटा, सम्भव है, कभी वह स्वय पुत्र-प्रेम से विकल होकर तुम्हारे पास दौड़ जायँ। अगर तुम अपने जीवन में ऊँचे आदर्श का पालन कर सके, तो तुम उन्हें अवश्य खींच लोगे।

शंखधर—आपके दर्शन मुझे फिर कब होंगे ? आपका पता कैसे मिलेगा ? मैने आपको पिता-तुल्य ही समझा है और जीवन-पर्यन्त समझता रहूँगा। इन चरण-कमलों की भक्ति मेरे मन मे सदैव बनी रहेगी। आपके दर्शनों के लिए मेरी आत्मा सदैव विकल रहेगी और माताजी के स्वस्थ होते ही मैं फिर आपकी सेवा मे आऊँगा।

चक्रधर ने आर्द्र कण्ठ से कहा—नहीं बेटा, तुम यह कष्ट न करना। मैं स्वयं कभी-कभी तुम्हारे पास आया करूँगा। मैंने भी तुमको पुत्र-तुल्य

समझा है और सदैव समझता रहूँगा। मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा

संध्या समय शंखधर अपने पिता से विदा होकर चला। चक्रधर को ऐसा मालूम हो रहा था, मानो उनका हृदय वक्षस्थल को तोड़कर शंखधर के साथ चला जा रहा है। जब वह आँखों से ओझल हो गया, उन्होंने एक लम्बी साँस ली और बालकों की भाँति बिलख-बिलख कर रोने लगे।

उन्हें ऐसी भावना हुई कि फिर उस प्रतिभा-सम्पन्न युवक के दर्शन न होंगे!

२३

अभागिन अहल्या के लिए संसार सूना हो गया। पति को पहले ही खो चुकी थी। जीवन का एक मात्र आधार पुत्र रह गया था। उसे भी खो बैठी। अब वह किसका मुँह देखकर जियेगी ? वह राज्य उसके लिए किसी ऋषि का अभिशाप हो गया।

अहल्या को अब वह राज-भवन फाड़े खाता था। वह अब उसे छोड़ कर कहीं चली जाना चाहती थी। कोई सडा-गला झोंपडा, किसी वृक्ष की छाँह, पर्वत की गुफा, किसी नदी का तट उसके लिए इस भवन से सहस्रों गुना अच्छा था। वे दिन कितने अच्छे थे जब वह अपने स्वामी के साथ पुत्र को हृदय से लगाये एक छोटे से मकान में रहती थी। रह-रहकर उसको अपनी भोग-लिप्सा पर क्रोध आता था, जिसने उसका सर्वनाश कर दिया था। क्या उस पाप का कोई प्रायश्चित नही है। क्या इस जीवन में स्वामी के दर्शन न होंगे ? अपने प्रिय पुत्र की मोहनी मूर्ति फिर वह न देख सकेगी? कोई ऐसी युक्ति नही है ?

राज-भवन अब भूतो का डेरा हो गया है। उसका अब कोई स्वामी नही रहा। राजा साहब अब महीनो नही आते। वह अधिकतर इलाके में ही घूमते रहते है। उनके अत्याचार की कथायें सुनकर लोगों के रोये खड़े हो जाते हैं। सारी रियासत में हाहाकार मचा हुआ है। कहीं किसी गाँव में आग लगायी जाती है, किसी गाँव में कुएँ भ्रष्ट किये जाते हैं। राजा साहब को किसी पर दया नहीं आती। उनके सारे सद्भाव शंखधर के साथ चले गये। विधाता ने अकारण ही उन पर इतना कठोर आघात किया है। वह उस आघात का बदला दूसरो से ले रहे है।

अब राजा साहब के पास जाने का किसी को साहस नहीं होता। मनोरमा को देखकर तो वह जामे से बाहर हो जाते हैं। अहल्या भी उनसे कुछ कहते हुए थर-थर कापती है अपने प्यारों को खोजने के लिए वह

तरह तरह के मनसूब बाधा करती है लेकिन कहे किससे ? उसे ऐसा विदित होता है कि ईश्वर ने उसकी भोग लिप्सा का यह दण्ड दिया है यदि वह अपने पति के घर जाकर प्रायश्चित करे तो कदाचित ईश्वर उसका अपराध क्षमा कर दे ! लेकिन हाय रे मानव हृदय ! इस घोर विपत्ति में भी मान का भूत सिर से नही उतरता। जाना तो चाहती है, लेकिन उसके साथ यह शर्त है कि कोई बुलाये। अगर राजा साहब मुँशीजी से इस विषय में कुछ सकेत कर दे, तो उसके लिए अवश्य बुलावा आ जाय, पर राजा साहब से तो भेट ही नही होती और भेट भी होती है, तो कुछ कहने की हिम्मत नही पड़ती।

इसमें सन्देह नही कि वह अपने मन की बात मनोरमा से कह देती, तो बहुत आसानी से काम निकल जाता; लेकिन अहल्या का मन मनोरमा से न पहले कभी मिला था, न अब मिलता था। उससे यह बात कैसे कहती ?

एक दिन अहल्या का चित्त इतना उद्विग्न हुआ कि वह संकोच और झिझक छोड़कर मनोरमा के पास आ बैठी। मनोरमा के सामने प्रार्थी के रूप में आते हुए उसे जितनी मानसिक वेदना हुई, उसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि अपने कमरे से यहाँ तक आने मे उसे कम-से-कम दो घण्टे लगे। कितनी ही बार द्वार तक आकर लौट गयी। जिसकी सदैव अवहेलना की, उसके सामने अब अपनी गरज लेकर जाने में उसे लज्जा आती थी; लेकिन जब भगवान ने ही उसका गर्व तोड़ दिया था, तो अब झूठी ऐंठ से क्या हो सकता था।

अहल्या ने कहा—मैं प्रायश्चित करना चाहती हूँ। और आपसे उसके लिए सहायता माँगने आयी हूँ। मुझे अनुभव हो रहा है कि यह सारी विडम्बना मेरे विलास-प्रेम का फल है, और मैं इसका प्रायश्चित करना चाहती हूँ। मेरा मन कहता है कि यहाँ से निकलकर मैं अपना मनोरथ पा जाऊँगी। यह सारा दण्ड मेरी विलासान्धता का है। आप जाकर अम्माँजी से कह दीजिए, मुझे बुला लें। इस घर में आकर मैं अपना सुख खो बैठी और इस घर से निकल कर उसे पाऊँगी।

उसने कहा—अच्छा, अहल्या, मैं आज ही जाती हूँ।

इसके चौथे दिन मुंशी वज्रधर ने राजा साहब के पास रुखसती का

आप अहल्या का कलेजा धक धक करने लगा कि राजा साहब कहीं आ न जायँ इधर उधर छिपती फिरती थी कि उनका सामना न हो जाय उसे मालम होता था कि राजा साहब ने रुखसती मजूर कर ली है पर अब जाने के लिए वह बहुत उत्सुक न थी। यहाँ से जाना तो चाहती थी; पर जाते दु:ख होता था। वह इसी घर को अपना घर समझने लगी थी। ससुराल उसके लिए बिरानी जगह थी। कहीं निर्मला ने कोई बात कह दी, तो वह क्या करेगी? जिस घर से मान करके निकली थी, वहीं अब विवश होकर जाना पड़ रहा था। इन बातों को सोचते-सोचते आखिर उसका दिल इतना घबराया कि वह राजा साहब के पास जाकर बोली—आप मुझे क्यों विदा करते हैं? मैं नहीं जाती।

राजा साहब ने हँसकर कहा—कोई लड़की ऐसी भी है, जो खुशी से ससुराल जाती हो? और कौन पिता ऐसा है, जो लडकी को खुशी से विदा करता हो? मै कब चाहता हूं कि तुम जाओ; लेकिन मुंशी वज्रधर की आज्ञा है, और यह मुझे शिरोधार्य करनी पड़ेगी। वह लडके के बाप हैं, मैं लडकी का बाप हूं, मेरी और उनकी क्या बराबरी? और बेटी, मेरे दिल में भी अरमान है, उसके पूरा करने का और कौन अवसर आएगा? शंखधर होता, तो उसके विवाह में वह अरमान पूरा होता। अब वह तुम्हारे गौने मे पूरा होगा।

अहल्या इसका क्या जवाब देती?

दूसरे दिन से राजा साहब ने विदाई की तैयारियाँ करनी शुरू कर दी। सारे इलाके के सोनार पकड़ बुलाये गये और गहने बनने लगे। इलाके ही के दर्जी कपडे सीने लगे। हलवाइयों के कड़ाह चढ गये और पकवान बनने लगे। घर की सफाई और रंगाई होने लगी। राजाओं, रईसों और अफसरों को निमन्त्रण भेजे जाने लगे। सारे शहर की वेश्याओं को बयाने दे दिये गये। बिजली की रोशनी का इन्तजाम होने लगा। अहल्या यह सामान देख-देखकर दिल में झुंझलाती और शर्माती थी। सोचती—कहाँ-से-कहाँ मैंने यह विपत्ति मोल ले ली? अब इस बुढापे में मेरा गौना? मैं मरने की राह देख रही हूँ, यहाँ गौने की तैयारी हो रही है।

राजा विशालसिंह ने जिस हौसले से अहल्या का गौना किया- वह राजाओ रईसो में भी बहुत कम देखने में आता है। तहसीलदार साहब के

घर में इतनी चीजों का रखने का जगह भी न थी बर्तन कपड़े शीशे के सामान लकड़ी की अलभ्य वस्तुएं मेवे मिठाईयां, गाय भैंसे इनका हफ्तों तक तांता लगा रहा। दो हाथी और पांच घोड़े भी मिले जिनके बाँधने के लिए घर में जगह न थी। पांच लौंडियां अहिल्या के साथ आयी। यद्यपि तहसीलदार साहब ने नया मकान बनवाया था; पर वह क्या जानते थे कि एक दिन यहाँ रियासत जगदीशपुर की आधी सम्पत्ति आ पहुँचेगी ? घर का कोना-कोना सामानों से भरा हुआ था। कई पड़ौसियों के मकान भी अँट उठे। उस पर लाखों रुपये नकद मिले वह अलग। तहसीलदार साहब लाने को तो सब कुछ लाये, पर उन्हें देख-देख रोते और कुढ़ते थे। कोई भोगने वाला नहीं !

दिन में बीसों ही बार चक्रधर पर बिगड़ते—नालायक ! आप तो आप गया अपने साथ लड़के को भी ले गया। न जाने कहाँ मारा-मारा फिरता होगा, देश का उपकार करने चला है ! सच कहा है घर की रोये, बन की सोयें। घर के आदमी मरें, परवाह नहीं, दूसरों के लिए जान देने को तैयार। अब बताओ, इन हाथी, घोड़े, मोटरों और गाड़ियों को लेकर क्या करूँ ? अकेले किस-किस पर बैठूं ? बहू है, उसे रोने से फुरसत नहीं। बच्चा की माँ है, उनसे अब मारे शोक के उठा नहीं जाता, कौन बैठे। यह सामान तो मेरे जी का जंजाल हो गया है।

अहल्या यहाँ आकर और भी पछताने लगी। वह रनिवास के विलासमय जीवन से विरक्त होकर यहाँ प्रायश्चित करने के इरादे से आयी थी; पर वह विपत्ति उसके साथ यहाँ भी आयी। सम्पत्ति से गला छुड़ाना चाहती थी, पर सम्पत्ति उससे और चिमट गयी थी। वह वहाँ कुछ देर शान्ति से बैठ सकती थी, कुछ देर हँस-बोलकर जी बहला लेती थी। किसी के ताने-मेहने न सुनने पड़ते थे, यहाँ निर्मला वाणों से छेदती और घाव पर नमक छिड़कती रहती थीं। बहू के कारण वह पुत्र से वंचित हुई। बहू के ही कारण पोता भी हाथ से गया। ऐसी बहू को वह पान-फूल से पूज न सकती थी। सम्पत्ति लेकर वह क्या करे ? चाटे ? भोजन वह अब भी अपने हाथों ही पकाती थी। अहल्या के साथ जो महाराजिनें आयी थी, उनका पकाया हुआ भोजन वह ग्रहण न कर सकती थी। अहल्या से भी वह छूत मानती थी। इन दिनों मंगला आयी हुई थी। उसका जी चाहता था कि यहाँ की सारी चीजें समेट ले जाऊँ। पर अहल्या अपनी चीजों को

तीन-तेरह न होने देना चाहती थी और इससे ननद भावज में कभी-कभी खटपट हो जाती थी

इस तरह कई महीने गुजर गये; अहल्या का आशा-दीपक दिन-दिन मन्द होता गया। वह कितना ही चाहती थी कि मोह-बन्धन से अपने को छुड़ा ले; पर मन पर कोई वश न चलता था। उसके मन में बैठा हुआ कोई नित्य कहा करता था—जब तक मोह में पड़ी रहोगी, पति-पुत्र के दर्शन न होंगे। पर इसका विश्वास कौन दिला सकता था कि मोह टूटते ही उसके मनोरथ पूरे हो जायेंगे। तब क्या वह भिखारिणी होकर जीवन व्यतीत करेगी ? सम्पत्ति के हाथ से निकल जाने पर फिर उसके लिए कौन आश्रय रह जाएगा ?

अहल्या बार-बार व्रत करती कि अब अपने सारे काम अपने हाथ से करूँगी, अब सदा एक ही जून भोजन किया करूँगी, मोटा-से-मोटा अन्न खाकर जीवन व्यतीत करूँगी, लेकिन उसमें किसी व्रत पर स्थिर रहने की शक्ति न रह गयी थी। विलासिता ने उसकी क्रिया-शक्ति को निर्बल कर दिया था।

यहाँ रहकर यह अपने उद्धार के लिये कुछ न कर सकेगी, यह बात शनैः-शनैः अनुभव से सिद्ध हो गयी।

अब उसे वागीश्वरी की याद आयी। सुख के दिन वही थे, जो उसके साथ कटे। असली शंका न होने पर भी जीवन का जो सुख वहाँ मिला, वह फिर न नसीब हुआ। वह स्नेह, सुख स्वप्न हो गया। सास मिली वह इस तरह की, ननद मिली वह इस ढंग की, माँ थी ही नहीं, केवल बाप को पाया, मगर उसके बदले में क्या-क्या देना पड़ा।

अब अहल्या को रात-दिन यही धुन रहने लगी कि किसी तरह वागीश्वरी के पास चलूँ, मानो वहाँ उसके सारे दुःख दूर हो जायेंगे।

आखिर एक दिन अहल्या ने सास से यह चर्चा कर ही दी। निर्मला ने कुछ भी आपत्ति नहीं की। शायद वह खुश हुई कि किसी तरह यह यहाँ से टले। मंगला तो उसके जाने का प्रस्ताव सुनकर हर्षित हो उठी। जब वह चली जाएगी, तो घर में मंगला का राज हो जाएगा। जो चीज चाहेगी उठा ले जाएगी कोई हाथ पकड़ने वाला या टोकने वाला न रहेगा।

दूसरे दिन अहल्या वहाँ से चली अपने साथ कोई साज सामान न लिया साथ की लौंडियाँ चलने को तैयार थी पर उसने किसी को साथ न लिया केवल एक बुन्ढ कहार को पहुचाने के लिए ले लिया आगे उसे भी आगरे पहुँचने के दूसरे ही दिन विदा कर दिया।

आज २० साल के बाद अहल्या ने इस घर में फिर प्रवेश किया था, पर आह ! इस घर की दशा ही कुछ और थी, सारा घर गिर पडा था। न आँगन का पता था, न बैठक का। चारों ओर मलबे का ढेर जमा हो रहा था। उस पर मदार और धतूर के पौधे उगे हुए थे। एक छोटी-सी कोठरी बच रही थी। वागीश्वरी उसी मे रहती थी। उसकी सूरत भी उस घर के समान ही बदल गयी थी। न मुँह में दाँत, न आँखों में ज्योति; सिर के बाल सन हो गये थे, कमर झुककर कमान हो गयी थी। दोनों गले मिलकर खूब रोयी। जब आँसुओं का वेग कुछ कम हुआ, तो वागीश्वरी ने कहा—बेटी, तुम अपने साथ कुछ सामान नही लायी क्या ? दूसरी ही गाड़ी से लौट जाने का विचार है ? इतने दिनो के बाद आयी भी, तो इस तरह ! बुढिया को बिलकुल भूल ही गयी। खण्डहर में तुम्हारा जी क्यो लगेगा ?

अहल्या—अम्माँ, महल में रहते-रहते जी ऊब गया, अब कुछ दिन खण्डहर में ही रहूँगी और तुम्हारी सेवा करूँगी। जब से तुम्हारे घर से गयी, दु:ख-ही-दु:ख पाया, आनन्द के दिन तो इसी घर में बीते थे।

वागीश्वरी—लड़के का अभी कुछ पता न चला ?

अहल्या—किसी का पता नहीं चला, अम्माँ ! मै राज्य-सुख पर लट्टू हो गयी थी। उसी का दण्ड भोग रही हूँ। राज्य-सुख भोगकर तो जो कुछ मिलता है वह देख चुकी; अब उसे छोडकर देखूँगी कि क्या जाता है, मगर तुम्हें तो बड़ा कष्ट हो रहा है, अम्माँ ?

वागीश्वरी—कैसा कष्ट, बेटी ! जब तक स्वामी जीते रहे, उनकी सेवा करने में सुख मानती थी। तीर्थ, व्रत, पुण्य, धर्म सब कुछ उनकी सेवा ही मे था। अब वह नही है तो उनकी मर्यादा की सेवा कर रही हूँ। आज भी उनके कितने ही भक्त मेरी मदद करने को तैयार हैं, लेकिन क्यो किसी की मदद लूँ ? तुम्हारे दादाजी सदैव दूसरों की सेवा करते रहे। इसी मे अपनी उम्र काट दी। तो फिर मैं किस मुँह से सहायता के लिए हाथ फेलाऊं ?

यह कहते कहते वृद्धा का मुखमण्डल गर्व से चमक उठा उसकी आंखो में एक विचित्र स्फूर्ति झलकने लगी ! अहल्या का सिर लज्जा से झुक गया। माता तुझ धन्य है। तू वास्तव में सती है तू अपने ऊपर जितना गर्व करे, वह थोडा है।

वागीश्वरी ने फिर कहा- ख्वाजा महमूद ने बहुत चाहा कि मैं कुछ महीना ले लिया करूँ। मेरे मैके वाले कई बार मुझे बुलाने आये। यह भी कहा कि महीने मे कुछ ले लिया करो। भैया बडे भारी वकील हैं, लेकिन मैने किसी का एहसान नही लिया। पति की कमाई को छोडकर और किसी की कमाई पर स्त्री का अधिकार नही होता। चाहे कोई मुंह से न कहे; पर मन में जरूर समझेगा कि मै इन पर एहसान कर रहा हूँ। जब तक आँखें थी, सिलाई करती रही। जब से आँखे गयी दलाई करती हूँ। कभी-कभी उन पर जी झुंझलाता है। जो कुछ कमाया, उड़ा दिया। तुम तो देखती ही थी। ऐसा कौन-सा दिन जाता था कि द्वार पर चार मेहमान न आ जाते हों ! लेकिन फिर दिल में समझती हूँ कि उन्होने किसी बुरे काम मे तो धन नही उड़ाया ! जो कुछ किया, दूसरो के उपकार ही के लिए किया। यहाँ तक कि अपने प्राण भी दे दिये। फिर मैं क्यों पछताऊँ और क्यो रोऊँ ! यश सेत में थोड़े ही मिलता है, मगर मै तो अपनी बातो मे लग गयी। चलो, हाथ-मुंह धो डालो, कुछ खा-पी लो, तो फिर बाते करूँ।

लेकिन अहल्या हाथ-मुॅह धोने न उठी। वागीश्वरी की आदर्श पति-भक्ति देखकर उसकी आत्मा उसका तिरस्कार कर रही थी। अभागिनी ! इसे पति-भक्ति कहते हैं। सारे कष्ट झेलकर स्वामी की मर्यादा का पालन कर रही है। नैहर वाले बुलाते है और नही जाती, हालाकि इस दशा में मैके चली जाती, तो कोई बुरा न कहता। सारे कष्ट झेलती है और खुशी से झेलती है। एक तू है कि मैके की सम्पत्ति देखकर फूल उठी, अन्धी हो गयी। राजकुमारी और पीछे चलकर राजमाता बनने की धुन में तुझे पति की परवाह नहीं रही। तूने सम्पत्ति के सामने पति को कुछ न समझा, उसकी अवहेलना की। वह तुझे अपने साथ ले जाना चाहते थे, तू न गयी, राज्य-सुख तुझसे न छोड़ा गया ! रो, अपने कर्मो को।

वागीश्वरी ने फिर कहा—अभी तक तू बैठी ही है। हाँ- लौंडी पानी नहीं लायी न, कैसे उठगो ले, मैं पानी लाये देती हूं हाथ मुंह धो डाल

तब तक मैं तेरे लिए गरम रोटियाँ सकती हूँ देखूँ तुझे अब भी भाता है कि नहीं तू मेरी रोटियों का बहुत बखान करके खाती थी

अहल्या ये स्नेह मे सने शब्द सुनकर पुलकित हो उठी इस तू मे जो सुख था; वह 'आप' और 'सरकार' मे कहाँ। बचपन के दिन आँखों में फिर गये। एक क्षण के लिए उसे अपने सारे दु ख विस्मृत हो गये। बोली—अभी तो भूख-प्यास नहीं है अम्माँजी, बैठिए कुछ बाते कीजिए। मैं आप से दु:ख की कथा कहने के लिए व्याकुल हो रही हूँ। बताइए, मेरा उद्धार कैसे होगा ?

वागीश्वरी ने गम्भीर भाव से कहा—पति-प्रेम से वंचित होकर स्त्री के उद्धार का कौन उपाय है, बेटी! पति ही स्त्री का सर्वस्व है। जिसने अपना सर्वस्व खो दिया, उसे सुख कैसे मिलेगा ? जिसको लेकर तूने पति को त्याग दिया, उसको त्यागकर ही पति को पायेगी। जब तक धन और राज्य का मोह न छोडेगी, तुझे उस त्यागी पुरुष के दर्शन न होंगे।

अहल्या—अम्माँजी, सत्य कहती हूँ, मैं केवल शंखधर के हित का विचार करके उनके साथ न गयी।

वागीश्वरी—उस विचार मे क्या तेरी भोग-लालसा न छिपी थी ? खूब ध्यान करके सोच। तू इससे इन्कार नहीं कर सकती ?

अहल्या ने लज्जित होकर कहा—हो सकता है, अम्माँजी, मैं इन्कार नहीं कर सकती।

वागीश्वरी—सम्पत्ति यहाँ भी तेरा पीछा करेगी, देख लेना ? जो उससे भागता है, उसके पीछे दौड़ती है। मुझे शंका होती है कि कहीं तू फिर लोभ में न पड़ जाय। एक बार चूकी, तो १४ वर्ष रोना पड़ा, अब की चूकी तो बाकी उम्र रोते ही गुजर जाएगी।

अहल्या के आने की खबर पाकर मुहल्ले की सैकड़ो औरतें टूट पड़ी। शहर के कई बड़े घरों की स्त्रियाँ भी आ पहुँची। शाम तक ताँता लगा रहा। कुछ लोग डेपुटेशन बनाकर संस्थाओं के लिए चन्दे माँगने आ पहुँचे। अहल्या को इन लोगों से जान बचानी मुश्किल हो गयी। किस-किस से अपनी विपत्ति कहे ? अपनी गरज के बावले अपनी कहने में मस्त रहते है वह किसी की सुनते ही कब हैं इस वक्त अहल्या को फटे-हालों यहाँ आने

पर बड़ा लज्जा आथो वह जानता कि यहा यह हरबोग मच जायगा तो साथ दस-बीस हजार के नोट लेती आती उसे अब इस टूट फूट मकान में ठहरते भी लज्जा आती थी जब से देश ने जाना कि वह राजकुमारी ह तब से वह कही बाहर न गयी थी। कभी काशी रहना हुआ, कभी जगदीशपुर। दूसरे शहर में आने का उसे यह पहला ही अवसर था। अब उसे मालूम हुआ कि धन केवल भोग की वस्तु नहीं है, उससे यश और कीर्ति भी मिलती हैं। भोग से तो उसे घृणा हो गयी थी, लेकिन यश का स्वाद उसे पहली ही बार मिला। शाम तक उसने १५-२० हजार के चंदे लिख दिये और मुँशी वज्रधर को रुपये भेजने के लिए पत्र भी लिख दिया। खत पहुँचने की देरी थी। रुपये आ गये। फिर तो उसके द्वार पर भिक्षुओं का जमघट रहने लगा। लगड़ो-अंधों से लेकर जोड़ी और मोटर पर बैठने वाले भिक्षुक शिक्षा-दान माँगने आने लगे। कहीं से किसी अनाथालय के निरीक्षण करने का निमन्त्रण आता, कहीं से टी-पार्टी में सम्मिलित होने का। कुमारी-सभा, बालिका विद्यालय, महिला क्लब आदि सस्थाओं ने उसे मान-पत्र दिये, और उसने ऐसे सुन्दर उत्तर दिये कि उसकी योग्यता और विचार-शीलता का सिक्का बैठ गया। 'आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास' वाली कहावत हुई। तपस्या करने आयी थी, यहाँ सभ्य समाज की क्रीड़ाओ मे मग्न हो गयी। अपने अभीष्ट का ध्यान ही न रहा।

अहल्या को अब रोज ही किसी न किसी जलसे में जाना पड़ता, और वह बड़े शौक से जाती। दो ही सप्ताह में उसकी कायापलट-सी हो गयी। यश लालसा ने धन की उपेक्षा का भाव उसके दिल से निकाल दिया। वास्तव में वह समारोहो में अपनी मुसीबतें भूल गयी। अच्छे-अच्छे व्याख्यान तैयार करने में वह इतनी तत्पर रहने लगी, मानो उसे नशा हो गया है। वास्तव में यह नशा ही था। यश-लालसा से बढ़कर दूसरा नशा नहीं।

वागीश्वरी पुराने विचारों की स्त्री थी। उसे अहल्या का यों घूम-घूमकर व्याख्यान देना और रुपये लुटाना अच्छा न लगता था। एक दिन उसने कह ही डाला क्यों री अहल्या तू अपनी सम्पत्ति लुटा कर ही रहेगी ?

में यही बुराई है कि इससे विलासिता बढ़ती है, लेकिन इसमें परोपकार करने की सामर्थ्य भी है

वागीश्वरी ने परोपकार के नाम से चिढ़कर कहा- तू जो कर रही है, यह परोपकार नहीं, यश-लालसा है।

दूसरे दिन प्रातःकाल डाकिया शंखधर का पत्र लेकर पहुँचा जो जगदीशपुर और काशी से घूमता हुआ था। अहल्या पत्र पढ़ते ही उछल पड़ी और दौड़ी हुई वागीश्वरी के पास जाकर बोली—अम्माँ, देखो, लल्लू का पत्र आ गया। दोनों जने एक ही जगह है। मुझे बुलाया है।

वागीश्वरी—तो बस, अब तू चली ही जा। चल, मैं भी तेरे साथ चलूँगी।

अहल्या—आज पूरे पाँच साल के बाद खबर मिली है, अम्माँजी! मुझे आगरे आना फल गया। यह तुम्हारे आशीर्वाद का फल है, अम्माँजी।

वागीश्वरी—मैं तो उस लड़के के जीवट को बखानती हूँ कि बाप का पता लगाकर ही छोड़ा।

अहल्या—इस आनन्द में आज उत्सव मनाना चाहिए, अम्माँजी।

वागीश्वरी—उत्सव पीछे मनाना, पहले वहाँ चलने की तैयारी करो। कहीं और चले गये, तो हाथ मलकर रह जाओगी।

लेकिन सारा दिन गुजर गया और अहल्या ने यात्रा की तैयारी न की। वह अब यात्रा के लिए उत्सुक न मालूम होती थी। आनन्द का पहला आवेश समाप्त होते ही वह इस दुविधे में पड़ गयी थी कि वहाँ जाऊँ या न जाऊँ? वहाँ जाना केवल दस-पाँच दिन या महीने के लिए जाना न था वरन् राज-पाट से हाथ धो लेना और शंखधर के भविष्य को बलिदान करना था। वह जानती थी पितृभक्त शंखधर पिता को छोड़कर किसी भाँति न आयेगा और मैं भी प्रेम के बन्धन में फँस जाऊँगी। उसने यही निश्चय किया कि शंखधर को किसी हीले से बुला लेना चाहिए। उसका मन कहता था कि शंखधर आ गया, तो स्वामी के दर्शन भी उसे अवश्य होंगे। इस वक्त वहाँ जाकर वह अपनी प्रेमाकांक्षाओं की वेदी पर अपने पुत्र के जीवन को बलिदान न करेगी। जैसे इतने दिनों पति वियोग में जली है उसी तरह कुछ दिन और जलेगी उसने मन मे यह निश्चय करके

के पत्र का उत्तर दे दिया। लिखा मैं बीमार हूँ बचने की कोई आशा नहीं बस एक बार तुम्हे देखने की अभिलाषा है तुम आ जाओ तो शायद जी उठू लेकिन न आये तो समझ लो, अम्मा मर गयी . अहल्या को विश्वास था कि यह पत्र पढ़कर शंखधर दौड़ा चला आयेगा और स्वामी भी यदि उसके साथ न आयेंगे तो उसे आने से रोकेंगे भी नहीं।

संध्या समय वागीश्वरी ने पूछा—क्या जाने का इरादा नहीं है ?

अहल्या ने शर्माते हुए कहा—अभी तो अम्माँजी मैंने लल्लू को बुलाया है। अगर वह न आयेगा, तो चली जाऊँगी।

वागीश्वरी—लल्लू के साथ क्या चक्रधर भी आ जायेंगे ? तू ऐसा अवसर पाकर भी छोड़ देती है। न जाने तुझ पर क्या विपत्ति आने वाली है !

अहल्या अपने सारे दुःख भूलकर शंखधर के राज्याभिषेक की कल्पना में विभोर हो गयी।

२४

राजा विशालसिंह की हिंसा-वृत्ति किसी प्रकार शान्त न होती थी। ज्यो-ज्यो अपनी दशा पर उन्हें दु ख होता था, उनके अत्याचार और भी बढते थे। उनके हृदय मे अब सहानुभूति, प्रेम और धैर्य के लिए जरा भी स्थान न था। उनकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ 'हिंसा-हिंसा !' पुकार रही थी। इधर कुछ दिनों से उन्होंने प्रतिकार का एक और ही शस्त्र खोज निकाला था। उन्हे निस्सन्तान रखकर, मिली हुई सन्तान उनकी गोद से छीनकर दैव ने उनके साथ सबसे बड़ा अन्याय किया था। दैव के शस्त्रालय मे उनका दमन करने के लिए यही सबसे कठोर शस्त्र था। इसे राजा साहब उनके हाथो से छीन लेना चाहते थे। उन्होने सातवाँ विवाह करने का निश्चय कर लिया था। राजाओं के लिए कन्याओ की क्या कमी ? कई महीने से इस सातवे विवाह की तैयारियाँ बड़े जोरो से हो रही थीं। कई राजवैद्य रात-दिन बैठे भाँति-भाँति के रस बनाते रहते। पौष्टिक औषधियाँ चारों ओर से मँगायी जा रही थी। राजा साहब यह विवाह इतनी धूम-धाम से करना चाहते थे कि देवताओं के कलेजे पर साँप लोटने लगे।

रानी मनोरमा ने इधर बहुत दिनों से घर या रियासत के मामले मे बोलना छोड़ दिया था। वह बोलती भी, तो सुनता कौन ? राजा साहब को उसकी सूरत से घृणा हो गयी थी। मनोरमा के लिए अब वह घर नरक-तुल्य था। चुपचाप सारी विपत्ति सहती थी। उसे बड़ी इच्छा होती थी कि एक बार राजा साहब के पास जाकर पूछूँ, मुझसे क्या अपराध हुआ है, पर राजा साहब उसे इसका अवसर ही न देते थे।

मनोरमा को आये दिन कोई-न-कोई अपमान सहना पड़ता था। उसका गर्व चूर करने के लिए रोज कोई-न-कोई षड्यन्त्र रचा जाता था। पर वह उद्दण्ड प्रकृति वाली मनोरमा अब धैर्य और शान्ति का अथाह सागर है जिसमे वायु के हलके-हलके झोंके से कोई आन्दोलन नही होता वह

मस्क राकर सब कुछ शिरोधार्य करती जाती है। यह विकट मुस्कान उसका साथ कभी नहीं छोड़ती। नयी रानी साहब के लिए सुन्दर भवन बनवाया जा रहा था। उसकी सजावट के लिए एक बड़े आइने की जरूरत थी। हुक्म हुआ—छोटी रानी के दीवानखाने का बडा आईना उतार लाओ। मनोरमा ने यह हुक्म सुना और मुस्करा दी। फिर कालीन की जरूरत पड़ी। फिर वही हुक्म हुआ— छोटी रानी के दीवानखाने से लाओ। मनोरमा ने मुस्कराकर सारी कालीनें दे दी। इसके कुछ दिनों बाद हुक्म हुआ छोटी रानी की मोटर नये भवन में लायी जाय। मनोरमा इस मोटर को बहुत पसन्द करती थी, उसे खुद चलाती थी। यह हुक्म सुना, तो मुस्करा दिया। मोटर चली गयी।

मनोरमा के पास पहले बहुत-सी सेविकाएँ थी। इधर घटते-घटते यह संख्या तीन तक पहुँच गयी थी। एक दिन हुक्म हुआ कि तीन सेविकाओं में से दो नये महल में नियुक्त की जाएँ। उसके एक सप्ताह बाद वह एक भी बुला ली गयी। इस हुक्म का मनोरमा ने मुस्कराकर स्वागत किया।

मगर अभी सबसे कठोर आघात बाकी था। नयी रानी के लिए तो नया महल बन ही रहा था। उनकी माताजी के लिए एक दूसरे मकान की जरूरत पड़ी। इसलिए हुक्म हुआ कि छोटी रानी का महल खाली करा लिया जाय। रानी ने यह हुक्म सुना और मुस्करा दी। जिस हिस्से में पहले महरियाँ रहती थीं, उसी को उसने अपना निवास-स्थान बना लिया। द्वार पर टाट के परदे लगवा दिये। यहाँ भी वह उतनी ही प्रसन्न थी, जितनी अपने महल में।

रात अधिक बीत गयी थी। बाहर बारात की तैयारियाँ हो रही थी। ऐसा शानदार जुलूस निकालने की आयोजना की जा रही थी, जैसा इस नगर में कभी न निकला हो। गोरी फौज थी, काली फौज थी, रियासत का फौजी-बैंड था, कोतल घोड़े, सजे हुए हाथी, फूलों से सँवारी हुई सवारी-गाड़ियाँ, सुन्दर पालकियाँ—इतनी जमा की गयी थी कि शाम से घड़ी-रात तक उनका ताँता ही न टूटे। बैंड से लेकर डफले और नृसिंहे तक सभी प्रकार के बाजे थे। सैकड़ों ही विमान सजाये गये थे और फुलवारियों की तो गिनती ही नहीं थी। सारी रात द्वार पर चहल-पहल रही और सारी रात राजा साहब सजावट का प्रबन्ध करने में व्यस्त रहे

सारे शहर में इस जुलूस और इस विवाह का उपहास हो रहा था नौकर चाकर तक आपस मे हसी उडाते थे राजा साहब की चुटकियाँ लेते थे लेकिन अपनी धुन मे मस्त राजा साहब को कुछ न सूझता था कुछ न सुनाई देता था।

चार बजते-बजते बारात निकली। जुलूस की लम्बाई दो मील से कम न थी। भाँति-भाँति के बाजे बज रहे थे, रुपये लुटाये जा रहे थे, पग-पग पर फूलो की वर्षा की जा रही थी। सारा शहर तमाशा देखने को फटा पड़ता था।

इसी समय अहल्या और शंखधर ने नगर में प्रवेश किया और राज-भवन की ओर चले; किन्तु थोड़ी ही दूर गये थे कि बारात के जुलूस ने रास्ता रोक दिया। जब यह मालूम हुआ कि महाराज विशालसिंह की बारात है, तो शंखधर ने मोटर रोक दी और उस पर खड़े होकर अपना रूमाल हिलाते हुए जोर बोले—सब आदमी रुक जायँ, कोई एक कदम भी आगे न बढ़े। फौरन महाराज साहब को सूचना दो कि कुँवर शंखधर आ रहे है।

दम-के-दम में सारी बारात रुक गयी। 'कुंवर साहब आ गये!' यह खबर वायु के झोंके की भाँति इस सिरे से उस सिरे तक दौड़ गयी। जो जहाँ था वहीं खडा रह गया। फिर उनके दर्शन के लिए लोग दौड़-दौड कर जमा होने लगे। सारा जुलूस तितर-बितर हो गया। विशालसिह ने यह भगदड़ देखी, तो समझे कुछ उपद्रव हो गया।

उसी क्षण शंखधर ने सामने आकर राजा साहब को प्रणाम किया।

शंखधर को देखते ही राजा साहब घोड़े से कूद पड़े और उसे छाती से लगा लिया। आज इस शुभ-मुहूर्त में यह अभिलाषा भी पूरी हो गयी, जिसके नाम को वह रो चुके थे। बार-बार कुँवर को छाती से लगाते थे; पर तृप्ति ही न होती थी। आँखों से आँसू की झड़ी लगी हुई थी। जब जरा चित्त शान्त हुआ, तो बोले—तुम आ गये बेटा, मुझ पर बड़ी दया की। चक्रधर को लाए हो न?

शखधर ने कहा—वह तो नही आए।

राजा—आयेंगे. मेरा मन कहता है। मैं तो निराश हो गया था बेटा तुम्हारी माता भी चली गयी तुम पहले ही चले गये फिर मैं

किसका मुख देख कर जीता ? जीवन का कुछ आधार चाहिए। अहल्या तभी से न जाने कहाँ घूम रही है

शंखधर—वह तो मेरे साथ है।

राजा—अच्छा, वह भी आ गयी। वाह मेरे ईश्वर! सारी खुशियाँ एक ही दिन के लिए जमा कर रखी थी। चलो, उसे देखकर आँखें ठण्डी करूँ।

बारात रुक गयी। राजा साहब और शंखधर अहल्या के पास आये। पिता और पुत्री का सम्मिलन बड़े आनन्द का दृश्य था! कामनाओं के वृक्ष, जो मुद्दत हुई, निराशा-तुषार की भेंट हो चुके थे, आज लहलहाते, हरी-भरी पत्तियो से लदे हुए सामने खड़े थे। आँसुओं का वेग शान्त हुआ, तो राजा साहब बोले—तुम्हें यह बारात देखकर हँसी आती होगी। सभी हँस रहे हैं; लेकिन बेटा, यह बारात नही है। कैसी बारात और कैसा दूल्हा! यह विक्षिप्त हृदय का उद्‌गार है, और कुछ नही। मन कहता था—जब ईश्वर को मेरी सुधि नहीं, वह मुझ पर जरा भी दया नही करते, अकारण ही मुझे सताते हैं, तो मैं क्यों उनसे डरूँ? जब स्वामी को सेवक की फिक्र नही, तो सेवक को स्वामी की फिक्र क्यों होने लगी? मैंने उतना अन्याय किया, जितना मुझसे हो सका। धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य के विचार दिल से निकाल डाले। आखिर मेरी विजय हुई कि नही?

मुंशी वज्रधर ने यह शुभ समाचार सुना, तो फौरन घोड़े पर सवार हुए और राज-भवन आ पहुँचे। शंखधर उनके आने का समाचार पाकर नगे पाँव दौड़े और उनके चरणों को स्पर्श किया? मुंशीजी ने पोते को छाती से लगा लिया और गद्‌गद् कण्ठ से बोले—यह शुभ दिन भी देखना बदा था बेटा, इसी से अभी तक जीता हूँ। यह अभिलाषा पूरी हो गयी। बस इतनी लालसा और है कि तुम्हारा राज-तिलक देख लूँ? तुम्हारी दादी बैठी तुम्हारी राह देख रही है। क्या उन्हें भूल गये?

शंखधर ने लजाते हुए कहा—जी नहीं शाम को जाने का इरादा था। उन्ही के आशीर्वाद से तो मुझे पिताजी के दर्शन हुए। उन्हे कैसे भूल सकता हूँ?

मुंशी—तुम लल्लू को अपने साथ घसीट नही लाये?

वह अपने जीवन में जो पवित्र कार्य कर रहे हैं उसे छो

कर कभी न आते। मैंने अपने को जाहिर भी नहीं किया, नहीं तो शायद वह मुझसे मिलना भी स्वीकार न करते।

इसके बाद शंखधर ने अपनी यात्रा का, अपनी कठिनाइयों का और पिता से मिलने का सारा वृत्तान्त कहा।

यों बातें करते हुए मुंशीजी राजा साहब के पास जा पहुँचे। राजा साहब ने बड़े आदर से उनका अभिवादन किया और बोले—आप तो इधर का रास्ता ही भूल गये।

मुंशीजी—महाराज, अब आपका और मेरा सम्बन्ध और प्रकार का है। ज्यादा आऊँ-जाऊँ तो आप ही कहेंगे, यह अब क्या करने आते है, शायद कुछ लेने की नीयत से आते होंगे। कभी जिन्दगी में धनी नहीं रहा, पर मर्यादा की सदैव रक्षा की है।

राजा—आखिर आप दिन-भर बैठे-बैठे वहाँ क्या करते है, दिल नहीं घबराता?

मुंशीजी—अब तो राजकुमार का तिलक हो जाना चाहिए। आप भी कुछ दिन शान्ति का आनन्द उठा लें।

राजा—विचार तो मेरा भी है; लेकिन मुंशीजी, न-जाने क्या बात है कि जब से शंखधर आया है, क्यों मुझे शंका हो रही है कि इस मंगल में कोई-न-कोई विघ्न अवश्य पड़ेगा। दिल को बहुत समझाता हूँ; लेकिन न जाने क्यों यह शंका अन्दर से निकलने का नाम नहीं लेती।

मुंशीजी—आप ईश्वर का नाम लेकर तिलक कीजिए। जब टूटी हुई आशाएँ पूरी हो गयीं, तो अब सब कुशल ही होगी। आज मेरे यहाँ कुछ आनन्दोत्सव होगा। आजकल शहर में अच्छे-अच्छे कलावन्त आये हुए हैं; सभी आयेंगे। आपने कृपा की, तो मेरे सौभाग्य की बात होगी।

राजा—नहीं मुंशीजी, मुझे तो क्षमा कीजिए। मेरा चित्त शान्त नहीं है। आपसे सत्य कहता हूँ मुंशीजी, आज अगर मेरा प्राणान्त हो जाय, तो मुझसे बढ़कर सुखी प्राणी संसार में न होगा। शोक की पराकाष्ठा देख ली। आनन्द की पराकाष्ठा भी देख ली। अब और कुछ देखने की आकांक्षा नहीं है। डरता हूँ, कहीं पलड़ा फिर न दूसरी ओर झुक जाय।

मुंशीजी देर तक बैठे राजा साहब को तस्कीन देते रहे, फिर सब महिलाओं को अपने यहाँ आने का निमन्त्रण देकर और शंखधर को गले

लगाकर वह घोड पर सवार हो गये इस निर्द्वन्द्व जीव ने चिन्ताओ को कभी अपने पास नही फटकने दिया। धन की इच्छा थी ऐश्वर्य की इच्छा थी पर उन पर जान न देते थे सचय करना तो उन्होने सीखा ही न था। थोड़ा मिला तब भी अभाव रहा, बहुत मिला तब भी अभाव रहा। अभाव से जीवन-पर्यन्त उनका गला न छूटा। एक समय था, जब स्वादिष्ट भोजनों को तरसते थे। अब दिल खोलकर दान देने को तरसते हैं। क्या पाऊँ और क्या दे दूँ ? बस फिक्र थी तो इतनी ही। कमर झुक गयी थी, आँखो से सूझता भी कम था; लेकिन मजलिस नित्य जमती थी, हँसी-दिल्लगी करने में भी कभी न चूकते थे। दिल में कभी किसी से कीना नही रखा, और न कभी किसी की बुराई चेती।

दूसरे दिन संध्या समय मुँशीजी के घर बडी धूम-धाम से उत्सव मनाया गया। निर्मला पोते को छाती से लगाकर खूब रोयी। उसका जी चाहता था, यह मेरे ही घर रहता। कितना आनन्द होता! शंखधर से बाते करने से उसकी तृप्ति ही न होती थी। अहल्या ही के कारण उसका पुत्र हाथ से गया। पोता भी उसी के कारण हाथ से जा रहा है। इसलिए अब भी उसका मन अहल्या से न मिलता था। निर्मला को अपने बाल-बच्चो के साथ रहकर सभी प्रकार का कष्ट सहना मंजूर था। वह अब इस अन्तिम समय किसी को आँखों की ओट न करना चाहती थी। न-जाने कब दम निकल जाय, कब आँखें बन्द हो जायँ। बेचारी किसी को देख भी न सके।

बाहर गाना हो रहा था। मुँशीजी शहर के रईसों की दावत का इन्त-जाम कर रहे थे। अहल्या लालटेन ले-लेकर घर-भर की चीजों को देख रही थी और अपनी चीजों के तहस-नहस होने पर मन-ही-मन झुँझला रही थी। उधर निर्मला चारपाई पर लेटी शखधर की बाते सुनने में तन्मय हो रही थी।

प्रात काल जब शंखधर विदा होने लगे, तो निर्मला ने कहा—बेटा, अब बहुत दिन न चलूँगी। जब तक जीती हूँ, एक बार रोज आया करना।

आज राजा साहब के यहाँ भी उत्सव था; इसलिए शंखधर इच्छा रहते हुए भी न ठहर सके।

स्त्रियाँ निर्मला के चरणो को अचल से स्पर्श करके विदा हो गयी तो शंखधर खडे हुए निर्मला ने रोते हुए कहा—कल मै तुम्हारी बाट देखती रहूँगी।

शखधर ने कहा   अवश्य आऊगा

जब वह मोटर मे बैठ गये तो निमला द्वार पर खडी होकर उ हे देखती रही   शखधर के साथ ही उसका हृदय भी चला जा रहा था   युवकों के प्रेम में उद्विग्नता होती है, वृद्धों का प्रेम हृदय-विदारक होता है। युवक जिससे प्रेम करता है, उससे प्रेम की आशा भी रखता है। अगर उसे प्रेम के बदले प्रेम न मिले तो वह प्रेम को हृदय से निकालकर फेंक देगा। वृद्धजनों की भी क्या यही आशा होती है? वे प्रेम करते है और जानते है कि इसके बदले में उन्हें कुछ न मिलेगा। या मिलेगी, तो दया। शंखधर की आँखो में आँसू न थे, हृदय मे तड़प न थी, वह यों प्रसन्न-चित्त चले जा रहे थे, मानो सैर करके लौटे जा रहे हों।

मगर निर्मला का दिल फटा जाता था और मुँशी वज्रधर की आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था?

२५

कई दिन गुजर गये। राजा साहब हरि-भजन और देवोपासना में व्यस्त थे। इधर ५-६ वर्ष में उन्होंने किसी मन्दिर की तरफ झाँका भी न था। धर्म-चर्चा का बहिष्कार-सा कर रखा था। रियासत में धर्म का खाता ही तोड़ दिया गया था। मगर अब एकाएक देवताओं में राजा साहब की फिर श्रद्धा हो आयी थी। धर्म-खाता फिर खोला गया और जो वृत्तियाँ बंद कर दी गयी थीं, वे फिर से बाँधी गयीं। राजा साहब ने फिर चोला बदला। शंखधर के लौटते ही उनका धर्मानुराग फिर जागृत हो गया। सम्पत्ति मिलने ही पर तो रक्षकों की आवश्यकता होती है।

इन दिनों राजा साहब बहुधा एकान्त में बैठे किसी चिन्ता में निमग्न रहते थे, बाहर कम निकलते थे। भोजन से भी उन्हें कुछ अरुचि हो गयी थी। वह मानसिक अंधकार जो नैराश्य की दशा में उन्हें घेरे हुए था, अब एकाएक आशा के प्रकाश से छिन्न-भिन्न हो गया था। धर्मानुराग के साथ उनका कर्त्तव्य-ज्ञान जाग पड़ा था। जैसे जीवन लीला के अन्तिम काण्ड में हमें भक्ति की चिन्ता सवार होती है, बड़े-बड़े भोगी भी रामायण और भगवान का पाठ करने लगते हैं, उसी भाँति राजा साहब को भी अब बहुधा अपनी अपकीर्ति पर पश्चात्ताप होता था।

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। रनिवास में सोता पड़ा हुआ था। अहल्या के बहुत समझाने पर भी मनोरमा अपने पुराने भवन में न आयी। वह उसी छोटी कोठरी में पड़ी हुई थी। सहसा राजा साहब ने प्रवेश किया। मनोरमा विस्मित होकर उठ खड़ी हुई।

राजा साहब ने कोठरी को ऊपर-नीचे देखकर करुण-स्वर में कहा—नोरा, मैं आज तुमसे अपना अपराध क्षमा कराने आया हूँ। मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, इसे क्षमा कर दो

मनोरमा ने सजल-नेत्र होकर कहा—उन बातों को याद न कीजिए। आपको भी दु:ख होता है और मुझे भी दु:ख होता है। मेरा ईश्वर ही जानता है कि एक क्षण के लिए भी मेरे हृदय में आपके प्रति दुर्भावना नहीं उत्पन्न हुई।

राजा—जानता हूँ नोरा, जानता हूँ। तुम्हें इस कोठरी में पड़े देखकर इस समय मेरा हृदय फटा जाता है। हा ! अब मुझे मालूम हो रहा है कि दुर्दिन मे मन के कोमल भावों का सर्वनाश हो जाता है और उनकी जगह कठोर एव पाशविक भाव जागृत हो जाते है। सच तो यह है नोरा, कि मेरा जीवन ही निष्फल हो गया। मैं कभी-कभी सोचता हूँ, मुझे यह रियासत न मिली होती, तो मेरा जीवन कहीं अच्छा होता।

मनोरमा—मुझे भी अक्सर यही विचार हुआ करता है।

राजा—अब, जीवन-लीला समाप्त करते समय अपने जीवन पर निगाह डालता हूँ, तो मालूम होता है, मेरा जन्म ही व्यर्थ हुआ। मुझसे किसी का उपकार न हुआ। मैं गृहस्थी के उस सुख से भी वंचित रहा, जो छोटे-छोटे मनुष्यों के लिए भी सुलभ है। शंखधर अपने साथ मेरे हृदय की सारी कोमलताओं को लेता गया था। उसे पाकर आज मैं फिर अपने को पा गया हूँ। लेकिन नोरा, हृदय अन्दर-ही-अन्दर काँप रहा है। मैं इस शंका को किसी तरह दिल से बाहर नहीं निकाल सकता कि कोई अनिष्ट होने वाला है।

मनोरमा—जब ईश्वर ने गयी हुई आशाओं को जिलाया है, तो अब कुशल ही होगी।

राजा—क्या करूँ नोरा, मुझे इस विचार से शान्ति नहीं होती। मुझे भय होता है कि यह किसी अमंगल का पूर्वाभास है।

यह कहते-कहते राजा साहब मनोरमा के और समीप चले आये और उसके कान के पास मुँह ले जाकर बोले—यह शंका बिल्कुल अकारण ही नहीं है, नोरा ! रानी देवप्रिया के पति मेरे बड़े भाई होते थे। उनकी सूरत शंखधर से बिलकुल मिलती है। जवानी में मैंने उनको देखा था। हूबहू यही सूरत थी। तिल-बराबर भी फर्क नहीं। भाई साहब का एक चित्र भी मेरे अलबम में है। तुम यही कहोगी कि यह शंखधर का ही चित्र है। इतनी तो जुड़वा भाइयों में भी नहीं होती कोई पुराना नौकर नहीं है

नहा तो मैं इसकी साक्षी दिला देता। पहले शंखधर की सूरत भाई साहब से उतनी ही मिलती थी जितनी मेरी अब तो ऐसा जान पड़ता है कि स्वयं भाई साहब ही आ गये हैं

मनोरमा—तो इसमें शंका की क्या बात है? उसी वृक्ष का फल शंखधर भी तो है।

राजा—आह! नोरा, तुम यह बात नही समझ रही हो। तुम्हें कैसे समझा दूँ? इसमें भयंकर रहस्य है, नोरा! मैंने अबकी शंखधर को देखा, तो चौंक पड़ा। सच कहता हूं, उसी वक्त मेरे रोयें खड़े हो गये।

मनोरमा ने अब की दृढता से कहा—शंकाएँ निर्मूल हैं।

राजा ने जाँघ पर हाथ पटक कर कहा—नोरा, तुम अब भी नही समझी। खैर, कल से तुम नये भवन में रहोगी। यह मेरी आज्ञा है।

यह कहते हुए वह उठ खड़े हुए। बिजली के निर्मूल प्रकाश में मनोरमा उन्हे खड़ी देखती रही। गर्व से उसका हृदय फूला न समाता था। गर्व इस बात का था कि मेरे स्वामी मेरा इतना आदर करते हैं। प्रेम सहृदयता ही का रसमय रूप है। प्रेम के अभाव मे सहृदयता ही दम्पत्ति के सुख का मूल हो जाती है।

राजा साहब को अब किसी तरह शान्ति न मिलती थी। कोई-न-कोई भयकर विपत्ति आने वाली है, इस शका को वह दिल से न निकाल सकते थे। दो-चार प्राणियों को जोर-जोर से बातें करते सुनकर वह घबरा जाते थे कि कोई दुर्घटना तो नही हो गयी। शखधर कही जाता, तो जब तक वह कुशल से लौट न आये, वह व्याकुल रहते थे। उनका जी चाहता था कि यह मेरी आँखो के सामने से दूर न हो। उसके मुख की ओर देख कर उनकी आँखें आप-ही-आप सजल हो जाती थी। वह रात को उठकर ठाकुर द्वारे में चले जाते और घण्टों ईश्वर की वन्दना किया करते। जो शंका उनके मन में थी, उसे प्रगट करने का उन्हें साहस न होता था। वह उसे स्वयं न व्यक्त करते थे। वह अपने मरे हुए भाई की स्मृति को मिटा देना चाहते थे; पर वह सूरत आँखों से न टलती थी। कोई ऐसी क्रिया, ऐसी आयोजना ऐसी विधि न थी, जो इस पर मँडराने वाले संकट का मोचन करने के लिए न की जा रही हो, पर राजा साहब को शान्ति न

संध्या हो गयी थी राजा साहब ने मोटर मँगवायी और मुंशी वज्रधर के मकान पर जा पहुँचे मुंशीजी की संगीत मण्डली जमा हो गयी थी। संगीत ही उनका दान व्रत ध्यान और तप था उनकी सारी चिंताएँ और सारी बाधाएँ सँगीत-स्वरों में विलीन हो जाती थीं। मुंशीजी राजा साहब को देखते ही खड़े होकर बोले—आइए, महाराज ! आज ग्वालियर के आचार्य का गाना सुनाऊँ। आपने बहुत गाने सुने होंगे, पर इनका गाना कुछ और ही चीज ।

राजा साहब मन में मुंशीजी की बेफिक्री पर झुँझलाये। ऐसे प्राणी भी संसार मे हैं, जिन्हे अपने विलास के आगे किसी वस्तु की परवाह नही। शंखधर से मेरा और इनका एक-सा सम्बन्ध है; पर यह अपने संगीत मे मस्त है और मैं शंकाओं से व्यग्र हो रहा हूँ। सच है—'सबसे अच्छे मूढ़, जिन्हें न व्याप्त जगत-गति।' बोले—इसीलिए तो आया ही हूँ; पर जरा देर के लिए आपसे कुछ बाते करना चाहता हूँ।

दोनों आदमी अलग एक कमरे में जा बैठे। राजा साहब सोचने लगे, किस तरह बात शुरू करूँ ? मुंशीजी ने उनको असमंजस में देखकर कहा—मेरे लायक जो काम हो, फरमाइए। आप बहुत चिन्तित मालूम होते हैं। बात क्या है ?

राजा—मुझे मालूम हो रहा है कि संसार में मन लगाना ही सारे दु:ख का मूल है। जगदीशपुर-राज्य को भोगना ही मेरे जीवन का लक्ष्य था। मैंने अपने जीवन में जो कुछ किया, इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए। अपने जीवन पर कभी एक क्षण के लिए विचार नही किया। जीवन का सदुपयोग कैसे होगा, इस पर कभी ध्यान नही दिया। जब राज्य न था, तब अवश्य कुछ दिनों के लिए सेवा के भाव मन मे जागृत हुए थे—वह भी बाबू चक्रधर के सत्संग से। राज्य मिलते ही मेरी कायापलट हो गयी। फिर कभी आत्मचिन्तन की नौबत न आयी। शंखधर को पाकर मैं निहाल हो गया। मेरे जीवन में ज्योति-सी आ गयी। मैं सब कुछ पा गया; पर अब की जब से शंखधर लौटा है, मुझे उसके विषय में भयंकर शंका हो रही है। आपने मेरे भाई साहब को देखा था ?

मुंशी—जी नहीं, उन दिनों तो मैं यहाँ से बाहर नौकर था।

राजा—भाई साहब की सूरत आज तक मेरी आँखों में फिर रही है यह देखिये उनकी तस्वीर है

राजा साहब ने एक फोटो निकालकर मुँशीजी को दिखाया। मुँशीजी उसे देखते ही बोले—यह तो शंखधर की तस्वीर है

राजा—नहीं साहब, यह मेरे बड़े भाई का फोटो है। शंखधर ने तो अभी तक तस्वीर ही नहीं खिचवायी। न जाने तस्वीर खिचवाने से उसे क्यों चिढ़ है!

मुँशी—मैं इसे कैसे मान लूँ? यह तस्वीर साफ़ शंखधर की है।

राजा—तो मालूम हो गया कि मेरी आँखें धोखा नहीं खा रही थीं।

मुँशी—तब तो बड़ी विचित्र बात है।

राजा—अब आपसे क्या अर्ज करूँ? मुझे बड़ी शंका हो रही है, रात को नींद नहीं आती। दिन को बैठे-बैठे चौंक पड़ता हूँ। दो प्राणियों की सूरतें कभी इतनी नहीं मिलतीं। भाई साहब ने ही फिर मेरे घर में जन्म लिया है, इसमें मुझे बिलकुल शंका नहीं रही। ईश्वर ही जाने, क्यों उन्होंने कृपा की है, अगर शंखधर का बाल भी बाँका हुआ, तो मेरे प्राण न बचेंगे।

मुँशी—ईश्वर चाहेंगे, तो सब कुशल होगा। घबराने की कोई बात नहीं। कभी-कभी ऐसा होता है।

राजा साहब उठ खड़े हुए और चलते-चलते गम्भीर भाव से बोले—जो बात पूछने आया था, वह तो भूल ही गया। आपने साधु-सन्तों की बहुत सेवा की है। मरने के बाद जीव को किसी बात का दुःख तो नहीं होता?

मुँशी—सुना तो यही है कि होता है और उससे अधिक होता है, जितना जीवन में।

राजा—झूठी बात है, बिलकुल झूठी। विश्वास नहीं आता। उस लोक के दुःख-सुख और ही प्रकार के होंगे। मैं तो समझता हूँ, किसी बात की याद ही न रहती होगी। मेरे बाद जो कुछ होता है, वह तो होगा ही, आपसे इतना ही कहना है कि अहल्या को ढाढस दीजिएगा। मनोरमा की ओर से मै निश्चिन्त हूँ। वह सभी दशाओं में संभल सकती है। अहल्या उस

को न सह सकेगी

सजल नेत्र होकर बोले आप इतने निराश क्यों होते हैं ? ईश्वर पर भरोसा कीजिए। सब कुशल होगी।

राजा—क्या करूँ मेरा हृदय आपका-सा नहीं है। शंखधर का मुँह देखकर मेरा खून ठण्डा हो जाता हैं। वह मेरा नाती नहीं, शत्रु है। इससे कहीं अच्छा था कि निस्सन्तान रहता। मुँशीजी, आज मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि निर्धन होकर मैं इससे कही सुखी रहता।

राजा साहब द्वार की ओर चले। मुँशीजी, भी उनके साथ मोटर तक आये। शंका के मारे मुँह से शब्द न निकलता था। दीन भाव से राजा साहब की ओर देख रहे थे, मानो प्राण-दान माँग रहे हों।

राजा साहब ने मोटर पर बैठकर कहा—आप तकलीफ न कीजिए, जो बात कही है, उसका ध्यान रखिएगा।

मुँशीजी मूर्तिवत् खड़े रहे। मोटर चली गयी।

अभी राजा विशालसिंह द्वार पर आकर खड़े ही थे कि अहल्या ने विलाप करके कहा—हाय बेटा ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये ? क्या इसलिए मुझे आगरा से लाये थे।

राजा साहब ने यह करुण-विलाप सुना और उनके पैरों-तले से जमीन निकल गयी। वह अपनी आँखों से जो कुछ न देखना चाहते थे, वह देखना पड़ा और इतनी जल्द ! अभी ही वह मुंशी वज्रधर के पास से लौटे थे। आह ! कौन जानता था विधि इतनी जल्द यह सर्वनाश कर देगा ! इससे पहले कि वह अपने जीवन का अन्त कर दें, विधि ने उनकी आशाओं का अन्त कर दिया।

राजा साहब ने कमरे में जाकर शंखधर के मुख की ओर देखा। उनके जीवन का आधार निर्जीव पड़ा हुआ था। यही दृश्य आज से पचास वर्ष पहले उन्होंने देखा था।

उनके मुख से विलाप का एक शब्द भी न निकला। आँखों से आँसू की एक बूँद भी न गिरी। खड़े-खड़े भूमि पर गिर पड़े और दम निकल गया।

२६

शंखधर के चले आने के बाद चक्रधर को संसार शून्य जान पडने लगा। सेवा का वह पहला उत्साह लुप्त हो गया। उसी सुन्दर युवक की सूरत आँखों में नाचती रहती। उसी की बातें कानों में गूँजा करतीं। भोजन करने बैठते, तो उसकी जगह खाली देखकर उनके मुँह में कौर न घंसता। हरदम कुछ खोये-खोये से रहते। बार-बार यही जी चाहता था कि उसके पास चला जाऊँ। बार-बार चलने का इरादा करते, पर रुक जाते। साईंगंज से जाने का अब उनका जी नहीं चाहता था। इतने दिनों तक वह एक जगह कभी नही रहे। शखधर जिस कम्बल पर सोता था, उसे वह रोज झाड़-पोंछकर तह करते है। शंखधर अपनी खंजरी यहीं छोड़ कर गया है। चक्रधर के लिए ससार में इससे बहुमूल्य कोई वस्तु नहीं है। शखधर की पुरानी धोती और फटे हुए कुरते को सिरहाने रखकर सोते है। रमणी अपने सुहाग के जोड़े की भी इतनी देख-रेख न करती होगी।

सध्या हो गयी है। चक्रधर मन्दिर के दालान मे बैठे हुए चलने की तैयारी कर रहे हैं। अब यहाँ नहीं रहा जा सकता। उस देवकुमार को देखने के लिए आज वह बहुत विकल हो रहे हैं।

रात को उन्हें एक भयंकर स्वप्न दिखाई दिया। क्या देखते है कि शखधर एक नदी के किनारे उनके साथ बैठा हुआ है। सहसा दूर से एक नाव आती हुई दिखाई दी। उसमे से मन्नासिह उतर पड़ा। उसने हंसकर कहा—बाबूजी, यही राजकुमार हैं न? मैं बहुत दिनों से खोज रहा हूँ। राजा साहब इन्हे बुला रहे है। शंखधर उठकर मन्नासिह के साथ चला। दोनों नाव पर बैठे, मन्नासिह डाँड़ चलाने लगा। चक्रधर किनारे ही खड़े रह गये। नाव थोड़ी ही दूर जाकर चक्कर खाने लगी। शंखधर ने दोनों हाथ उठाकर उन्हें बुलाया। वह दौड़े, पर इतने मे नाव डूब गयी। एक क्षण मे फिर नाव ऊपर आ गयी। मन्नासिह पूर्ववत् डाँड़ चला रहा था, शंखधर का पता न चला।

चक्रधर जोर से एक चीख मारकर जग पड़े। उनका हृदय धक धक कर रहा था। उनके मुख से ये शब्द निकल पड़े ईश्वर! यह स्वप्न है या होने वाली बात उसी वक्त उठ बैठे बकुचा लिया और चल खड़े हुए।

चाँदनी छिटकी हुई थी। चारों ओर सन्नाटा था। पर्वत-श्रेणियाँ अभिलाषाओं की समाधियों-सी मालूम होती थी। वृक्षों के समूह श्मशान से उठनेवाले धुएँ की तरह नजर आते थे। चक्रधर कदम बढ़ाते हुए पथरीली पगडण्डियों पर चले जाते थे।

चक्रधर की इस वक्त वह मानसिक दशा हो गयी थी, जब अपने ही को अपनी खबर नहीं रहती। वह सारी रात पथरीले पथ पर चलते रहे। प्रातःकाल रेलवे-स्टेशन मिला। गाड़ी आयी। उस पर जा बैठे। गाड़ी में कौन लोग बैठे थे, उन्हें देख-देखकर लोग उनसे क्या प्रश्न करते थे, उसका वह क्या उत्तर देते थे, रास्ते में कौन-कौन से स्टेशन मिले, कब दोपहर हुई, कब संध्या हुई, इन बातों का उन्हें जरा भी ज्ञान न हुआ। पर वह कर वही रहे थे, जो उन्हें करना चाहिए था। किसी की बात का ऊट-पटांग जवाब न देते थे, जिन गाड़ियों पर बैठना न चाहिए था, उनपर न बैठते थे, जिन स्टेशनों पर न उतरना चाहिए था, वहाँ न उतरते थे। अभ्यास बहुधा चेतना का स्थान ले लिया करता है।

तीसरे दिन प्रातःकाल गाड़ी काशी जा पहुँची। ज्योंही गाड़ी गंगा के पुल पर पहुँची, चक्रधर की चेतना जाग उठी। सम्भल बैठे। गंगा के बायें किनारे पर हरियाली छायी हुई थी। दूसरी ओर काशी का विशाल नगर ऊँची अट्टालिकाओं और गगनचुम्बी मन्दिर-कलशों से सुशोभित, सूर्य के स्निग्ध प्रकाश से चमकता हुआ खड़ा था। मध्य में गंगा मन्द गति से अनन्त की ओर दौड़ी चली जा रही थी। आज बहुत दिनों के बाद यह चिर-परिचित दृश्य देखकर चक्रधर का हृदय उछल पड़ा। भक्ति का उद्‌गार मन में उठा। एक क्षण के लिए वह अपनी सारी चिन्ताएँ भूल गये, गंगा-स्नान की प्रबल इच्छा हुई। इसे वह किसी तरह न रोक सके।

स्टेशन पर कई पुराने मित्रों से उनकी भेंट हो गयी। उनकी सूरतें कितनी बदल गयी थी। वे चक्रधर को देखकर चौंके, कुशल पूछी और जल्दी से चले गये। चक्रधर ने मन में कहा—कितने रूखे लोग हैं कि किसी को बातें करने की भी फुरसत नहीं

दशाश्वमेध घाट पहुँचकर ताँगे से उतरे। इसी घाट पर वह पहले भी स्नान किया करते थे सभी पण्डे उन्हें जानते थे पर आज किसी ने भी प्रसन्नचित्त से उनका स्वागत नहीं किया। ऐसा जान पड़ता था कि उन लोगों को उनसे बातें करते जब्र हो रहा है। किसी ने न पूछा, कहाँ-कहाँ घूमे ? क्या करते रहे ?

स्नान करके चक्रधर फिर ताँगे पर बैठे और राजभवन की ओर चले। ज्यों-ज्यों भवन निकट आता था, उनका आशंकित हृदय अस्थिर होता जाता था।

ताँगा सिंह-द्वार पर पहुँचा। वह राज्य-पताका, जो मस्तक ऊँचा किये लहराती रहती थी, झुकी हुई थी। चक्रधर का दिल बैठ गया। इतने जोर से धड़कन होने लगी, मानो हथौड़े की चोट पड़ रही हो।

ताँगा देखते ही एक बूढा दरबान आकर खड़ा हो गया, चक्रधर को ध्यान से देखा और भीतर की ओर दौड़ा। एक क्षण में अन्दर हाहाकार मच गया। चक्रधर को मालूम हुआ कि वह किसी भयंकर जन्तु के उदर में पड़े हुए तड़फड़ा रहे हैं।

किससे पूछें, क्या विपत्ति आयी है ? कोई निकट नहीं आता। सब दूर सिर झुकाए खड़े हैं। वह कौन लाठी टेकता हुआ चला आता है ? अरे ! यह तो मुँशी वज्रधर हैं। चक्रधर ताँगे से उतरे और दौड़कर पिता के चरणों में गिर पड़े।

मुँशीजी ने तिरस्कार भाव से कहा—दो-चार दिन पहले न आते बना कि लड़के का मुँह तो देख लेते। अब आये हो, जबकि सर्वनाश हो गया ! क्या बैठे यहीं मना रहे थे।

चक्रधर रोये नहीं, गम्भीर एवं सुदृढ भाव से बोले—ईश्वर की इच्छा। मुझे किसी ने एक पत्र तक न लिखा। बीमारी क्या थी ?

मुँशी—अजी, सिर तक न दुखा, बीमारी होना किसे कहते हैं ? बस, होनहार ! तकदीर ! रात को भोजन करके बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे थे कि स्वर्ग की राह ली। किसी हकीम-वैद्य की अक्ल नहीं काम करती कि क्या हो गया था। जो सुनता है, दाँतों-तले अंगुली दबाकर रह जाता है। बेचारे राजा साहब भी इसी शोक में चल बसे तुमने उसे भुला दिया था प

उसे तुम्हारे नाम की रट लगी हुई थी इस दुनिया मे क्या कोई रहे ! जी भर गया अब तो जब तक जीना है तब तक रोना है ईश्वर बडा ही निर्दयी है।

चक्रधर ने लम्बी साँस खीचकर कहा—मेरे कर्मो का फल है। ईश्वर को दोष न दीजिए।

मुँशी—तुमने ऐसे कर्म किए होंगे, मैंने नही किये। मुझे क्यो इतनी बडी चोट लगायी ? मैं भी अब तक ईश्वर को दयालु समझता था; लेकिन अब वह श्रद्धा नही रही। गुणानुवाद करते सारी उम्र बीत गयी। उसका यह फल ! उस पर कहते हो, ईश्वर को दोष न दीजिए। ऐसे निर्दयी की महिमा कौन गाये और क्यों गाये ? मुरदे आदमी, तुम्हारी आँखों से आँसू भी नही निकलते, खड़े ताक रहे हो। मैं कहता हूँ—रो लो, नही तो कलेजे मे नासूर पड़ जायगा। बड़े-बड़े त्यागी देखे है; लेकिन जो पेट-भरकर रोया नही, उसे फिर हँसते नहीं देखा। आओ, अन्दर चलो, बहू ने दीवार से सिर पटक दिया, पट्टी बाँधे पड़ी हुई है। तुम्हे देखकर उसे धीरज हो जायगा। मैं डरता हूँ कि वहाँ जाकर कही तुम भी रो न पड़ो, नही तो उसके प्राण ही निकल जायेंगे।

यह कहकर मुँशीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया और अन्त:पुर तक ले गये। अहल्या को उनके आने की खबर मिल गयी। उठना चाहती थी, पर उठने की शक्ति न थी।

चक्रधर ने सामने आकर कहा—अहल्या !

अहल्या ने फिर चेष्टा की। बरसों की चिंता, कई दिनों के शोक और उपवास एवं बहुत-सा रक्त निकल जाने के कारण शरीर जीर्ण हो गया था। करवट घूमकर दोनों हाथ पति के चरणों की ओर बढ़ाये; पर वह चरणो को स्पर्श न कर सकी, हाथ फैले रह गये; और एक क्षण में भूमि पर लटक गये। चक्रधर ने घबराकर उसके मुख की ओर देखा। निराशा मुरझाकर रह गयी थी। नेत्रों ने करुण याचना भरी हुई थी।

चक्रधर ने रुँधे हुए स्वर में कहा—अहल्या, मैं आ गया, अब कही न जाऊँगा ! ईश्वर से कहता हूँ कही न जाऊँगा हाय ईश्वर ! क्या तू मुझे यही दिखाने के लिए यहाँ लाया था।

अहल्या ने एक बार तृषित दीन एवं तिरस्कारमय नेत्रों से पति की ओर देखा आँखे सदैव के लिए बन्द हो गयी।

उसी वक्त मनोरमा आकर द्वार पर खडी हो गयी। चक्रधर ने आँसुओं को रोकते हुए कहा—रानीजी, जरा आकर इन्हे चारपाई से उतरवा दीजिए।

मनोरमा ने अन्दर आकर अहल्या का मुख देखा और रोकर बोली—आपके दर्शन बदे थे, नही तो प्राण तो कब के निकल चुके थे। दुखिया का कोई भी अरमान पूरा न हुआ।

यह कहते-कहते मनोरमा की आँखों से आँसुओ की झडी लग गई।

उपसंहार

कई साल बीत गये है। मुंशी वज्रधर नही रहे। घोड़े की सवारी का उन्हें बड़ा शौक था। नर घोड़े ही पर सवार होते थे। बग्घी, मोटर, पालकी इन सभी को वह जनानी सवारी कहते थे। एक दिन जगदीशपुर से बहुत रात गये लौट रहे थे। रास्ते में एक नाला पड़ता था। नाले में उतरने के लिए रास्ता भी बना हुआ था; लेकिन मुंशीजी नाले में उतरकर पार करना अपमान की बात समझते थे। घोड़े ने जस्त मारी, उस पार निकल भी गया, पर उसके पाँव गड्ढे में पड गये, गिर पड़ा, मुँशीजी भी गिरे और फिर न उठे। हँस-खेलकर जीवन काट दिया, निर्मला भी पति का वियोग सहने के लिए बहुत दिन जीवित न रही। उनकी अन्तिम अभिलाषा, कि चक्रधर फिर विवाह कर ले, पूरी न हो सकी।

रानी मनोरमा नये भवन में रहती है। उसने कितनी ही चिड़ियाँ पाल रखी हैं। उन्हीं की देख-रेख में अब वह अपने दिन काटती है। पक्षियो के कलरव में वह अपनी मनोव्यथा को विलीन कर देना चाहती है।

चक्रधर बहुत दिन घर पर न रहे। माता-पिता के बाद वह घर, घर ही न रहा। फिर दक्षिण की ओर सिधारे, लेकिन अब वह केवल सेवा-कार्य ही नहीं करते; उन्हें पक्षियों से बहुत प्रेम हो गया है। विचित्र पक्षियो की उन्हें नित्य खोज रहती है। भक्त-जन उनका यह पक्षी-प्रेम देखकर उन्हे प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार के पक्षी लाते रहते है। इन पक्षियों के अलग-अलग नाम हैं। अलग-अलग उनके भोजन की व्यवस्था है। उन्हें पढ़ाने, घुमाने व चुगाने का समय नियत है।

साँझ हो गयी थी। मनोरमा बाग में टहल रही थी। सहसा हौज के पास एक बहुत ही सुन्दर पिंजरा दिखायी दिया। उसमें एक पहाडी मैना बैठी हुई थी रानीजी को हुआ यह पिंजरा कहाँ से आया?

उसके पास कई पहाड़ो चिड़िया थी जिन्हे उसने सैकड़ो रुपये खर्च करके खरीदा था, पर ऐसी सुन्दर एक भी न थी रंग पीला था, सिर पर लाल दाग था चोंच इतनी प्यारी कि चूम लेने को जी चाहता था। मनोरमा समीप गयी, तो मैना बोली—"नोरा! हमें भूल गयी? तुम्हारा पुराना सेवक हूँ।"

मनोरमा के आश्चर्य का पारावार न रहा। उसे कुछ भय-सा लगा। इसे मेरा नाम किसने पढ़ाया? किसकी चिड़िया है? यहाँ कैसे आयी? इसका स्वामी अवश्य कोई होगा। आता होगा। देखूँ, कौन है?

मनोरमा बड़ी देर तक खड़ी उस आदमी का इन्तजार करती रही। जब अब भी कोई न आया, तो उसने माली को बुलाकर पूछा—यह पिंजरा बाग में कौन लाया?

माली ने कहा—पहचानता तो नही हुजूर; पर हैं कोई भले आदमी। मुझसे देर तक रियासत की बातें पूछते रहे। पिंजरा रखकर गए कि और चिड़िया लेता आऊँ, पर लौटकर न आये।

रानी—आज फिर आयेंगे?

माली—हाँ हुजूर, कह तो गए हैं।

रानी—आयें तो मुझे खबर देना।

माली—बहुत अच्छा सरकार!

रानी—सूरत कैसी है, बता सकता है?

माली—बड़ी-बड़ी आँखें हैं हुजूर; लम्बे आदमी हैं। एक-एक बाल पक रहा है।

रानी ने उत्सुकता से कहा—आयें तो मुझे जरूर बुला लेना।

रानी पिंजरा लिए हुए चली आयी। रात-भर वही मैना उसके ध्यान मे बसी रही। उसकी बाते कान मे गूंजती रही।

चार बजे वह ऊपर के कमरे में जा बैठी और उस आदमी की रा देखने लगी। वहाँ से माली का मकान साफ दिखायी देता था। बैठे-बैठे बड़ी देर हो गयी अँधेरा होने लगा रानी ने एक गहरी साँस ली। शायद अब न आयेंगे।

सहसा उसने देखा, एक आदमी दो पिंजरे दोनों हाथों में लटकाये बाग में आया। मनोरमा का हृदय बासों उछलने लगा। उसने सोचा, माली मुझे अभी बुलाने आता होगा; पर माली न आया और वह आदमी वहीं पिंजरा रख कर चला गया। मनोरमा अब वहाँ न रह सकी। हाय ! वह चले जा रहे है। तब वहीं जमीन पर लेटकर वह फफक-फफक कर रोने लगी।

सहसा माली ने आकर कहा— सरकार, वह आदमी दो पिंजरे रख गया है और कह गया है कि फिर कभी चिड़ियाँ लेकर आऊँगा।

मनोरमा ने कठोर स्वर मे पूछा—तूने मुझसे उस वक्त क्यों नहीं कहा ?

माली पिंजरे को उसके सामने जमीन पर रखता हुआ बोला— सरकार, मैं उसी वक्त आ रहा था; पर उसी आदमी ने मना किया। कहने लगा, अभी सरकार को क्यों बुलाओगे ? मैं फिर कभी और चिडियाँ लाकर उनसे आप ही मिलूँगा।

रानी कुछ न बोली। पिंजरे में बन्द दोनों चिड़ियों को सजल नेत्रों से देखने लगी।

□



मुन्शी प्रेमचंद का सचित्र किशोर साहित्य

स्वामी विवेकानन्द
महाराणा प्रताप
अकबर महान
पंच परमेश्वर
शराब की दुकान
ईदगाह
बड़े घर की बेटी
नमक का दारोगा
गुल्ली डंडा
दो बैलों की कथा
ठाकुर का कुआँ
बूढ़ी काकी
सुजान भगत
ममता
मंदिर
पूस की रात
झाँकी
पाप का अग्निकुण्ड
अमावस्या की रात्रि
लोकमत का सम्मान
मनुष्य का परमार्थ
अग्नि समाधी
शतरंज के खिलाड़ी
नशा
मृतक भोज
सत्याग्रह
दूध का दाम
मुक्तिमार्ग
शंखनाद
सद्गति
घर जमाई
रामलीला
सवा सेर गेहूँ
मंत्र
राजा हरदौल
राजा मानसिंह,
गोपालकृष्ण गोखले
माँ
शान्ति
स्वामिनी
मर्यादा की बेटी
धोखा
पछतावा
घासवाली
समरयात्रा
क्षमा
जंगल की कहानियाँ

बाबू जयशंकरप्रसाद का साहित्य

काव्य

कामायनी
झरना
आँसू
लहर

उपन्यास

कंकाल
तितली
ईरावती

कथा साहित्य

छाया
प्रतिध्वनि
आकाश-दीप
आँधी
इन्द्रजाल
चित्राधार

नाट्य साहित्य

उर्वशी चम्पू
सज्जन
प्रायश्चित
कल्याणी परिणय
करुणालय
राज्यश्री
विशाख
अजात शत्रु
जनमेजय का नाग-यज्ञ
कामना
स्कन्धगुप्त विक्रमादित्य
एक घूंट
चन्द्रगुप्त
ध्रुवस्वामिनी
अग्निमित्र